

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_176273

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 491.6
B 19 A . Accession No. H 158

Author भगवानदीन. रसो .

Title अक्षंकार-मंजूषा. 1933

This book should be returned on or before the date
last marked below.

176 27.3

विद्या-पुस्तक-माला-सं० ६

अलंकार-मंजूषा

अर्थात्

हिंदी-साहित्य की परीक्षाओं के परीक्षार्थियों के लिये

अलंकार-विषय का एक ग्रंथ

जिसमें

हिंदी-भाषा के अलंकारों की विशद
व्याख्या की गई है

लेखक—

ला० भगवानदीन

प्रकाशक—

मैनेजर

राम सहायलाल बुकसेलर

विद्याप्रचारक बुकडिपो,

कचहरी रोड, गया

सातवीं बार १०००] सं० १९६० वि० [मूल्य १।) रुपया

विक्रेता—
साहित्य-भूषण कार्यालय
बनारस सिटी

प्रथम संस्करण सन् १६	ई० १०००
द्वितीय संस्करण सन् १६	ई० १०००
तृतीय संस्करण सन् १६२३	ई० १०००
चतुर्थ संस्करण सन् १६२५	ई० १०००
पंचम संस्करण सन् १६	ई० २०००
षष्ठ संस्करण सन् १६३२	ई० १०००
सप्तम संस्करण सन् १६३३	ई० १०००

सर्वाधिकार लेखक के वारिस के लिए सुरक्षित

मुद्रक—
बैजनाथदास
साहित्य-भूषण प्रेस,
भोजूबीर, बनारस कैंट।

प्राकथन

ईश्वर की कृपा तथा सर्व-काव्य-प्रेमियों की गुणग्राहकता से मुझे आज यह सुअवसर प्राप्त हुआ है कि इस ग्रंथ की सातवीं आवृत्ति कराने की आवश्यकता पड़ी। इसके लिये मैं पाठकों को धन्यवाद देता हूँ।

इस पुस्तक में मैंने कुछ टाइपो का हेर-फेर कर दिया है, क्योंकि पहिले टाइप बेढंगे तौर पर लगे हुए थे, जिससे पुस्तक कुछ भद्दी सी जँवती थी। जहाँ कहीं कुछ छापेखाने की अशुद्धियाँ ज्ञात हुई हैं, उसे भी ठीक करा दिया है। पुस्तक साथ 'दीन' जी की संक्षिप्त जीवनी और 'मंजूषा' की आलोचना भी लगा दी है। जीवनी 'दीन' जी के प्रिय शिष्य प० विश्वनाथ-दासाद मिश्र बी० ए०, साहित्य-रत्न ने लिखी है। इस पुस्तक में जो अशुद्धियाँ ठीक की गई हैं, इन्हीं के मतानुसार की गई हैं। इसके प्रूफ-संशोधन में भी इन्हीं से हमें सहायता मिली है। इस बार आवश्यकतानुसार इस पुस्तक में टिप्पणियाँ भी लगाई गई हैं। इस कार्य को भी उक्त मिश्रजी ने बड़े परिश्रम, प्रेम और निःस्वार्थ भाव से कर दिया है। हमें मिश्रजी से जो सहायता मिली है उसके लिए हम मिश्रजी को धन्यवाद देते हैं। जो अशुद्धियाँ अब भी रह गई होंगी, उन्हें अगले संस्करण में ठीक करा दिया जावेगा। इस पुस्तक में छपते-छपते कुछ नामों के ओकार और अनुस्वार टूट गए हैं, जिसे पाठकगण स्वयं सुधार लें।

काशी,
रूपरेखा, सं० १९६० वि०

}

विनीत—
चंद्रिकाप्रसाद,

मैनेजर साहित्य-भूषण-कार्यालय,
बनारस सिटी

संपादकीय

‘मंजूषा’ का चौथा संस्करण प्रकाशित होने पर लालाजी ने यह विचार प्रकट किया कि हम ‘मंजूषा’ के अलंकारों का वर्गीकरण करना चाहते हैं। साथ ही उदाहरणों का क्रम ठीक करके इसमें उपयुक्त टिप्पणियाँ भी लगा देने की इच्छा है। उस समय ‘मंजूषा’ की एक-एक प्रति इसी विचार से उन्होंने अपने पाँच शिष्यों को दी थी। अगले संस्करण का समय आने पर लालाजी ने वर्गीकरण की चर्चा फिर छोड़ी। उस समय मैंने अपनी प्रति में जो संकेत लिखे थे, उन्हीं के आधार पर एक सूची बनाकर उनकी सेवा में समर्पित की। पर शीघ्रता के कारण पुस्तक छप गई, वर्गीकरणवाला विचार अगले संस्करण के लिये रोक रखा गया।

हिंदी-साहित्य के दुर्भाग्य से सं० १९८७ में लालाजी का काशीवास हो गया, इसलिए वर्गीकरण की योजना जहाँ-की-तहाँ पड़ी रह गई। इधर ‘मंजूषा’ का छठा संस्करण निकलने पर मुझसे उसकी भूमिका लिखने का अनुरोध किया गया। उस समय मैंने अपने लेख में टिप्पणियों के अभाव की चर्चा की थी। इस संस्करण के समय उक्त कार्य गुरुवाइनजी ने मेरे ही गले मढ़ दिया। जिसको मैंने सहर्ष स्वीकार करके किया। मूल-पुस्तक के अलंकारों का वर्गीकरण करने का मुझे क्या अधिकार! इसलिए केवल उदाहरणों, सूचनाओं तथा विवेचनों को क्रम से लगाकर कठिन शब्दों की पाद-टिप्पणियाँ दे दी गई हैं। चित्रालंकार के पद्यों में ‘कामधेनु’ की टिप्पणियाँ इसलिए नहीं दी गई कि उनके अर्थ में बड़ी खींच-तान करनी पड़ती; और उनका अर्थ न जानने से विद्यार्थियों की कोई हानि भी नहीं है। इसके अतिरिक्त कुछ पद्यों के पाठ ठीक न जँचने के कारण लालाजी द्वारा संपादित मूल-ग्रंथों के आधार पर परिवर्तित कर दिए गए हैं।

समय-समय पर खेरी अनुपस्थिति में कुछ फार्मों के छपने से कहीं-कहीं कुछ अशुद्धियाँ भी रह गई हैं। पाठक उन्हें सुधार लें। यदि मेरे इस प्रयत्न के कारण विद्यार्थियों को कुछ भी लाभ पहुँचा तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

गुरु पूषिमा, १९९० वि०
ब्रह्मवाल, काशी।

}

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

पुस्तक-सूची

१—प्राक्कथन	...	...	...	...
२—पं० संपादकीय	...	...	...	...
३—वषट्पद्य	...	...	...	१—२
४—‘दीन’ जो और ‘मंजूषा’	...	...	...	१—१०
५—अलंकार-मंजूषा	...	...	...	१—२८३
६—जातीय-गान	...	...	...	२८४

अलंकार-सूची

अंत्यानुपास	१२	अवज्ञा	२२०
अतद्गुण	२३०	असंगति	१७१
अतिशयोक्ति	१०८	असंभव	१७१
अत्युक्ति	२५८	आक्षेप	१६३
अधिक	१७६	आवृत्ति-दीपक	१२४
अनन्वयोपमा	६३	उत्प्रेक्षा	६७
अनुगुण	२३२	उत्प्रेक्षा के दोष	२८६
अनुज्ञा	२२२	उदात्त	२५७
अनुपास	२	उदाहरण	११०
अनुपास के दोष	२७६	उन्मीलित	२३४
अन्योक्ति	१२६	उपमा	४७
अन्याक्ति का दोष	२८३	उपमा के दोष	२७६
अन्योन्य	१८१	उपमेयोपमा	६४
अपभ्रुति	६१	उल्लास	२१८
अप्रस्तुत-प्रशंसा	१४६	उल्लेख	८३
अर्थांतरम्यास	२०६	एकावली	१८६
अर्थालंकारों के दोष	२७६	एकवाचकानुप्रवेश	२७४
अलंकार (व्याख्या)	१	कारक-दीपक	१२६
अक्षय	१८०	कारण-माला	१८५

काव्यप्रलिंग	२०४	पुनरुक्तिप्रकाश	२५
काव्यार्थापत्ति	२०३	पुनरुक्तिवदाभास	२६
क्रम	१८८	पूर्णोपमा	४८
गम्योत्प्रेक्षा	२०७	पूर्वरूप (द्विधा)	२३१
गूढोक्ति	२४६	प्रतिवस्तुपमा	१२८
गूढोत्तर	२३८	प्रतिषेध	२६२
चित्र	१४	प्रतीप	६७
चित्रोत्तर	२४०	प्रत्यनीक	२०२
छेकानुप्रास	३	प्रमाण	२६३
छेकोक्ति	२५१	प्रस्तुतांकुर	१५६
तद्गुण	२२६	प्रहर्षण	२१५
तिरस्कार	२२२	प्रहेलिका	२८
तुल्ययोगिता	११६	प्रोढोक्ति	१११
दीपक	१२३	भाविक	१५६
दोष-कोष	२७६	भाषा-समूह	२६
दृष्टांत	१३१	भ्रांति (भ्रम)	८६
देहरी-दीपक	१२८	माला-दीपक	२७
निदर्शना	१३४	मालोपमा	५८
निरुक्ति	२६१	मिथ्याध्यवसिन्धि	२१३
परिकर	१४५	मीलित	२३३
परिकरांकुर	१४६	मुद्रा	२२४
परिणाम	८२	यमक	३१
परिवृत्ति	१६५	यमक का दोष	२७८
परिस्थया	१६६	युक्ति	२४८
पर्याय	१६२	रत्नावली	२२७
पर्यायोक्ति	१५७	रशनोपमा	६२
पिहित	२४४	रसव्रत	२७५

(३)

रूपक	७१	व्यतिरेक	१३१
ललित	२७०	व्याघात	१८४
ललितोपमा	६६	व्याजनिंदा	१६१
लाटानुप्रास	१०	व्याजस्तुति	१५१
लुप्तोपमा	५०	व्याजोक्ति	२४५
लुप्तोपमा-सूचक चक्र	५६	शब्दालंकारों के दोष	२५२
लेश	२२३	श्रुत्यनुप्रास	८
लोकोक्ति	२५०	श्लेष (शब्द)	४०
वक्रांक्ति (शब्द)	३५	श्लेष (अर्थ)	१४७
वक्रांक्ति (अर्थ)	२५२	संकर	२७०
विकल्प	१६६	संदेह	६०
विकस्वर	२०१	संदेह-संकर	२७३
विचित्र	१७८	संभावना	२१२
विधि	२६२	संस्पृष्टि	२६६
विनांक्ति	१४१	सम	१७६
विभावना	१६७	समाधि	२०१
विरोधाभास	१६५	समासोक्ति	१४२
विवृतोक्ति	२४७	समासोक्ति का दोष	२८३
विशेष	१८२	समुच्चय	१६६
विशेषक	२३५	समुच्चयोपमा	६२
विशेषकोन्मीलित	२३६	सहाक्ति	१४०
विशेषाक्ति	१७०	सामान्य	२३४
विषम	१७३	सार	८७
विषादन	२१७	सूक्ष्म	२४२
व्रीप्सा	३६	स्मरण	५
वृत्त्यनुप्रास	४	स्वभावोक्ति	२५३
		हेतु	२६७

वक्तव्य

हिंदी-काव्य का रसास्वादन करने के लिये अलंकारों का जानना बहुत जरूरी है। अनेक अलंकार-ग्रंथ मौजूद हैं; उनके होते हुए भी यह ग्रंथ हमने क्यों लिखा, इसका कारण यह है कि इस विषय के प्रायः समस्त ग्रंथ ऐसे देखे जाते हैं जिन्हें पढ़ाने में शिक्षकों को संकोच-भाव धारण करना पड़ता है, अर्थात् कोई गुरु अपने शिष्य को, कोई पिता अपने पुत्र को या कोई बड़ा भाई अपने छोटे भाई को निःसंकोच-भाव से नहीं पढ़ा सकता। युवती कन्याओं को वे ग्रंथ पढ़ाते हुए इतना संकोच हो सकता है कि उन्हें वे ग्रंथ आद्योपांत पढ़ाए नहीं जा सकते।

'हिंदी-साहित्य-सम्मेलन' ने कुछ परीक्षाएँ प्रचलित की हैं, नवयुवक लड़के और नवयुवती कन्याएँ सम्मिलित गी हैं। हिंदी-काव्य के कुछ अच्छे ग्रंथ भी पाठ्य-पुस्तकों गए हैं। परंतु अलंकार-विषय समझे बिना काव्य तथा समझ लेना दुरूह ही है, और यह विषय शिक्षक काए बिना आ नहीं सकता। कोई गुरु अलंकार-विषय ग्रंथ शिष्य को निःसंकोच-भाव से पढ़ा नहीं सकता, ठिनता दूर करने के लिये हमने यह ग्रंथ लिखा है।

चीन ग्रंथों की अपेक्षा इस ग्रंथ में नीचे लिखी बताएँ हैं—

१—अलंकार की परिभाषा चुनकर अत्यंत स्पष्ट आसरल पद्य में लिखी गई है ।

२—पुनः जहाँ ज़रूरत जान पड़ी है, वहाँ गद्य में उसकी विशद व्याख्या कर दी गई है ।

३—प्रत्येक अलंकार के कई-एक उदाहरण दिए गए हैं ।

४—उदाहरण प्राचीन काव्य से चुने गए हैं ।

५—जहाँ-तहाँ विशद टिप्पणियाँ और सूचनाएँ भी दी गई हैं ।

६—अलंकारों की बारीकियाँ और भेद गद्य में समझाए गए हैं ।

७—यह समस्त ग्रंथ कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को निःसंकोच-भाव से पढ़ा सकता है ।

८—उर्दू, फ़ारसी तथा अंगरेजी भाषा के अलंकारों के साथ हिंदी-अलंकारों का मिलान भी दर्शाया गया है ।

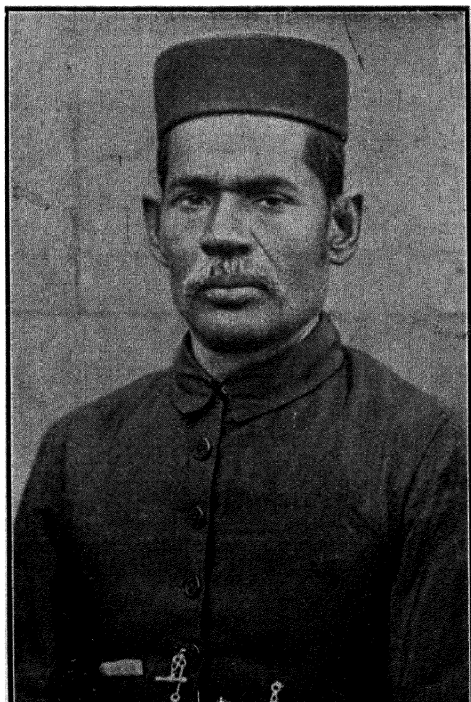
९—कई अलंकारों के विषय में प्राचीनों से मत-भेद और अपनी स्वतंत्र सम्मति भी लिखी गई है ।

१०—कुछ अलंकारों के दाँष भी लिखे गए हैं ।

मनुष्य से भूल होती है । इस ग्रंथ में भी भूलें होंगी सूचित किए जाने पर अगले संस्करण में भूलों का सुधार कर दिया जायगा ।

विनीत—

भगवानदी



❀ लाला भगवानदीन ❀

‘दीन’जी और ‘मंजूषा’

(जीवनी)

लाला भगवानदीन का जन्म बड़ी तपस्या के उपरांत हुआ था। इनकी माता ने इनके ऐसे पुत्र-रत्न की प्राप्ति के लिये भगवान् भुवन-भास्कर का बड़ा कठार व्रत किया था। अधिक अवस्था हो जाने पर भी कोई संतति न होने से इनके पिता मुंशी कालिकाप्रसादजी बड़े चिंतित रहा करते थे, पर एक साधु के आदेशानुसार उन्होंने अपनी पत्नी को रविवार के दिन उपवास करने और सूर्य को अखंड दीप-ज्योति दिखलाने की आज्ञा दी। ज्येष्ठ मास की कड़ी धूप में वे उदयान्मुख सूर्य की ओर प्रज्ज्वलित घृत-दीप लेकर खड़ी हो जाया करतीं, और ज्यों-ज्यों सूर्य भगवान् आकाश में पूर्व से पश्चिम की ओर बढ़ते जाते वे भी उनका ही अनुगमन करके उनके सम्मुख दीप-ज्योति दिखाती रहतीं। संध्या-समय पूजनोपचार के पश्चात् वे उसी स्थान पर रात्रि में शयन भी करतीं। दो रविवारों तक तो उन्होंने यह घोर व्रत बड़ी सहिष्णुता के साथ किया, पर तीसरे रविवार को वे चक्कर आ जाने से गिर पड़ीं।

इस कठिन तपोव्रत का फल यह हुआ कि संवत् १६२३ विक्रमीय की श्रावण शुक्ला छठ को उन्होंने पुत्र-रत्न प्रसव किया। भगवान् (सूर्य) का दिया हुआ समझकर पुत्र का नाम ‘भगवान दीन’ रखा गया।

‘दीन’जी के पूर्वपुरुष श्रीवास्तव दूसरे कायस्थ थे और उन्हें नबावी के ज़माने में ‘बख्शी’ की उपाधि मिली थी। वे लोग पहले रायचरेली में रहा करते थे, किंतु सन्

सत्तावनवाले विद्रोह के समय उन लोगों ने अपना निवास-स्थान छोड़ दिया और रामपुर में जा बसे। वहाँ से वे फतेहपुर शहर से कोई दस कांस की दूरी पर बहुवा नामक कस्बे के पास 'बरवट' नाम के एक छाटे से गाँव में बस गए। इसी गाँव में 'दीन'जी का जन्म हुआ था।

'दीन'जी के पिता साधारण स्थिति के मनुष्य थे, इस कारण उन्होंने घर पर ही लड़के का पढ़ाना आरंभ किया। कायस्थ होने के कारण 'विस्मयलाह' उर्दू और फारसी से ही हुआ। ग्यारह वर्ष की अवस्था में इनकी स्नेहमयी माता का गोलोकवास हो गया। जीविका-वश इनके पिता बुंदेलखंड में रहा करते थे, इसलिये वे पुत्र को भी अपने साथ लेते गए। ये अपने फूफा के यहाँ फारसी पढ़ने लगे, पर चार वर्ष पश्चात् ये फिर घर भेज दिए गए। वहाँ दो वर्ष तक मदरसे में पढ़ते रहे और घर पर अपने दादा से हिंदी भी सीखते रहे। सत्रह वर्ष की अवस्था में ये फतेहपुर के हाई स्कूल में भरती किए गए। मिडिल पास करने के बाद इनका विवाह भी कर दिया गया था। सात वर्ष में एंट्रेंस पास कर लेने पर ये प्रयाग की कायस्थ-पाठशाला में कालेज की शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजे गए। इनके पिता ने इनकी देख-रेख का भार अपने घनिष्ठ मित्र 'पुत्तू सोनार' को सौंप दिया था, जो बड़ी सावधानी और विश्वास-पात्रता के साथ 'दीन'जी को शिक्षा दिलाते थे, इनका पहला विवाह तक 'पुत्तू बापू' ने ही कराया था, पिताजी दूर रहने के कारण शीघ्रता से वहाँ पहुँच ही नहीं पाए।

'पुत्तू बापू' ने 'दीन'जी को अपनी गृहस्थी का भार संभालने की आज्ञा दी। तदनुसार ये पढ़ते भी थे और

गृहस्थी सँभालने का प्रयत्न भी करते रहते थे। इसीसे एफ. वे. के आगे 'दीन'जी की पढ़ाई न चल सकी। अंत में ये 'कायस्थ-पाठशाला' में अध्यापक हो गए। डेढ़ साल के अनंतर ये प्रयाग के ही 'गवर्स-हाई-स्कूल' में फारसी की शिक्षा देने लगे। चित्त न लगने के कारण छः मास पश्चात् ये छतरपुर (बुँदेलखंड) में 'महाराजा-हाई-स्कूल' के संकंड मास्टर हाँकर चले गए। वहाँ जाने पर इनकी स्त्री का देहांत हो गया। इनका दूसरा विवाह कृष्ण शादियाबाद (गाजीपुर) में मुशी परमेश्वर दयाल साहब की पुत्री से हुआ और इन्हें अपनी दूसरी स्त्री को साथ ही रखना पड़ा। इनकी दूसरी पत्नी प्रसिद्ध कवियित्री 'बुँदेलाला बाला' थीं। 'दीन'जी ने स्वयं इन्हें कई ग्रंथ पढ़ाए थे जिनमें 'विहारी-सतसई' मुख्य थी।

लालाजी के दादा बड़े राम-भक्त और रामायण-प्रेमी थे। वे इनसे नित्य रामायण का पाठ सुना करते थे। 'दीन'जी का रामायण के प्रति तभी से अनुराग हो गया था। इन्होंने रामायण के सुंदरकांड की शिक्षा अपने पूज्य पिताजी से ही पाई थी। वे भी परम भागवत थे। यद्यपि हिंदी का ज्ञान इन्हें पर्याप्त हो गया था, पर अभी पूरी विद्वत्ता प्रस्फुटित नहीं हुई थी। इनका अनुराग कविता की ओर लड़कपन से ही था, पर उसका परिमार्जन आवश्यक था। छतरपुर में इन्होंने अपने मित्रों के अनुरोध से कविता संबंधी दो सभायें स्थापित कीं—पहली 'कवि-समाज' और दूसरी 'काव्य-लता'। साथ ही 'भारती-भवन' नामक एक पुस्तकालय भी स्थापित किया। ये तीनों स्थान काव्य-सर्चा के अड्डे थे। उक्त दोनों सभाओं में नौसिखुए कवि कविता करके सुनाया करते थे और पं० गंगाधर व्यास

उनका संस्कार कर दिया करते थे। प्रायः समस्या-पूतियाँ पढ़ी जाती थीं। व्यासजी से इन्होंने रामायण और अलंकारों का भी अध्ययन किया था। उर्दू में 'दीन'जी पहले से ही कविता किया करते थे। अब हिंदी में भी इनकी काव्य-प्रतिभा चमक उठी। इन्होंने कई छोटी-मोटी काव्य-पुस्तकें लिख डालीं, जिनमें से 'भक्ति-भवानी' और 'रामचरणांक-माला' विशेष उल्लेखनीय हैं। पहली पुस्तक पर इन्हें कलकत्ते की 'बड़ाबाजार लाइब्रेरी' ने एक स्वर्ण-पदक प्रदान किया था।

कुछ दिनों बाद छतरपुर से भी 'दीन'जी का मन उचट गया। वस्तुतः ये एक विस्तृत साहित्य-क्षेत्र में कार्य करने के अभिन्नाषी थे, अतः ये काशी चले आए। यहाँ ये 'संग्रह-हिंदू-कालेज' में फारसी के शिक्षक हो गए और 'नागरी प्रचारिणी-सभा' में प्राचीन-काव्य-ग्रंथों का संपादन भी करने लगे। इसी समय इन्होंने प्रसिद्ध 'वीर-काव्य 'वीर-पंचरत्न' के लिखने में हाथ लगाया था, जिसके लिखने का अनुरोध बुँदेलाला बाला ने किया। कुछ दिनों के पश्चात् जब नागरी-प्रचारिणी-सभा 'हिंदी-शब्द-सागर' बनवाने लगी, तब ये भी उसके उपसंपादक चुने गए। बहुत-कुछ काम हो चुकने पर इन्होंने अपनी स्पष्टवादिता के कारण संपादन से हाथ खींच लिया। इस कार्य से छूटते ही ये 'हिंदू-विश्व-विद्यालय' में हिंदी के लेक्चरर हो गए, जहाँ ये अंत तक रहे।

काशी में इन्होंने हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं को प्रोत्साहन देने के लिये 'हिंदी-साहित्य-विद्यालय' की स्थापना की। कुछ दिनों के लिये ये गया भी गए थे, और वहाँ की प्रसिद्ध पत्रिका 'लक्ष्मी' का संपादन भी किया था। अंत में ये काशी में स्थायी रूप से रहने लगे और यहीं आपका

‘काशीवास’ भी हुआ। अंतिम दिनों में ये अपने गाँव ‘बरवट’ गए हुए थे। वहाँ से आपके बाँएँ अंग में एक प्रकार का जहरबाद (Erysipelas) हो गया था। बाईस दिनों की विकट वेदना के बाद सं० १९८७ के श्रावण मास की शुक्ला तृतीया को आपने अपने ‘हिंदी-साहित्य-विद्यालय’ में शरीर छोड़ा।

लालाजी हिंदी के बड़े भारी काव्य-मर्मज्ञ थे। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। ये कवि, लेखक, समालोचक, संपादक, अध्यापक और व्याख्याता भी थे। इन्होंने कितने ही ग्रंथ रचे हैं। केशवदास के दुर्बोध ग्रंथों की सरल टीकाएँ लिखी हैं और रीति-ग्रंथ बनाए हैं। इनके ग्रंथों में से प्रसिद्ध पुस्तकों के नाम ये हैं—‘वीर-पंचरत्न’, ‘नवीन-वीन’, ‘केशव-कौमुदी’, ‘प्रिया-प्रकाश’, ‘विहारी-बोधिनी’, तुलसीदास के ग्रंथों की टीका, ‘सूक्ति-सरोवर’, ‘सूर-पंचरत्न’, ‘केशव-पंचरत्न’ ‘अलंकार-मंजूषा’, ‘व्यंगार्थ-मंजूषा’ आदि। इनके संपादित ग्रंथ तो बीसियों हैं। फुटकर कविताएँ इन्होंने बहुत लिखी हैं, जिनमें से थोड़ी-बहुत समय-समय पर पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती थीं। इधर ये ‘मित्रादर्श’ और ‘महाराष्ट्र देश की वीरा-गनाएँ’ नामक दो बड़े काव्य लिख रहे थे, पर वे अब अधूरे पड़े हैं।

लालाजी बड़े सीधे-सादे, उद्योगशील सत्यवादी, निष्कपट, स्पष्टवादी, सच्चरित्र और स्वस्थ शरीर के पुरुष थे। वृद्धावस्था में भी ‘दोन’जी जो इतना अधिक साहित्यिक कार्य कर रहे थे, इसका मुख्य कारण इनका स्वास्थ्य था। अपने जीवन-भर में लंबी बीमारी इन्हें दो ही बार भोगनी पड़ी। एक बार इन्हें क्षयरोग हो गया था, जो बहुत दिनों में अच्छा हुआ और दूसरी बार जहरबाद हुआ, जो शरीर के साथ ही गया। लालाजी के कोई संतति नहीं है। काशी

आने पर बालाजी का शरीरांत हो जाने पर लालाजी ने उन्हीं की बहन से तीसरी शादी की, जिन्हें ये विधवा करके छाड़ गय। बालाजी से एक पुत्र हुआ था, जो दस मास बाद मर गया। पहली शादी जो केसवाही, जि० हमीरपुर में हुई थी, उससे एक लड़की भी थी, जो ब्याही जाने के कुछ दिनों बाद मर गई।

(आलोचना)

शैली अथवा रीति का विवेचन करने के लिये गद्य की विशेष आवश्यकता हुआ करती है। संस्कृत-साहित्य में पहले सभी विषय पद्य में ही रहा करते थे, इसलिये उनके निमित्त सूत्रों का आविष्कार किया गया। यही कारण था कि उनकी व्याख्या के लिये कारिका और वृत्ति की आवश्यकता पड़ी। यद्यपि संस्कृत-साहित्य में विवेचना के उपयुक्त गद्य का विकास नहीं हो पाया था, पर विवेचना उसमें बहुत विस्तार से हुई है। रीतिशास्त्र के ग्रंथों में जिस तर्कसिद्ध शैली का आश्रय लिया गया था, उसने इस विषय में बहुत पूर्णता ला दी थी। इसके अतिरिक्त संस्कृत-रीतिकारों के संबंध में एक बात विशेष रूप से और उल्लेखनीय है। प्रत्येक रीतिकार केवल शास्त्रीय विवेचना में ही लगता था, स्वयं काव्य-निर्माण में वह अपना हाथ नहीं डालता था। रीति या शैली की पद्धतियों का निरूपण पूर्ववर्ती कवियों या लेखकों के ग्रंथों के ही आधार पर होता है, वे ही उसके लिये प्रमाण होते हैं। इसलिये रीतिकार का वर्ग उनसे सर्वथा भिन्न रहना ही श्रेयस्कर होता है। हिंदी में उक्त दोनों ही बातें नहीं थीं। न तो गद्य में उनका विवेचन ही होता था और न लक्ष्य-ग्रंथकार एवं लक्षण-ग्रंथकारों के वर्ग ही अलग-अलग थे। इसका परिणाम यह हुआ कि

रीति-शास्त्र का विवेचन हिंदी में भली-भाँति हुआ ही नहीं। केवल संस्कृत-साहित्य के कुछ ग्रंथों का आधार लेकर पद्य में लक्षणों का एक छोटा-मोटा ढाँचा खड़ा कर दिया जाता था। गद्य में कुछ न लिखने का कारण यह था कि प्राचीन काल में हिंदी के गद्य का विकास ही नहीं हुआ था, वह पद्य के ही योग्य था, गद्य के योग्य नहीं। इसलिये ज्यों ही गद्य ने कुछ विकसित रूप धारण किया, उसमें लोग रीति के विवेचन की प्रवृत्ति दिखलाने लगे।

अलंकार लिखने अथवा बोलने की एक विशेष शैली है। इसके संबंध में भी वही बात समझनी चाहिए जो हम ऊपर लिख आए हैं। कुछ विद्वान् अलंकारिक अथवा रसाभ्यासी ऐसे अवश्य दिखाई देते हैं जिन्होंने विवेचन पर ध्यान दिया था; जैसे—श्रीपति, सूरति मिश्र, कुलपति आदि, पर गद्य का उपयुक्त साधन न होने से वे बेचारे भी असफल ही रहे। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के बाद गद्य ने ऐसा रूप धारण कर लिया था कि हिंदी में भी भली-भाँति शास्त्रीय विवेचन हो सके, इसलिये अलंकार आदि के जो ग्रंथ इधर बने उनमें गद्य का भी भरपूर आश्रय लिया गया। सबसे पहला ग्रंथ 'जसवंत-जसोभूषण' है। इसमें संस्कृत की तर्कात्मक शैली का आधार इतना अधिक लिया गया है कि उसे अच्छा अलंकाराभ्यासी ही समझ सकता है, सब नहीं। इसके पश्चात् सेठ कन्हैयालाल पोद्दार का 'अलंकार-प्रकाश' और बाबू जगन्नाथप्रसाद 'भानु' का 'काव्य-प्रभाकर' प्रकाशित हुआ। 'अलंकार-प्रकाश' आचार्य मम्मट के 'काव्य-प्रकाश' के आधार पर बना है। यह ग्रंथ है तो अवश्य विवेचनात्मक, पर इसमें संस्कृत के पारि-

भाषिक शब्दों और जटिल शैली का ऐसा अनुकरण किया गया है कि यह भी दुरुह हो गया है। गद्य में रीति-शास्त्र के लिखने का जो उद्देश्य है, वह इससे भी पूरा नहीं हुआ। 'भानु'जी ने अलंकारों के कई उदाहरण दिए हैं और विषय को सरल बनाने का उद्योग भी किया है, पर विवेचन की कमी के कारण और अलंकारों का व्यापक अभ्यास न होने से इसमें भी बहुत कुछ अपूर्णता रह गई है। कहने का तात्पर्य यह कि किसी नवसिख के लिये अलंकार का ज्ञान प्राप्त कराने में ये तीनों ही ग्रंथ बहुत-कुछ असमर्थ थे। वही नहीं इन ग्रंथों में एक बड़ी भारी त्रुटि यह थी कि उदाहरण शृंगारिक भी रखे गए थे। कहीं-कहीं तो घोर शृंगार भी आ गया था। स्वाध्याय में तो यह बात नहीं खटक सकती थी, पर पाठशालाओं और विद्यालयों में पढ़ाते समय इस त्रुटि पर बहुत-से लोगों का ध्यान जाया करता था।

इस बात पर सबसे प्रथम 'दीन'जी की दृष्टि गई। उन्होंने विद्यार्थियों के योग्य 'अलंकार-मंजूषा' नामक प्रस्तुत ग्रंथ प्रकाशित कराया। इस ग्रंथ में यों तो कितनी ही विशेषताएँ हैं, जिनका उल्लेख उन्होंने स्वयं अपने 'वक्तव्य' में किया है, किंतु उनमें से दा-तीन विशेषताएँ ऐसी हैं जिन्होंने ग्रन्थ का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ा दिया है। एक तो इसमें एक भी शृंगारी पद्य नहीं रखा गया है। दूसरे इसमें उदाहरण इतने अधिक दिए गए हैं कि विषय का हृदयंगम करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं रह जाती। साथ-ही-साथ उन उदाहरणों का लक्षणों के साथ भली-भाँति समन्वय भी दिखाया गया है। लालाजी ने दो मिलते-जुलते अलंकारों की भिन्नता भी भली-भाँति समझाई है। कहने का तात्पर्य यह

है कि पुस्तक को सर्वांगीण सुंदर, सुबोध और समयोपयुक्त बनाने का पूरा प्रयत्न किया गया है। 'दीन'जी ने संस्कृत-साहित्य की वादात्मक पद्धति नहीं ग्रहण की है, क्योंकि ऐसा करने से विषय विद्यार्थियों के लिये बहुत जटिल हो जाता; पर यथास्थान नये-पुराने आचार्यों के मतों पर प्रकाश अवश्य डाला है। कई स्थानों पर नई खोज भी की गई है; जैसे—स्मरण, दीपक आदि में। फिर भी संस्कृत-शास्त्र का अच्छा अध्ययन न होने के कारण दो-एक स्थानों पर इन्होंने भ्रम-वश कुछ-का-कुछ लिख दिया है। जैसे, श्लेष के दो भेद (शब्द और अर्थ) आपने इस प्रकार किए हैं—“जहाँ कवि का मुख्य तात्पर्य एक ही अर्थ से होता है (शब्द-श्लेष) और जहाँ कवि का तात्पर्य कई अर्थों से होता है (अर्थ-श्लेष)।” अलंकाराभ्यासी जानते हैं कि वस्तुतः बात ऐसा नहीं है। इसी प्रकार क्रम (यथासंख्य) के ‘भग्न-क्रम’ और ‘विपरीत-क्रम’ नामक भेद हैं। फिर भी कहना पड़ता है कि हिंदी में विद्यार्थियों के योग्य ऐसी उत्तम अलंकार की पुस्तक आज तक नहीं निकली, यद्यपि अलंकार के ग्रंथ नित्य ही निकल रहे हैं। अलंकारों में प्रवेश पाने के लिये ‘मंजूषा’ अद्वितीय पुस्तक है।

‘अलंकार-मंजूषा’ में एक विशेषता और है। अलंकारों के उदाहरण बहुत ही साफ, और प्रचलित रखे गए हैं। ‘तुलसी’ का ‘रामचरित-मानस’ साहित्य-ससार और जन-समाज दोनों में बहुत प्रचलित है। सभी लोगों की जिह्वा पर उसके अधिकांश छंद चढ़े रहते हैं। ‘अलंकार-मंजूषा’ में बहुत कम ऐसे अलंकार हैं जिनमें ‘रामचरित-मानस’ के उदाहरण न हों। इसके अनिर्दिष्ट शेष उदाहरण भी प्रचलित ग्रंथों के ही हैं। इसका कारण यह है कि ‘दीन’जी ने ‘मंजूषा’ का निर्माण

केवल अलंकार-ग्रंथों के सहारे पर ही नहीं कर दिया है। वे स्वयं उस विषय के भीतर पैठे हैं और उसे व्यावहारिक क्षेत्र में भी लाए हैं। बहुत दिनों तक विद्यार्थियों को अलंकार पढ़ाने और उसका क्रियात्मक अभ्यास कर लेने पर इस ग्रंथ का प्रणयन किया गया है। 'दीन'जी बड़े अच्छे अलंकाराभ्यासो थे, उनका अलंकार-ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। वे हिंदी के इस नये युग के एक आचार्य थे। इधर आए दिन अलंकाराचार्यों की उत्पत्ति हो रही है, पर हमारा विश्वास है कि किसी को भी बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस वर्षों तक विद्यार्थियों को अलंकाराभ्यास कराने का अवसर न मिला होगा। सबमें केवल 'पुस्तक-पांडित्य' ही देखने को मिलेगा। 'दीन'जी को अलंकारों का इतना अनुराग था कि उन्होंने अपनी प्रत्येक टीका में पद्यों का अलंकार-निर्णय भी किया है। लालाजी में 'पुस्तक-पांडित्य' नहीं, बरन् 'प्रयोग-पांडित्य' था। यही कारण है कि उनकी पुस्तक अधिक व्यावहारिक है। 'मजूषा' का प्रचार विद्यार्थि-वर्ग में बहुत अधिक है। इस पुस्तक के कई संस्करण हो चुके हैं, इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि लोग इसका कितना आदर और व्यवहार करते हैं।

ब्रह्मनाल, काशी
गुरु-पूर्णमा १६८८ वि०

}

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

श्रीराम

अलंकार-मंजूषा

(पहला पटल)

—:—

अलंकार

किसी वाक्य के वर्णन करने का 'चमत्कारिक' ढंग 'अलंकार' कहलाता है। दूसरे शब्दों में यों कहिए कि "जिस सामग्री से किसी वाक्य में रोचकता वा चमत्कार आ जाय वह सामग्री 'अलंकार' कहलाती है"।

जैसे गढ़ने पहनने से किसी व्यक्ति का शरीर कुछ अधिक रोचक देख पड़ता है, वैसे ही अलंकार से वाक्य की रोचकता बढ़ जाती है। 'अलंकार' काव्य का एक आवश्यक अंग है। ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि बिना अलंकार के कविता बन ही नहीं सकती, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अलंकार से कविता की मनोहरता बहुत अधिक बढ़ जाती है।

मुख्य अलंकार तीन प्रकार के होते हैं:—

(१) शब्दालंकार, (२) अर्थालंकार और (३) उभयालंकार।

(१) जहाँ शब्दों में चमत्कार पाया जाय, वहाँ शब्दालंकार कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि उन शब्दों को बदलकर उनके स्थान में उनके पर्यायवाची शब्द रख दिए जायें, तो वह चमत्कार न रहेगा।

(२) जहाँ अर्थ में चमत्कार पाया जाय, वहाँ 'अर्थालंकार' माना जाता है। इसका तात्पर्य यह कि वह चमत्कार

निकालकर यदि उस वाक्य का केवल तात्पर्य कहा जाय तो वह वाक्य बिल्कुल सादा और अरोचक हो जायगा। जैसे कहना यह है कि “अमुक व्यक्ति बड़ा विद्वान् है”, तो इस वाक्य को सीधे या न कहकर कि “अमुक व्यक्ति बड़ा विद्वान् है,” यों कहें कि (क) अमुक व्यक्ति दूसरा बृहस्पति है, (ख) अमुक व्यक्ति की विद्वत्ता से लज्जित होकर बृहस्पति पीले हो गए हैं, (ग) अमुक व्यक्ति बृहस्पति के समान है, (घ) अमुक व्यक्ति की विद्वत्ता से हारकर बृहस्पति दिन में अपना मुँह नहीं दिखलाते, (ङ) अमुक व्यक्ति मनुष्य नहीं बृहस्पति है इत्यादि; तो इस प्रकार के कथनों में कुछ विशेष चमत्कार आ जाता है। इसी चमत्कार को अर्थालंकार कहते हैं। यह अलंकार अर्थ पर निर्भर रहता है, इसलिये इसके शब्द पर्याय-वाची शब्दों से बदल दिए जा सकते हैं।

(३) ऊपर कहे हुए अलंकारों में से किसी प्रकार के एक से अधिक अलंकारों के सम्मेलन को ‘उभयालंकार’ कहते हैं, परन्तु उसमें नियम यह है कि जिस अलंकार की मुख्यता समझी जायगी वही अलंकार मान लिया जायगा।

शब्दालंकार

नीचे लिखे हुए मुख्य १० शब्दालंकार सर्वमान्य हैं:—

(१) अनुप्रास (२) चित्र (३) पुनरुक्ति-प्रकाश (४) पुनरुक्तिवदाभास (५) प्रहेलिका (६) भाषा-समक (७) यमक (८) वक्रांति (९) वीप्सा और (१०) श्लेष।

(१) अनुप्रास

दो०—व्यंजन सम बरु स्वर असम, अनुप्रासऽलंकार।

छेक, वृत्ति, श्रुति, लाट अरु, अंत्य पाँच बिस्तार ॥

विवरण—जहां व्यजनों की समानता हो, चाहे उनके स्वर मिलें वा न मिलें, उसे 'अनुप्रास-अलंकार' कहते हैं। इसके ५ भेद हैं—(१) छेक (२) वृत्ति (३) श्रुति (४) लाट (५) अंत्य।

सूचना—फ़ारसी, अरबी, तथा उर्दू में अनुप्रास और यमक-अलंकारों को "तजनीस" कहते हैं। हिंदी की तरह इन भाषाओं में भी इन अलंकारों के अनेक भेद हैं।

(१) छेकानुप्रास

दो०—बर्न अनेक कि एक की, आवृत्ति एक बार।

सो छेकानुप्रास है, आदि अंत निरधार ॥

विवरण—जहां एक अक्षर की वा अनेक अक्षरों की आवृत्ति केवल एक बार हो, चाहे वह आदि में हो चाहे अंत में। जैसे—
१—दोहा-राधा के बरबैन सुनि, चीनी चकित सुभाय।

दाख^१ दुखी मिसरी मरी, सुधा रही सकुचाय ॥

यहां 'बर' और 'बैन' में 'ब' की, 'चीनी' और 'चकित' में 'च' की, 'दाख' और 'दुखी' में 'द' की, 'मिसरी' और 'मरी' में 'म' की, तथा 'सुधा' और 'सकुचाय' में 'स' की आवृत्ति शब्दों के आदि में हुई है।

२—दोहा-जन-रंजन भंजन-दनुज,^२ मनुज-रूप सुर भूप।

विश्ववदर-इव^३ धृत-उदर^४, जावत सोवत सूप ॥

इस उदाहरण के 'रंजन' और 'भंजन' में 'दनुज' और 'मनुज' में, 'वदर' और 'उदर' में, 'जावत'^५ और 'सोवत' में अंत के दो-दो अक्षरों की आवृत्ति एक बार है। 'रूप' और 'भूप' में अंत में एक अक्षर की आवृत्ति है। 'विश्व' और 'वदर' में, 'सोवत' और 'सूप' में आदि में एक २ अक्षर की आवृत्ति है।

१ मुनक्का। २ राक्षस ३ बैर के समान। ४ पेट। ५ देखता है।

३-कवित्त-बांधे द्वार का करी^१, चतुर चित्त का क^२ री,
 सो उमिर वृथा करी न राम की कथा करी ।
 पाप को पिनाक^३ री, न जानै नाक^४ नाकरी,^५
 सुझारिल^६ की नाकरी^७, निरन्तर ही ना करी ॥
 ऐसी सूमता करी, न काऊ समता करी,
 सु 'बेनो' कविता करी, प्रकास तासु ताकरी^८ ।
 देव-अरचा^९ करी न ज्ञान-चरचा करो,^{१०}
 न दीन पै दया करी न बाप की गया करी ॥

विवरण—इसमें 'का करी' और 'काक री' में तीन अक्षरों की आवृत्ति, 'वृथा' और 'कथा' में 'थ' की आवृत्ति, 'सूमता' और 'समता' में तीन अक्षरों की आवृत्ति, 'अरचा' और 'चरचा' में दो की आवृत्ति, 'दया' और 'गया' में एक अक्षर की आवृत्ति अतः हैं। 'चतुर' और 'चित्त' में 'च' 'त' की आवृत्ति आदि में है। 'दीन' और 'दया' में 'द' की आवृत्ति आदि में है।

(२) वृत्यनुप्रास

दो०-बर्न अनेक कि एक की, जहँ सरि कैयो बार ।
 सो है वृत्यनुप्रास जो, परै वृत्ति-अनुसार ॥

विवरण—छेकानुप्रास की तरह आदि वा अन्त में एक वर्ण की वा अनेक वर्णों की समता वृत्तियों के अनुकूल कई बार पड़े, उसे वृत्यनुप्रास कहेंगे।

सूचना—इस अलंकार को समझने के लिये पहले यह समझ लेना चाहिए कि हिंदी कविता में वृत्तियाँ तीन हैं—(१) उपनागरिका ।

१ हाथी । २ कौवे के समान । ३ पुराना धनुष । ४ इज्जत । ५ स्वर्ग ।
 ६ एक पक्षी जो अपने चंगुल में लकड़ी लिए रहता है । ७ लकड़ी ।
 ८ ताकी, देखो । ९ पूजा । १० गया में पितृ आराधना ।

(१) परुषा और (३) कोमला । इन्हीं तीनों के अन्य नाम क्रम से वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली भी हैं ।

(१) माधुर्यगुणसूचक वर्ण अर्थात् टवर्ग को छोड़कर शेष मधुर वर्ण और सानुनासिक वर्ण जिस कविता में हों उसे 'उपनागरिका-वृत्ति' कहते हैं ।

(२) टवर्ग, द्वित्त वर्ण, रेफ और श, ष इत्यादि वर्ण और लंबे समास तथा संयुक्त वर्ण जिसमें अधिक हों उसे 'परुषा-वृत्ति' कहते हैं ।

(३) य, र, ल, व, स, ह और छोटे समास वा समास रहित शब्द जिसमें अधिक हों उसे 'कोमला-वृत्ति' कहते हैं ।

शृंगार, करुणा और हास्य-रस की कविता उपनागरिका में, रौद्र, वीर और भयानक-रस की कविता परुषा में और शांत, अद्भुत और वीभत्स-रस की कविता कोमला-वृत्ति में अच्छी लगती है ।

(उपनागरिका-वृत्ति के अमुकूल)

१—धर्म धुरीन^१ धीरनय-नागर^२ । सत्यसनेह सीलसुखसागर ।

बिरति^३ बिबेक बिनय बिज्ञाना । बोधजथारथ^४ बेद पुराना ॥

२—पद—रघुनंद आनंद-कंद कोसल^५ चंद दसरथ-नंदन ।

३—कवित्त—भनत 'मुरार' देस-देसन में कीर्ति गाई,

ऐसी चपलाई कहाँ छाई है कवन में ।

नट में न नारि में न नय^६ में न नैनन में

मृग में न मारुत में मीन में न मन में ॥

१ धर्म की धुरा धारण करनेवाले, धर्मिष्ठ । २ नीति-निपुण । ३ वैराग्य । ४ यथार्थ, ठीक । ५ अयोध्या का राज्य । ६ नीति ।

४—पद—सोइ जानकी-पति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई ।

५—क०—देव-बंदिनी के निमि^१-बंस-चंदिनी के जुग,
नीके पद-कंज, मिथिलेस-नंदनी के हैं ।

६—दो०—लोपे^२ कोपे इंद्र लौं, रोपे प्रलय-अकाल ।
गिरिधारी राखे सबै, गो गापी गोपाल ॥

(परुषा-वृत्ति के अनुकूल)

१—दो०—बक्र^३ बक्र^३ करि पुच्छ करि, रुष्ट^४ अक्ष^५ कपि-गुच्छ^६ ।
सुभट^७ ठट^८ घन-घट^९ सम, मर्दहि रच्छन^{१०} तुच्छ ॥

२—क०—बारि^{११} टारि डारौं कुंभकर्नहि बिदारि डारौं,
मारौं मेघनादें आजु यौ बल-अनंत^{१२} हौं ।
कहै 'पद्माकर' त्रिकूटहू^{१३} को ढाहि डारौं,
डारत करेई जातुधानन^{१४} को अंत हौं ॥
अच्छहि^{१५} निरच्छ^{१६} कपि रुच्छ^{१७} हूँ उचारौं इमि,
तोम तिच्छ तुच्छन^{१८} को कछुवैन गंत^{१९} हौं ।
जारि डारौं लंकहि उजारि डारौं उपवन,
फारि डारौं रावनें तो मैं हनुमंत हौं ॥

३—छ०—मुंड कटत कहूँ रुंड नटत^{२०} कहूँ सुंड पटत घन^{२१} ।
गिद्धलसत कहूँ सिद्ध हंसत सुख-वृद्धि रसत^{२२} मन ॥

१ जनक के पूर्वपुरुष । २ पूजा के लुप्त होने पर । ३ वक्त्र, मुख ।
४ टेढ़ा । ५ क्रुद्ध भालु । ६ समूह । ७ झुंड । ८ बादलों की घटा । ९-
राक्षस । १० जल । ११ अत्यंत बलवाला । १२ लंका के तीन ऊंचे गिरि-
शिखर (सुबेला, लंका, निकुंभिला) । १३ निशाचर । १४ अक्षयकु-
मार । १५ निःसहाय । १६ रुष्ट । १७ तीक्ष्ण और तुच्छों का समूह । १८
गिनता हूँ । १९ नाचते हैं । २० बहुत से । २१ फैलती है, सरसती है ।

भूत फिरत करि बूत^१भिरत सुर-दूत घिरत^२तहँ ।
 चंडि नचत गन मडि रचत^३धुनि-डंडि^४मचत जहँ ॥
 इमि ठानि घोर घमसान अति, 'भूषन' तेज कियो अटल ।
 सिवराज साहि-सुव खग-बल,^५दलि अडोल बहलोल-दल^६ ॥
 ४-छ०-क्रुद्ध फिरत अति जुद्ध जुरत नहिं रुद्ध^७मुरत भट ।
 खग बजत अरि बग^८नजत सिर पग^९सजत चट ॥
 दुक्कि^{१०}फिरत मदभुक्कि^{११}भिरत करि कुक्कि^{१२}गिरत गनि ।
 रंग-रकत^{१३}हर-संग छकत चतुरंग थकत भनि ॥
 इमि करि संगर^{१४}अति ही बिषम, 'भूषन'सुजस कियो अचल ।
 सिवराज साहि-सुव खग-बल, दलि अडोल बहलोल-दल ॥
 ५-तो०-खग काक कंक^{१५}सुगाल । कटकटहि कठिन कराल ॥

(कोमला-वृत्ति के अनुकूल)

१-चौ०-सत्य-सनेह सील-सुख-सागर ।
 २-दो०-स्यामल-गौर किसोर बर,^{१६}सुंदर सुखमा-पेन^{१७} ।
 ३-क०-ख्याल ही की खोल^{१८}मैं अखिल^{१९}ख्याल खेलि-खेलि,
 गाफिल हूँ भूलौ दुख-दोष की खुस्याली तैं ।
 लाख-लाख भाँति अभिलाष लखे लाख अरु,
 अलख^{२०}लख्यौ न लखी लालन^{२१}की लाली तैं ॥
 हरि-हर 'देव' प्रभु सों न पल पाली प्रीति,

१ बल, जोर । २ घिरते हैं, जुटते हैं । ३ गणों से युक्त होकर । ४ द्वंद्व युद्ध । ५ खड्ग के जोर से । ६ सेना । ७ लड़ने में लगे हुए । ८ घोड़े की डोर (बाग) । ९ पगड़ी । १० छिरकर । ११ मदमस्त होकर । १२ कूक, शब्द । १३ रक्त, खून । १४ युद्ध । १५ गृद्ध । १६ श्रेष्ठ । १७ शोभा के घर । १८ योग । १९ संपूर्ण । २० ब्रह्म । २१ रत्न ।

दै.दै करताली न रिभायौ बनमाली^१ तैं ।
 भूठी भिलमिल^२ की भलक ही मैं भूलौ जल-
 मल की पखाल^३ खल खाली^४ खाल^५ पाली तैं ॥

४—क०—बावन से रावन से रामजू सों खेलि-खेलि,
 खलनि की खालनि खिलौना ज्यों खिलाइगे ।
 काटे काल-ब्याल पेसे, बली बलभद्र-पेसे,
 बलि-पेसे बालि-से बबूला^६-से बिलाइगे ॥

इन उदाहरणों में र, ख और ल की अनेक आवृत्तियाँ हैं ।

५—दो०—जप-माला छापा-तिलक, सरें न^७ एकौ काम ।
 मत काँचै नाँचै बृथा, साँचै राँचै^८ राम ॥

सूचना—छेक और वृत्ति-अनुप्रासों को अँगरेजी में 'अलिट्रेशन'
 (Alliteration) कहते हैं । नीचे लिखा हुआ उदाहरण शेक्सपियर ने
 लार्ड क्लजी को लक्ष्य करके बहुत अच्छा लिखा है—

Begot by butcher, by bishop bred.
 How high His Highness holds his haughty head.

(३) श्रुत्यनुप्रास

जहाँ तालु-कंठादि की, व्यंजन-समता होय ।
 सोई श्रुत्यनुप्रास है, कहत सुघर कवि-लोय ॥

विवरण—जहाँ तालु, कंठ आदि स्थानों से उच्चरित

१ श्रीकृष्ण । २ चमक । ३ मशक । ४ केवल । ५ चमड़ा । ६ बुलबुला
 ७ नहीं होता । ८ अनुरक्त होता है । ९ कसाई से उत्पन्न और पुरोहित के
 पाले हुए श्रीमान् अपना क्रोध से भरा दिमाग इतना ऊँचा कैसे किए
 हुए हैं ।

होनेवाले व्यंजनों की अर्थात् एक स्थान से उच्चरित होनेवाले वर्णों की समता हो, उसे श्रुत्यनुप्रास कहते हैं। स्मरण रहना चाहिए कि—

(१) अ, आ, क, ख, ग, घ, ङ, ह और विसर्ग (:) का उच्चारण कंठ से होता है।

(२) इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ और श का उच्चारण तालु से होता है।

(३) ऋ, ॠ, ट, ठ, ड, ढ, ण, ष का मूर्द्धा से होता है।

(४) लृ, त, थ, द, ध, न, ल और स का दाँतों से होता है।

(५) उ, ऊ, ए, फ, ब, भ, म का उच्चारण आँठों से होता है।

(६) प, पे का उच्चारण कंठ और तालु से होता है।

(७) ओ और औ का उच्चारण कंठ और आँठ से।

(८) व का दाँत और आँठ से।

(९) पंचम वर्ण और अनुस्वार का नासिका से।

सूचना—इस विचार से जब कविता में ऐसे शब्द रखे जाते हैं जो एकस्थानीय उच्चारणवाले अक्षरों से बने हों, तो उस कविता में एक प्रकार की धारा-प्रवाहिनी शक्ति और मधुरता आ जाती है और उसका सुनना कानों को मग्न लगता है। इसके विरुद्ध टवर्गवाले शब्द कानों में खटकते हैं।

‘तुलसिदास’ सीदत^१ निसि-दिन देखत तुम्हारि निदुराई।
इसमें अधिकतर दंत्य अक्षर आए हैं इससे यह पद बहुत मीठा जान पड़ता है। और—

पर क्या न विषयोत्कृष्टता^२ करती विचारोत्कृष्टता^३ ?

१. दुःख पाता है। २. विषय की उत्तमता। ३. विचार की उत्तमता।

इस रचना में शब्दों का संगठन वैसा नहीं है, इसलिये कानों को कटु जान पड़ता है। इसी तरह और भी समझ लो। 'तुलसी' और 'पद्माकर' की कविता में यह गुण अधिक है।

(४) लाटानुप्रास

दो०—शब्द अर्थ एकै रहै, अन्वय करतहिं भेद ।
सो लाटानुप्रास है, भाषत सुकवि अखेद ॥

विवरण—(पहले कहे हुए अनुप्रास अक्षरों के अनुप्रास हैं, पर लाटानुप्रास शब्द का अनुप्रास है)। शब्द और उसका अर्थ वही रहे, केवल अन्वय करने से अर्थ में भेद हो जाय, उसे 'लाटानुप्रास' कहते हैं। यह अनुप्रास 'लाट' देशवाले कवियों का निकाला हुआ है। इसीसे इसका यह नाम पड़ा है।

उदाहरण—

१—दो०—तीरथ-व्रत-साधन कहा, जो निसदिन हरि-गान ।
तीरथ-व्रत-साधन कहा, बिन निसदिन हरि-गान ॥

यहाँ शब्द और अर्थ दोनों की आवृत्ति है केवल तात्पर्य में भेद है; अर्थात् जो मनुष्य रात-दिन हरि-यश-गान करता रहे तो उसके लिये तीर्थ, व्रत और साधन आवश्यक नहीं हैं। जिस तीर्थ, व्रत और साधन में रात-दिन हरि-यश-गान का विधान न हो वह तीर्थ, व्रत और साधन व्यर्थ है।

२—दो०—राम हृदय जाके बसैं, बिपति सुमंगल ताहि ।

राम हृदय जाके नहीं, बिपति सुमंगल ताहि ॥

जिसके हृदय में राम बसते हैं, उसके लिये विपत्ति भी

१ गुजरात में भड़ौच और अहमदाबाद नगर जहाँ हैं वहीं यह देश था ।

सुमंगल हो जाती है और जिसके हृदय में राम नहीं हैं उसके लिये सुमंगल भी विपत्ति ही है ।

३—दो०—औरन के जाँचे^१ कहा, नहि जाँच्यो सिवराज ।
औरन के जाँचे कहा, जो जाँच्यो सिवराज ॥

४—दो०—मुधा^२ तीर्थ को भ्रमन है, रहैं हरी चित जासु ।
मुधा तीर्थ को भ्रमन है, रहैं न हरिचित जासु ॥

कभी-कभी कोई एक शब्द अन्य शब्दों के साथ समास द्वारा मिल जाता है; जैसे—

५—क०—तुरमती^३ तहखाने गीदर गुसुलखाने,^४
सूकर सिलहखाने^५ कूकत करीस^६ हैं ॥
हिरन हरमखाने स्याही हैं सुतुरखाने,^७
पाढ़े^८ पीलखाने औ करंजखाने^९ कीस हैं ॥ ।
'भूषण' सिवाजी गाजो^{१०} खग सों खपाए खल,
खाने-खाने खलन के खेरे^{११} भए खीस^{१२} हैं ।
खड़गी^{१३} खजाने खरगोस खिलवतखाने,^{१४}
खीसैं खाले^{१५} खसखाने खाँसत खबीस^{१६}

इस कवित्त में 'भूषण' ने सब प्रकार के अनुप्रास एकत्र दिखलाए हैं । तहखाने, गुसुलखाने, सिलहखाने, हरमखाने, सुतुरखाने, पीलखाने, करंजखाने, खिलवतखाने, खसखाने

१ याचना करने से, माँगने से । २ व्यर्थ । ३ तुर्की तुरमता, बाज की तरह एक शिकारी चिड़िया । ४ स्नान करने का घर । ५ हथियार रखने का स्थान । ६ श्रेष्ठ हाथियों की तरह कूँ कूँ करते हैं । ७ जँठों के रहने का झाड़ा । ८ एक प्रकार का हरिण । ९ मुर्गों के रहने की जगह । १० धर्म-युद्ध में लड़नेवाला । ११ छोटा गाँव । १२ नष्ट हो गए । १३ गँडा । १४ एकांत स्थान । १५ दाँत निकाले । १६ बुद्ध जीव ।

इत्यादि शब्दों में 'खाने' शब्द का अर्थ सब जगह एक ही है, परंतु भिन्न-भिन्न शब्दों के साथ समास होने से उन शब्दों के अर्थ भिन्न-भिन्न हो जाने से लाटानुप्रास है ।

तुरमती तहखाने, गीदर गुसुलखाने, सूकर सिलहखाने, हिरन हरमखाने, स्याही हैं सुतुरखाने, पाढ़े पीलखाने, करंज खाने कीस हैं, खरगोस खिलवतखाने इत्यादि शब्दों में छेकानुप्रास है ।

अंतिम दोनों चरणों में 'ख' की आवृत्ति अनेक बार होने से वृत्त्यनुप्रास ।

(५) अंत्यानुप्रास

दो०—व्यंजन स्वरयुत एक-से, जो तुकांत में होंहिं ।

सो अंत्यानुप्रास है, अरु तुकांतहू ओहि ॥

विवरण—प्रत्येक छंद में चार चरण होते हैं । चारों चरणों के अंत्याक्षर 'तुकांत' कहलाते हैं । इसी तुकांत को अंत्यानुप्रास कहते हैं । भाषा-काव्य में तुकांत बहुत अच्छा लगता है । इसी को फारसी तथा उर्दू में 'क्राफिया' कहते हैं । भाषा काव्य में छः प्रकार के तुकांत हो सकते हैं—

(१) सर्वांत्य-जैसे किसी सवैया वा कवित्त (मनहरण) के चारो तुकांत एक-से होते हैं ।

(२) समांत्य-विषमांत्य-अर्थात् पहले और तीसरे चरण का और दूसरे और चौथे चरण का तुकांत एक ही; जैसे—

(क) जेहि सुमिरत सिधि होय, गन-नायक करि-बर-बदन^१ ।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि-रासि सुभ-गुन-सदन ॥

^१ श्रेष्ठ हाथी के से मुखवाले ।

- (ख) मूक होहिं वाचालु,^१ पंगु चहै गिरिवर गहन^२।
जासु कृपा सु दयालु, द्रवहु सकल कलि-मल-दहन^३ ॥
- (ग) कुंद-इंदु सम^४ देह, उमा-रमन^५ करुना-अयन^६।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मर्दन-मयन^७ ॥
- (३) समांत्य—जिसमें केवल दूसरे और चौथे चरण का तुकांत समान हो, जैसे दांहे का हांता है।
- (क) एक छत्र एक मुकुट मनि, सब बर्नन पर जोउ^८।
तुलसी रघुबर-नाम के, बरन^९ विराजत दोउ ॥
- (ख) या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहि कोय।
ज्यों ज्यों भीजै^{१०} स्याम-रंग^{११} त्यों-त्यों उज्ज्वल होय ॥
- (४) विषमांत्य—जिसमें पहले चरण और तीसरे चरण का तुकांत एक-सा हो; जैसे—
- (क) सो०—सुनि केवट के वैन, प्रेम-लपेटे अटपटे।
बिहैसे करुना-पेन, चितै जानकी-लखन-तन^{१२} ॥
- (ख) धरनि धरहु मन-धीर, कह बिरंचि^{१३} हरि-पद सुमिरि।
जानत जन की पीर, प्रभु भंजहि^{१४} दारुन विपति ॥
- (५) सम-विषमांत्य—जिसमें पहले और दूसरे का और तीसरे और चौथे चरणों का तुकांत एक-सा हो, जैसे—
- (क) चौपाई—

गुनहु^{१५} लखन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहु तैं बड़ दोषू।
टेढ़ जानि संका सब काहु, बक्र चंद्रमहि असै न राहु ॥

१ बहुत बोलनेवाला। २ दुर्गम। ३ पाप का मल जलानेवाले। ४ कुंद पुष्प और चंद्रमा के समान (गौर वर्ण)। ५ पार्वती के पति। ६ दया के घर। ७ कामदेव को नष्ट करनेवाले। ८ देखो। ९ अक्षर। १० भोगे, अनुरक्त हो। ११ काला रंग, श्रीकृष्ण का स्वरूप। १२ और। १३ ब्रह्मा। १४ काटते हैं, नष्ट करते हैं। १५ मानते हैं, समझते हैं।

(ख) हरिगीतिका छंद—

पद-कमल धोइ चढ़ाइ नाव, न नाथ उतराई चहौं ।
मोहिं राम राउरिआन, 'दसरथ-सपथ सब साँची कहौं ॥
बरु तीर मारहिं लखन पै, जब लगि न पाँव पखारिहौं ।
तब लगि न 'तुलसीदास' नाथ, कृपालु पार उतारिहौं ॥

(६) भिन्नांत्य—भिन्न-तुकांत वा बेतुकी जिसमें चारो
धरणों में भिन्न-भिन्न तुकांत हों । इसे अंगरेजी में 'ब्लैंक-वर्स'
(Blank verse) कहते हैं । हिंदी के प्राचीन कवियों ने
ऐसी कविता नहीं लिखी, हाल में कुछ लोग लिखने लगे हैं, जैसे—
पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने 'प्रियप्रवास' में लिखी है ।

सूचना—भिन्न-तुकांत कविता के लिये कुछ वर्णिक छंद ही उपयुक्त
जान पड़ते हैं, जैसे—शार्दूलविक्रीडित, बंशस्थ, द्रुतविलम्बित, इंदवज्रा,
भुजगप्रयात, वसंततिलका इत्यादि । मात्रिक छंदों में भिन्न-तुकांत
कदापि अच्छा नहीं लगता ।

(२) चित्र

दो०—चित्र बरन-बिन्यास है, कमलादिक आकार ।
गोरखधंधा-समनिरस, त्यागत सुकवि विचार ॥

विधरण—छंद-रचना में ऐसे वर्ण लाना जिनके द्वारा
विशेष-विशेष विन्यास से विशेष चित्र बन जाएँ ।

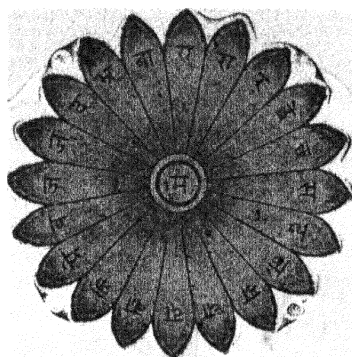
(१) चित्रकाव्य—इसमें 'अलंकारत्व' नहीं है केवल कवि की
चतुर्गाई और परिश्रम का परिचय मिलता है । इस काव्य-
द्वारा कमल, छत्र, चक्र, चँवर, खड्ग, तखत, दंड, रथ, ध्वजा,
हाथी, घोड़ा, मनुष्य, हंस, दर्पण, वृक्ष इत्यादि के चित्र बन

सकते हैं। विस्तार-भय से सबके उदाहरण न देकर केवल कुछ ही देते हैं।

कमल-बंध—(दोहा)

राम-राम-रम छेम-छम, सम दम जम भ्रम-धाम ।

दाम काम क्रम-प्रेम यम, जम-जम दम भ्रम-बाम ॥ *



चित्र-संख्या—१ +

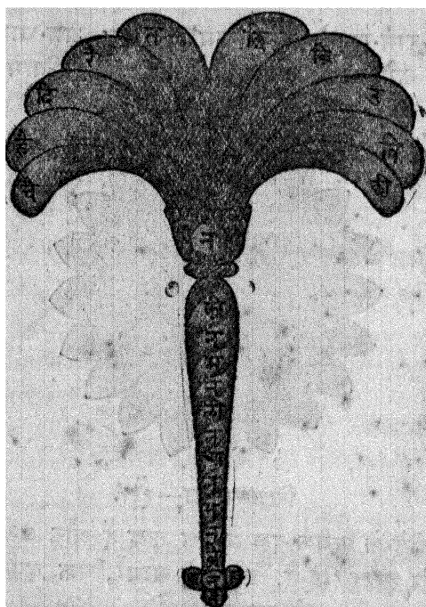
इस दोहे के प्रत्येक दल में दस शब्द हैं और प्रत्येक शब्द का दूसरा अक्षर 'म' है, इसलिये चामर, चक्र, दर्पण इत्यादि कई एक अन्य चित्र भी बन सकते हैं।

❁ राम-राम रटना क्षेम करने में समर्थ है, सम, दम और यम (नियम) तो भ्रम के घर हैं। धन कमाना और कर्म से प्रेम करना व्यर्थ है। यम तो यम (काल) है और दम तो (भूटा) भ्रम और टेढ़ा है।

+ 'कमल-बंध' में प्रत्येक दल के छोर में एक एक अक्षर रखा जाता है और कोण (मध्य) में भी एक अक्षर रहता है। प्रत्येक अक्षर कोण के अक्षर के साथ मिलाकर क्रम से पढ़ते हैं (देखो चित्र)। —संपादक।

चामर-बंध-(दोहा)

नैन-बान-हन बैन भन, ध्यान-लीन मन कीन ।
चैन है न दिन-रैन तन, छिन-छिन उन बिन छीन ॥*



चित्र-संख्या—२ †

❀ (उस विरहिणी को) नयन रूपी बाणों ने हनन किया है, वह (अडबड) बातें बका करती है । उसने मन को (नायक के) ध्यान में लोन कर दिया है । उसके शरीर को रातोदिन चैन नहीं मिलता । इसके बिना यह क्षण-क्षण क्षीण हो रही है ।

† चामर-बंध दंड के नीचे से आरंभ होता है । नोक के अक्षर को

ऊपर लिखे हुए दोहे की भाँति इस दोहे से भी कमल का चित्र बन सकता है। इन्हीं दोनों दोहों से दर्पण, चक्र, मुष्टिका, हार, हलकुंडी, चामर, चौकी, कपाट इत्यादि बहुत से चित्र बन सकते हैं।

इस दोहे में भी कमल-बंध की-सी रचना है। प्रत्येक दल में दस शब्द हैं और प्रत्येक शब्द का दूसरा अक्षर एक ही 'न' है। इससे भी कमल-बन्ध बन सकता है (चामर-चित्र देखो)।

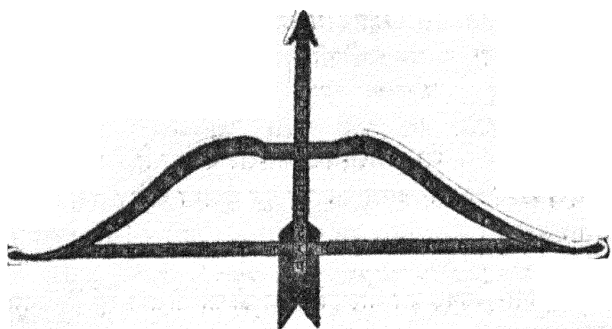
सूचना—कमल बंध और दर्पण-बंध को फारसी तथा उर्दू में 'सतअत मुदौवर' कहते हैं।

(धनुष-बंध—दोहा)

परम-धर्म हरि हेरहीं, 'केसव' सुनै पुरान ।
मन-मन जानै नार द्वै, जिय जसु गुनत न आन ॥ *

मुष्टि के आधार के मध्य में स्थित अक्षर से मिलाकर पढ़िए। फिर बाईं ओर के अक्षर को मध्य के अक्षर से मिलाइए और तत्पश्चात् दाहिनी ओर के अक्षर को उपर से मिलाकर पढ़िए। इसके अनंतर कम से दंड के अक्षरों को ऊपर की ओर पढ़ते जाइए। शीर्ष स्थान में पहुँचकर बालों के छोर में स्थित अक्षरों को शीर्ष में स्थित अक्षर से मिलाकर बाईं ओर से क्रमपूर्वक पढ़िए।

❀ परमधर्म-स्वरूप भगवान को खोजे और पुराणों को सुने। मन-ही-मन दो नारियों (स्त्री और माया) को जान ले और हृदय से अन्य के वश का गान न करे।



चित्र-संख्या—३

इस चित्र में बाण दो जगह धनुष से मिलता हुआ गया है। कटनेवाले स्थानों के अक्षरों को दो बार पढ़ो।

इसी चित्रालंकार के अंतर्गत प्राचीन कवियों ने अनेक भेद माने हैं, जिनमें मुख्य-मुख्य ये हैं।

(१) निरोष्ठ—जिसके पढ़ने में परस्पर ओंठ न छू जायें; जैसे—

(कवित्त) लोक-लीक^१ नांकी लाज लीलत हैं^२ नंदलाल,
लोचन ललित लोक-लीला के निकेत^३ हैं।

ॐ पहले बाण की फोंक के अक्षर को प्रत्यंचा के बीचोबीच स्थित अक्षर से मिलाइए और प्रत्यंचा में दाहिनी से होकर वक्राकार दंड के अक्षरों को बाईं ओर की कोटि तक पढ़ जाइए। फिर प्रत्यंचा में आकर मध्य में स्थित अक्षर से बाण में ऊपर की ओर बढ़िए और अनी तक पढ़ते चले जाइए।

१ लोक-मर्यादा। २ लज्जा छुड़ा देते हैं। ३ घर।

सौंहनि को सोच ना सँकोच लोकालोकनि^१को,
 देत सुख, ताको सखी दूनो दुखदेत हैं ॥
 'केसोदास' कान्हर^२कनेर ही के कोरक-से,^३
 अंगरग राते अंग अंतरंग सेत हैं^४ ।
 देखि-देखि हरि की हरनता^५हरिननैनी,
 देखत ही देखो नहीं हियो हरि लेत हैं^६ ॥
 ऐसी कविता में प, फ, ब, भ, म इत्यादि अक्षर न लाने
 चाहिए ।

सूचना—इसको फारसी तथा उर्दू में 'वसेउसशफ्तैन' कहते हैं ।

इससे ठीक विरुद्ध ऐसी कविता भी हो सकती है, जिसके
 प्रत्येक शब्द के पढ़ने में ओंठ से ओंठ मिलें । ऐसी रचना
 'सोष्ठ' कहलाएगी ।

(२) अमत्त—जिसमें मात्राएँ न हों; जैसे—

कवित्त—जग जगमगत भगत-जन-रस-वस,^७

भव-भय-हर कर,^८ करत अचर चर ।

कनक-बसन^९तन असन-अनल-बड़,^{१०}

बट-दल-बसन सजल-थल थलकर^{११} ॥

१ बदनामी । २ कृष्ण । ३ कनेर के फूल की तरह । ४ अंग के रंग से,
 बाहरी दिखावे से तो लाल (अनुरक्त) हैं और भीतर से उज्ज्वल (अनु-
 राग-रहित) हैं । ५ मनोहरता । ६ देखो क्या ये देखते ही हृदय नहीं
 हर लेते ? ७ भक्तों की भक्ति के वश होकर संसार में जगमगाता है (अव-
 तार लेता है) । ८ हाथ सांसारिक भय को हरता है । ९ अर्थात् पीतांबर ।
 १० दावानल खा जानेवाले (श्रीकृष्ण एक बार गोपों के लिये दावानल
 पी गए थे) । ११ जिसने मारकंडेय के लिये स्थल सजल किया और स्वयं
 बट के पत्ते में वास किया ।

अजर-अमर-अज-बरद^१ चरन-धर,^२

परम-धरम-गन-चरन सरन-पर^३ ।

अमल-कमल-बर-वदन, सदन-जस,^४

हरन-मदन-मद^५ मदन-कदन-हर ॥

सूचना—इस अलंकार को फारसी तथा उर्दू में 'मुकत्ता' कहते हैं ।

(४) अंतर्लापिका—

दो०—उत्तर आवै अंत में, प्रश्न जहाँ ही होय ।

सोई अंतर्लापिका, कहत सुकवि सब कोय ॥

विवरण—जिस प्रश्न का उत्तर प्रश्न के अंतर्गत ही हो, उसे 'अंतर्लापिका' कहते हैं; जैसे—

१—सो०—भूषित का हरि अंग ?, कोह भरे का तिय करै ?
काते होय अनंग ?, को मराल-हित ? 'मानसर' ॥

यहाँ चार प्रश्न हैं—हरि के अंग को कौन भूषित करता है ?
उत्तर—'मा' = लक्ष्मी । क्रोधित होकर स्त्री क्या करती है ?
उत्तर—'मान' । काम किससे पैदा होता है ? उत्तर—'मानस' =
मन । हंस का हितू कौन है ? उत्तर—'मानसर' । इसलिये
'मानसर' इसका उत्तर है ।

२—दो०—कौन जाति सीता सती ? दयो कौन को तात ।
कौन ग्रंथ बरन्यो हरी ? 'रामायन' अवदात^६ ॥

१ ब्रह्मा और महादेव जिसके चरण को धरते हैं । २ परम धर्म का बरख करनेवाले (ब्राह्मणों) के लिये जो शरण्य है । ३ यश के घर । ४ अपने सौंदर्य से काम का मद हरनेवाले । ५ काम के नाश को हरनेवाले, काम को प्रथु स्वरूप से पुनः उत्पन्न करनेवाले (श्राकुण्ण) । ६ सुंदर ।

सती सौताजी किस जाति की खो थीं ? इसका उत्तर है—
‘रामा’ (जो सबके मन को अपने में रमा ले) । उनके पिता
ने किसको दिया था ? उत्तर है—‘रामाय’ (राम को) । कौन
ग्रंथ में उनका हरण वर्णन किया गया है ? उत्तर है—‘रामायण’ ।
प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में एक-एक अक्षर बढ़ता गया है ।

(५) बहिलापिका—

दो०—बाहर से उत्तर कद्वै बहिलापिका सोय ।

विवरण—जिस प्रश्न का उत्तर प्रश्नांतर्गत न होकर
बाहर से निकले उसे ‘बहिलापिका’ कहते हैं, यथा—

कवित्त—भाषैं काह सज्जन को^१ ? कौन संभु-बाहन है^२ ?,
काको सुख होत^३ ? काकी माल सिव धारो है^४ ।
कहा गज-बंधन छबीले^५ ? दूग काके अति^६ ?,
कौन हर-पुत्र^७ ? सीप-सुत को सुप्यारो है^८ ॥
शोभा को सुनाम का है^९ ? रुसुन नख धारो कहा^{१०} ?,
सिंधु सों मिलत कौन^{११} ? काह अनियारो है^{१२} ।
उत्तर के वर्नन में आदि-अंत छोड़ दीजै,
मध्य लीजै सो हिये मनोरथ हमारो है ॥

सूचना—‘अंतर्लापिका’ और ‘बहिलापिका’ के तीन-तीन भेद हैं:—
(१) आद्याक्षरी, (२) मध्याक्षरी और (३) अंत्याक्षरी । कवि जैसा
चाहे वैसा लिखे ।

१ सयाने । २ बरद । ३ सुकृति । ४ कपाल । ५ साँकड़ । ६ हरिही ।
७ गनेश । ८ मुक्ता । ९ पानिप । १० पहाड़ । ११ सरिता । १२ नक्क ।
इन सप्त शब्दों के मध्याक्षर लेने से जो उत्तर निकलता है, वह छंद के
अंतर्गत नहीं है, अतः बहिलापिका है ।

(६) लोमविलोम—

सूधो उलटो बाँचिए, औरै-औरै अर्थ ।
ऐसी रचना करि सकै, जो कवि महा समर्थ ॥

विवरण—सीधा पढ़े तो और अर्थ, उलटा पढ़े तो और अर्थ होता है। ऐसी रचना कोई समर्थ कवि ही कर सकता है।

सूचना—ऐसी रचना 'भिखारीदास' और 'केशवदास' ने की है, परंतु उसका अर्थ बहुत खींच-खाँच कर लगाना पड़ता है, इससे यहाँ नहीं लिखते। इसको फारसी तथा उर्दू में 'सनअत अक्स' कहते हैं।

(७) गतागत—

सीधो उलटो बाँचिए, एकै अर्थ प्रमान ।
कहत गतागत ताहि, कवि 'केशवदास' सुजान ॥

विवरण—सीधा पढ़ें चाहे उलटा, अर्थ वही रहेगा। इस रचना की 'केशव' ने केवल एक ही सवैया कही है। अर्थ-कठिना के कारण उसे न लिखकर केवल दो-चार शब्दों के उदाहरण देते हैं; जैसे—

तखत, दरद, करक, सहज, कसक, कनक, विकट
कवि, नवजीवन ।

सूचना—फारसी तथा उर्दू में इसको 'मकबूल मुस्तवी' कहते हैं।

(८) कामधेनु—

ऐसी रचना जिससे अनेक छंद बन सकें, यथा—

मोरपखा	बनमाल	बिराजत	बेनु बजै	गुन भेव	सुगर्सन
१	२	३	४	५	६
संगसखा	नँदलाल	यभ्राजत	मांद सजै	यगसेव	तुरुर्सन
७	८	९	१०	११	१२
दछि चखा	करियाल	हिलाजत	पावतजै	श्रतितेव	तुहर्सन
१३	१४	१५	१६	१७	१८
ध्यान रखा	छबिजाल	हिछाजत	स्वांतरजै	बलदेव	सुदर्सन
१९	२०	२१	२२	२३	२४

सूचना—इस सबैया में २४ टुकड़े हैं। जहाँ से चाहो छः टुकड़ों का एक पद बनाकर पढ़ो। इसी तरह चारों पद कह लो, तो २४ छंद बन जावेंगे।

साजत है	सिधिपाय	इहांसबि	मांदरता	सुचिवेष	प्रनैबर
१	२	३	४	५	६
आजत है	रिधिराय	छजेछबि	हेतरता	बलदेव	सुधाधर
७	८	९	१०	११	१२
छाजत है	बरभाय	भनै कवि	सुष्टुमता	सुखदेस	गुनाकर
१३	१४	१५	१६	१७	१८
राजत है	यसछाय	यथारबि	रुद्रपता	पनरेस	कृपाधर
१९	२०	२१	२२	२३	२४

सूचना—अपर्युक्त रीति से पढ़ने से इसके भी २४ छंद बन सकेंगे।

(६) दृष्टिकूटक—

दृष्टिकूटक शब्द का अर्थ है, “दृष्टि को छलनेवाला” शब्दों की ऐसी रचना जिसका अर्थ केवल देखने मात्र से न भासे ‘दृष्टिकूटक’ कहलाती है।

ऐसी रचना शब्दों ही पर निर्भर है, अतः इसकी गणना शब्दालंकारों ही में होनी चाहिए। इसमें अर्थ-कठिनता अत्यधिक रहती है, इसलिये कवि लोग ऐसी कविता की गणना अघम-काव्य में करते हैं, परंतु विचार करने से उसके शब्दों में अलंकारता अवश्य पाई जाती है। अतः उसे अलंकार मानना ही चाहिए। भक्तशिरोमणि ‘सूरदास’ ने इस अलंकार से अच्छा काम लिया है और इसी अलंकार में साहित्य-लहरी नामक एक ग्रंथ ही रच डाला है। कौन कह सकता है कि सूर-कृत इस ग्रंथ के पदों में अलंकारता नहीं है। यथा:—

१—दो०—मेष रासि तैं पाँच लौं, गने कहै जो नाम^१ ।

ता भच्छन^२ द्वादस गए, आए नहिं घनस्याम ॥

—(मांस)

२—दो०—अहिवल्ली-रिपु^३ की सुता, ताके पति को हार^४ ।

ता अरि-पति की भामिनी,^५ सदा बसै तुव द्वार ॥

—(लक्ष्मी)

३—पद—कहत किन पददेसी की बात ।

मंदिर-अरध^६ अवधि हरि बदि गए^७ हरि-अहार^८ चलि जात ॥

१ सिंह । २ भोजन (मांस) । ३ नागबेलि का शत्रु (हिम)
४ उसकी लड़की (पार्वती) । ५ उसके पति (महादेव) की माला (घर्प)
६ उसके शत्रु (गरुड़) के स्वामी (विष्णु) की स्त्री (लक्ष्मी) । ७ घर का आधा भाग पखाव या पक्खा (पक्ष, १५ दिन) । ८ कह गए । ९ सिंह का भोजन (मांस = महीना) ।

अजया-भस्त्र^१ अनुसारत^२ नाहीं कैसे के दिवस सिरात^३ ।
ससि-रिपु^४ बरषमानु-रिपु^५ जुग-सम हर-रिपु^६ किए फिरें घात ।
मघ-पंचम^७ लै गए स्याम घन ताते जिय अकुलात ।
बेद नखत ग्रह जारि अरध करि^८ को बरजै हम खात ।
'सूरदास' प्रभु तुमहि मिलन को कर मीड़त^९ पछितात ॥

(३) पुनरुक्ति-प्रकाश

दो०—एक संबंद बहु बार जहँ, परै रुचिरता अथे ।

पुनरुक्ती-परकास सो, बरनै बुद्धि-समर्थ ॥

धिवरण—भाव को अधिक रुचिकर बनाने के लिये एक ही शब्द कई बार कहा जाय । जैसे—

१—दाहा

बनि-धनि-बनि^१ बनिता^१ चलीं, गनि-गनि-गनि डग^१ देत ।
धनि-धनि-धनि अखियाँ, सुखवि सनि-सनि-सनि^१ सुख लेत ॥

२—सवैया

मधुमास^१ मैं 'दासजू' बीस-बिस^१ मनमोहन आइहैं आइहैं आइहैं ।
उजरे इत भौनन^१ को सजनी सुख-पुजन छाइहैं छाइहैं छाइहैं ॥
अब तेरी सौं^१ एरीन सक एक क^१ बिथा सब जाइहैं जाइहैं जाइहैं ।
घन स्याम-प्रभा लखि कै सखियाँ अखियाँ सुख पाइहैं पाइहैं पाइहैं ॥

१ बकरी का भोजन (पत्ती = पत्री, पत्र) । २ नहीं भेजते । ३ बीते ।
४ चंद्रमा का शत्रु (दिन) । ५ सूर्य का शत्रु (रात्रि) । ६ कामदेव ।
७ मघा नक्षत्र से पाँचवा नक्षत्र (चित्रा, चित्ता = चित्त) । ८ (नक्षत्र =
२७ + वेद = ४ + ग्रह = ९) = ४० ÷ २, = २० बीस (विष) । विष
खाने से कौन मना कर सकता है ? ९ मलती हैं । १० सजकर ।
११ स्त्रियाँ । १२ कदम । १३ छवि में लनकर । १४ चैत्र का महीना ।
१५ निश्चय । १६ उजड़े घरों को । १७ कसम । १८ एक दम ।

सूचना—अंग्रेजी में इस अलंकार को 'टाटालोजी' (Tautology) कहेंगे। फारसी तथा उर्दू में 'तजनीस मुकरर' कहते हैं।

(४) पुनरुक्तवदाभास

दो०—जानि परै पुनरुक्ति-सी, पै पुनरुक्ति न होय ।

वदाभासपुनरुक्ति तेहि, भूषन कह सब कोय ॥

विवरण—जहाँ दो शब्द ऐस रखे जायँ जो पर्यायवाची हों और एक-सा अर्थ देते हुए दिखाई दें, परंतु यथार्थ में अर्थ कुछ दूसरा ही हो, उसे पुनरुक्तिवदाभास अलंकार जानो; जैसे—
१—दो०—क्यों न होय छितिपाल^१ सो, नीतिपाल जग एक^२ ।

जाके निकट जु रहत हैं, सुमनस बिबुध अनेक ॥

यहाँ 'सुमनस' और 'बिबुध' का पहली दृष्टि में एक ही अर्थ 'देवता' भासता है, परंतु वास्तव में अर्थ है 'सुंदर चित्तवाले विशेषज्ञ पंडित ।'

२—दो०—बंदनीय केहिके नहीं, वे कबिद मतिमान ।

सुरग^३ गण्ह काठ्य-रस, जिनको जगत^४ जहान^५ ॥

यहाँ 'जगत' और 'जहान' पहले एकार्थवाची जान पड़ते हैं, परंतु विचार करने से अर्थ स्पष्ट हो जाता है ।

३—चौ०—पुनि फिरि^६ राम निकट सो आई ।

प्रभु लछिमन पहुँ बहुरि पठाई ॥

यहाँ 'पुनि' और 'फिरि' में एक अर्थ का आभास है ।

'फिरि' का अन्वय 'आई' के साथ होगा ।

४—दो०—अली भौर गूँजन लगे, होन लगे दल-पात ।

जहँ तहँ फूले रूख तरु, प्रिय प्रीतम किमि जात ॥

१ राजा । २ अद्वितीय । ३ स्वर्ग । ४ जगम- गाता है । ५ संसार में ।

६ पलटकर, लौटकर ।

यहाँ अली और भौर, दल और पात, रूख और तरु तथा प्रिय और प्रीतम एकार्थवाची जान पड़ते हैं, परंतु विचार करने से जान पड़ता है कि अली=सखी, पात होन लगे=गिरने लगे, रूख=रूखे (सूखे) और प्रिय=प्यारा।

५—कवित्त—भृगु-लात-पद हिय प्रियवर राजत हैं,
मोर-पंख पक्ष साजे मेरे मन भावै है।
राजै हार बन-माल आड़ तैं दिखाई देत,
'कासिराज' तन पर गोरज^१ सोहावै है।
रहै परदोष साँझ-समै मैं बिहारी^२ स्याम,
ललित अरुन अंग ताम्र^३ को लजावै है।
दक्षिण हरित हरे रंग-संग बलदेव^४,
कुंजर मतंग-दंत कंध धरे आवै है।

इसमें लात और पद, पंख और पक्ष, हार और बन-माल, परदोष और साँझ, अरुन और ताम्र, हरित और हरे, कुंजर और मतंग एकार्थवाची शब्द जान पड़ते हैं परंतु अर्थ पृथक्-पृथक् है। अर्थात् पद=स्थान। पक्ष=पक्षवाले लोग। बन-माल=वन के वृक्षों का समूह। परदोष=पराया दोष। अरुन=लाल रंग। दक्षिण हरित=दाई ओर। हरे रंग-संग=अत्यंत प्रसन्न चित्त। कुंजर=बहुत बड़ा।

६—कवित्त—अरिन के दल^१ सैन संग रमैं^२ समुहाने^३,
टूक-टूक सकल कै डारे घमसान^४ मैं।

१ गोधूलि। २ घूमनेवाले। ३ ताँबा। ४ बलराम। ५ शत्रुओं की सेना। ६ साथही शयन में रमते हैं, साथ-साथ मरते हैं। ७ समुल्ल आने पर। ८ युद्ध।

दरबार^१ रूरो^२ महानद परबाह पूरो^३,
 बहुत है हाथिन के मद जल-दान^४ मैं ॥
 'मूषन' भनत महाबाहु भौंसिला भुवाल,
 सूर^५, रबि.केसो तेज^६ तीखन कृपान मैं ।
 माल मकरंद कुल-चंद कलानिधि^७ तेरो,
 सरजा सिवाजी जस जगत जहान मैं* ॥
 यहाँ भी दल और सैन, सूर और रबि तथा जगत और
 जहान में वैसा ही आभास है। समझने में अर्थ अलग-अलग है

(५) प्रहेलिका (पहेली)

दो०—प्रश्नहिं में उत्तर कहै, कछू सब्द के फेर ।
 सो प्रहेलिका दोय बिधि, सब्द अर्थगत हेर ॥

(१) शब्दगत प्रहेलिका

१—चौपाई

देखी एक अनोखी नारी । गुन उसमें इक सबसे भारी ।
 पढ़ी नहीं यह अचरज आवै । मरना-जीना तुरत बतावै ॥

उत्तर—हाथ की नारी (नाड़ी)

२—चौ०

बारे^१ से वह सबको भावै । बढ़ा हुआ कुछ काम न आवै ।
 मैं कह दिया है उसका नाम । अर्थ करो कै छाँड़ो ग्राम ॥

उत्तर—दिया (दीपक)

* इसमें और भी कई जगह पुनरुक्तवदाभास है, संगर-घमासान, दर-
 बार, परबाह-पूरो, तेज-तीखन, चंद-कलानिधि ।

१ दरवाजे में । २ उत्तम, भारी । ३ पूर्ण । ४ संकल्प करते समय का
 जल । ५ वीर । ६ चमक, कांति । ७ कलाविद् । ८ जलाने से ।

३—चौपाई

आदि कटे तैं सबको पालै । मध्य कटे तैं सबको सालै ।
अंत कटे तैं सबको मीठा । सो खुसरो मैं आँखों दीठा^१ ॥

उत्तर—काजल

४—चहूँ और फिरि आई । जिन देखी तिन खाई^२ ।

उत्तर—खाई ।

(२) अर्थगत प्रहेलिका

१—दो०—लक्ष्मी-पति के कर बसै, पाँच बरन^३ गनि लेव^४ ।

पहिलो अक्षर छोड़िकै, आय हमें किन देव ॥

उत्तर—दर्शन

२—दो०—सब सुख चाहौ भोगिबो, जौ पिय एकहि बार ।

चंद गहै जहँ राहु^५ को, जइयो तँहि दरबार ॥

उत्तर—राजा बीरबल का दरबार, जहाँ चंद नाम का
एक द्वारपाल था ।

३—दो०—ऐसी मूरि^६ बताव सखि, जेहि जानत सब कोय ।

पीठि लगावत जासु रस, छाती सीरी^७ होय ॥

उत्तर—पुत्र

सूचना—इस अलंकार को फारसी वा उर्दू में 'वीस्वा' वा 'मुअम्मा'
कह सकते हैं ।

(६) भाषा-समक

दोहा-सब्दन की बिधि एक जहँ, भाषा बिबिध प्रकार ।

वाक्य मनोहर होय तहँ भाषा-समक बिचार ॥

१ देखा । २ धोखा खाया । ३ अक्षर । ४ सुदर्शन । ५ राह चलने
वाले, आगंतुक । ६ मूक (जड़) । ७ ठंढी ।

१—सवैया

जा दिन तें जमुना-तट वाहि बजावत बाँसुरी नेक मिहारो ।
होशम रफ्त न माँद बदस्त,^१ भरोस रहै दिन-रैन तुम्हारो ॥
'हाफिज़' फ़िक्र कुदाम नुमायम,^२ कोई उपाय चलै न हमारो ।
हे सखि कोउ उपाउ रचौ फिरि बारक^३ देखिय नंददुलारो ॥

२—सवैया

द्रष्टुं तत्र विचित्रतां सुमनसां^४ मैं था गया बाग में ।
काचित्तत्र कुरंगशावनयना^५ गुल^६ तोड़ती थी खड़ी ॥
उन्नदभ्रधनुषा कटाक्ष विशिखैर्घायल^७ किया था मुझे ।
तत्सीदामि सदैव मोह-जलधौ^८ हैदर गुजारै शुकर^९ ॥

३—सवैया

कासों कहौं मन की कुबिधा अपनो तन आप जराने परो ।
खेशो बुजुर्ग अकारिब राह में देखत^{१०} खूब लजाने परो ॥
घाकी मुरव्वतो उल्फत^{११} मैं हमें 'हाफिज़' हाय बिकाने परो
दिल रफ्तज^{१२} दस्त शुदा अलमस्त^{१३} फिसोस^{१४} महा पछिताने परो

४—सवैया

साँझ समै घर से निकली लिप संग सखी वह साँवरी मूरत ।
नाज़ा नियाज़ नमूद बसे^{१५} अज़ ताब शुदम् मफ़कूद कदूरत^{१६} ॥

१ होश हाथ से निकल गया । २ न जाने कैसी चिंता लग गई है ।
३ एक बार । ४ सुंदर मनवाली की विचित्रता देखने के लिये वहाँ
गया था । ५ वहाँ कोई बालमृग-नयनी । ६ फूल । ७ चढ़ी हुई भीड़ें रूप
धनुष और कटाक्ष रूपी बाणों से घायल किया । ८ मोह रूरी समुद्र में
इसीसे मैं सदा दुःख पाता हूँ । ९ ईश्वर मंगल करे । १० स्वजन, गुरुजन
और समीपी जनों को मार्ग में देखकर । ११ उसकी प्रीति में । १२ मन
हाथ से निकल गया, वह मस्ताना बन गया । १३ अफसोस, खेद । १४ बहुत
स्नेह-भाव दिखलाई पड़े । १५ उनकी चमक से (मेरे मनका) मैल दूर हो गया।

मो तन ताकि दियो हैंसिकै अभिमान भरी कलु भौंह मरुरत ।
होशम रफ्त न माँद बदस्त^१ शुदा दिल मस्त जे दीदने सुरत^२ ॥

सूचना—इस अलंकार को फारसी में 'मुलम्मा' कहते हैं। 'हाफिज़सी-राज़ी' का प्रसिद्ध शेर है:—

अला या ऐ व हस्ताकी अदिर कासन व नाविलहा ।

कि इश्क आसाँ नमूद अव्वल वले उफ़ताद मुश्किलहा ॥ ❀

इसमें पूर्वार्द्ध अरबी भाषा और उत्तरार्द्ध फारसी है ।

(७) यमक

दो०—वहै सब्द फिरि-फिरि परै, अर्थ औरई और ।

सो यमकालंकार है, भेद अनेकन दौर ॥

विचरण—वैसा ही शब्द पुनः पुनः सुन पड़े, परंतु अर्थ जुदा-जुदा हो, उसे 'यमक' कहते हैं । इसके सबसे अधिक भेद 'केशवदास' ने अपनी 'कविप्रिया' में लिखे हैं ।

उदाहरण—

१—दो०—तो पर वारौं^१ उरबसी^२, सुनु राधिके सुजान ।

तू मोहन के उर^३ बसी है उरबसी^४ समान ॥

२—दो०—भजन^५ कह्यो तासों भज्यो^६, भज्यो^७ न एकौ बार ।

दूरि भजन^८ जासों कह्यो, सो तैं भज्यो^९ गँवार ॥

❀ ऐ मदिरा पान करानेवाले ! सावधान हो जा । प्याले को पीने के लिये दे और तू भी पी । प्रेम पहले तो सरल जान पड़ा, किंतु अब उसमें कठिनाइयाँ जान पड़ती हैं ।

१ होश हाथ से जाता रहा । २ रूप के देखने से मन मतवाला हो गया । ३ निछावर करता हूँ । ४ उर्वशी, अप्सरा । ५ हृदय में । ६ पदिक नामक गहना जो माला के बीचो-बीच लटकता है । ७ भजन करने को । ८ उससे दूर भागे । ९ भजन किया । १० दूर भागने के लिये । ११ राजा जनक ।

३—चौपाई

मूरते मधुरमनोहरदेखी । भयउ बिदेह^१ बिदेह^१ विसेखी^१ ॥

४—दो०—बारन^२ तें बारन^१ कहूँ, होत जु बारन^१ नाहि ।
लागी बार^३ न बधत^४ रिपु, इन्हें सु वार न^५ माहि ॥

५—सवैया

बसुधा^{१०}-धर^{११} मैं बसुधाधर^{१२} मैं,
व सुधाधर^{१३} मैं व सुधा^{१४} मैं लसै ।
अलिवृन्द^{१५} मैं अलिवृन्द^{१६} मैं,
अलिवृन्द^{१७} मैं अतिसै सरसै^{१८} ॥
हिय-हारन^{१९} मैं दुरिहारन^{२०} मैं,
हिमि-हारन^{२१} मैं “रघुराज” लसै ।
ब्रजबारन^{२२} बारन^{२३} बारन^{२४} बारन^{२५},
बारन^{२६} बार^{२७} बसत बसै ॥

६—कवित्त—ऐसी परीं नरम^{२८} हरम^{२९} पातसाहन^{३०} की,
नासपाती खाती ते बनासपाती^{३१} खाती हैं ।

१ राजा जैनक । २ शरीरहीन, शरीर-ज्ञान-शून्य । ३ विशेषतः । ४ बालों (केशों) से । ५ हाथी । ६ निवारण नहीं होता । रोका नहीं जा सकता । ७ देर । ८ मारने में । ९ उपरण में । १० आठ प्रकार से, चारों दिशाओं और चारों उपदिशाओं से । ११ पृथ्वी में । १२ पर्वत । १३ चंद्रमा । १४ जल । १५ भौरों का समूह । १६ कोयलों का समूह । १७ सखियों का समूह । १८ अत्यंत फैलता है । १९ माठा । २० होली खेलने वाले । २१ हिम को हरने वाले, सूर्य । २२ ब्रजवालों में । २३ बालन, बालकों में । २४ बालाओं में । २५ दरवाजों में । २६ बार-बार (सदा) । २७ कोमल, सुकुमार । २८ शनियाँ । २९ बादशाह । ३० बनस्पति ।

७—कवित्त—ऊँचे घोर मंदर^१ के अंदर रहमवारी,
 ऊँचे घोर मंदर^१ के अंदर रहाती हैं ।
 कंद-मूल भोग करें^२ कंद-मूल भोग करें^३;
 तीन बेर खातीं^४ ते वै तीन बेर खाती हैं^५ ॥
 भूखन सिथिल अंग^६ भूखन सिथिल अंग,^७
 बिजन डोलाती^८ ते वै बिजन डोलाती हैं^९ ।
 'भूषन' भनन सिचराज बीर तेरे आस^{१०},
 नगन जड़ाती^{११} ते वै नगन जड़ाती हैं^{१२} ॥
 सूचना—इस अलंकार को अंगरेजी में 'पन' (pun) कहते हैं ।
 अरू और कारमी में 'तजनीस ज़ायद' कहेंगे ।

मुक्त-पद-ग्राह्य यमक

हो०—चरण अंत अरु आदि में, यमक कुंडलित होय ।

मुक्तपदग्रह है वही, सिंहवलोकन सोय ॥

१—सत्तैया—लाल है भाल सिंदूर-भरो-मुख-
 सिंधुर^१ चारु^२ औ बाँह बिसाल^३ है ।
 साल^४ है सत्रुन को कबि देव,
 सुसोभित सोम-कला^५ धरे भा लहै^६ ॥

१ ऊँचे और विशाल मंदिर (राजमहल) । २ ऊँचे और भयावही प्रवर्त । ३ बढ़िया मिठाई खाती थीं । ४ कंदा और जड़ें । ५ तीन बार (मर्तबा) । ६ तीन बेर (फल) । ७ आभूषणों (के बोझ) से जिनके अंग शिथिल (सुस्त) थे । ८ भूषणों से शरीर शिथिल है । ९ पंखा झलती थीं । १० बिना मनुष्य के स्थान (जंगल) में घूमती हैं । ११ डर । १२ (गहनों में) रत्न जड़ाती थीं । १३ नंगी जाड़ा खाती हैं । १४ हाथी के पेसा मुख । १५ सुंदर । १६ लबी । १७ शय्य (दुःखद) । १८ चंद्रमा की कला (द्वितीया का चंद्रमा) । १९ शोभा पाता है ।

भाल है दीपत सूरज कोटि-सो,
काटत कोटि कुसंकट-जाल^१ है ।
जाल^२ है बुद्धि-बिबेकन को यह,
पारवती को लड़ायती^३ लाल^४ है ॥

२—सर्वैया

नामहि के सुमिरे सुख पाइहौ,
और न काम गिनौ जग कामहि ।
कामहि कोऊ न आइहैं ये सुत-
मातु-पिता प्रिय बंधु औ बामहि^५ ॥
बामहि^६ हैं सिगरे^७ भव^८ के,
सुख होत नहीं छनइ बिसरामहि^९ ।
रामहि राम रटौ रे रटौ सब
वेद-पुराण को है परिनामहि^{१०} ॥

३-छप्पय-सारंग^{११} से दृग लाल, माल सारंग^{१२} की सोहत ।
सारंग^{१३} ज्यों तनु स्याम बदन^{१४} लखि नारंग^{१५} मोहत ॥
सारंग^{१६} सम कटि^{१७}, हाथ माथ-बिच सारंग^{१८} राजत ।
सारंग^{१९} लाए अंग देखि छबि सारंग^{२०} लाजत ॥
सारंग^{२१} भूषन पीत-पट सारंग^{२२} पद सारंग^{२३} भर ।
'रघुनाथदास' बंदन करत सीतापति रघुबंसबर ॥

१ जंजाल, झगड़ा-बखेड़ा । २ समूह । ३ प्यारा । ४ पुत्र । ५ स्त्री ।
६ प्रसिकूल । ७ सब । ८ संसार । ९ आराम । १० अंतिम उद्देश्य ।
११ कमल । १२ सोना । १३ बादल । १४ मुख । १५ चंद्रमा ।
१६ सिंह । १७ कमर । १८ बाण (हाथ में) चंदन (मस्तक में) ।
१९ वर्षुर । २० कामदेव । २१ सुहावने, रंगीन । २२ कमल । २३ धनुष
(शार्ङ्ग) धारण करनेवाले ।

सूचना—स्मरण रखना चाहिए कि 'लाटानुप्रास' में केवल शब्दों ही की नहीं वरन् वाक्यों तक की आवृत्ति हो सकती है; केवल अन्वय से अर्थ में हेर-फेर होता है। यमक में जिस अक्षर-समूह का आवर्तन होता है वह चार प्रकार का होता है; [१] दोनों निरर्थक, जैसे—“मधुपराजि पराजित मानिनी^१” में 'पराजि' का कुछ अर्थ नहीं; यह उत्तम यमक है, [२] एक सार्थक एक निरर्थक, जैसे—“है समर-समरस-सुभट^२ मरु-पति-बाहनी विख्यात” में पहले 'समर' का अर्थ है युद्ध और दूसरा 'समर' 'समरस' शब्द का एक खंड होने से निरर्थक है, [३] एक पूर्ण शब्द सार्थक दूसरा खंड होकर सार्थक, जैसे—‘उरबसी’ और ‘उर बली’ में। ये दोनों मध्यम यमक हैं और [४] भिन्नार्थवाची दो वा अनेक शब्द, जैसे ऊरवाली छप्पय में “सारंग” शब्द है। यह अधम यमक है।

सूचना—‘सिंहावलोकन’ को फारसी में ‘सनअत इरसाद’ कहेंगे।

(८) वक्रोक्ति

दो०—होय श्लेष साँ काकु साँ, कल्पित औरै अर्थ^१ ।

ताहि कहत वक्रोक्ति हैं, सिगरे सुकबिसमर्थ^२ ॥

विवरण—कहे हुए वाक्य का श्लेष से वा काकु से और ही अर्थ कल्पित करें अर्थात् जब वक्ता कोई वाक्य एक अर्थ में कहता है और श्रोता उसका दूसरा ही अर्थ लगाता है, तो वहाँ वक्रोक्ति-अलंकार होता है। ऐसा अर्थ श्लेष से वा काकु से हो सकता है।

(१) श्लिष्ट वक्रोक्ति

श्लिष्ट वक्रोक्ति दो प्रकार की होती है, (१) भंगपद और (२) अभंगपद ।

(१) भंगपद वह है जिसके पद को तोड़-फोड़कर दूसरा अर्थ किया जाय; जैसे—

१ भौरों के कुण्ड से व्याकुल मानिनी नायिका । २ युद्ध में हटे रहनेवाले वीर । ३ मरुदेश के राजा की सेवा ।

१—सवैया

“गौरवशालिनी^१ प्यारी हमारी सदा तुमहीं इक इष्ट अहो” ।

“हौं न गऊ नहिं हौं अवसा^२ अलिनी^३ हूँ नहिं अस काहे कहौ” ॥

श्रीमहादेवजी पार्वतीजी से कहते हैं कि हे गौरव-शालिनी प्यारी ! तुम्हीं हमारी सदा इष्ट देवी हो । पार्वतीजी शब्दों को तोड़कर हँसी से कहती हैं कि—

न मैं 'गौ' हूँ न 'अवशा' हूँ और न 'अलिनी' हूँ, तुम ऐसा क्यों कहते हो ।

अर्थात् गौः + अवशा + अलिनी = गौरवशालिनी ।

१-दो०-मान तजो गहि सुमति बर^४, पुनि-पुनि होत न देह ।

मानत जागी जाग को, हम नहि करत सनेह^५ ॥

कोई व्यक्ति किसी से कहता है—“हे बर ! सुमति गहि (कै) मान तजो” । वह व्यक्ति ‘मान तजो गहि’ शब्दों को तोड़कर ‘मानत जोगहि’^६ समझकर उत्तर देता है ।

३-दो०-नारी के अनुकूल तुम, आचरत^७ जु दिनरात ।

कौन अरिन^८ सों हित^९ करत, है बसुधा^{१०} विख्यात ॥

यहाँ उत्तरार्द्ध में ‘नारी’ शब्द को तोड़कर न + अरि करके उत्तर दिया ।

सूचना—ऊर्दू तथा फारसी में ‘सभंगपद-श्लेष’ को ‘तजनीस मुक्कव’ और अभागपद-श्लेष को ‘तजनीस ताम’ कह सकते हैं ।

(२) अभागपद वह है जिसमें शब्द वा पद तोड़ा न जाय किंतु अनेकार्थ कोष से किसी शब्द का अर्थ ऐसा लिया जाय जो कहनेवाले के अर्थ से भिन्न हो, जैसे—

१ गौरव युक्त । २ स्वच्छन्द । ३ अमरी । ४ हे श्रेष्ठ, सुमति धारण करके मान को छोड़ दो । ५ स्नेह, प्रेम । ६ योग को (सुंदर मतिवाले) मानते हैं । ७ स्त्री । ८ व्यवहार करते हैं । ९ शत्रु । १० प्रेम । ११ पृथ्वी ।

१—क०—खोलो जू किवाँर, तुम को हो एतो बार^१,
हरि नाम है हमारो, बसो कानन^२-पहार मैं ।
हौं तो प्यारी 'माधव' तो कोकिला के माथे-भाग^३,
'मोहन' हौं प्यारी, परो मंत्र-अभिचार^४ मैं ॥
'रागी'^५ हौं रँगीली, तौ जु जाहु काहु दाता पास,
भोगो हौं छबीली, जाय बसो जू पतार^६ मैं ।
'नायक' हौं नागरी^७ तो हाँको कहुँ टाँड़ो^८ जाय,
हौं ता 'घनस्याम', बरसा जू काहु खार^९ मैं ॥

इसमें कृष्ण और राधिका का परिहास वर्णित है । कृष्णजी अपना जो नाम बताते हैं उसीका दूसरा अर्थ लेकर राधिका उत्तर देती जाती हैं । राधिकाजी का अर्थ—हरि=बंदर । माधव=वैशाख-मास । मोहन=मोहन प्रयोग (मारण, मोहन इत्यादि का) । रागी=गवैया । भांगी=सर्प । नायक=बजारा । घनस्याम=काला बादल ।

२—दो०—को तुम? 'हरि'^{१०} प्यारी! कहा बानर को पुर काम?
'स्याम' सलोना, स्याम कपि? क्यों न डरै तब बाम ॥

सूचना—इन उपर्युक्त उदाहरणों में यदि श्लिष्ट शब्दों को पर्याय शब्दों से बदल दें तो काव्य बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा अर्थात् इन छंदों का कवित्व उन्हीं शब्दों पर निर्भर है, इसलिये इनमें शब्दालंकार हैं ।

(२) काकु वक्रोक्ति

दो०—जहाँ कंठध्वनि भिन्न तें, आसय जुदोलखाय ।
सो वक्रोक्ती काकु है, कबिबर कहैं बुझाय ॥

१ इस समय (रात में) । २ जंगल । ३ सिर पर । ४ मंत्र का प्रयोग । ५ प्रेमी । ६ (पाताल) पृथ्वी के नीचे । ७ चतुर स्त्री । ८ अन्न का बोझ पीठ पर लादनेवाले बैलों या पशुओं का भुँड । ९ धूल अर्थात् मैदान । १० कृष्ण और बंदर ।

विवरण—जहाँ शब्द के उच्चारण में कंठध्वनि से कुछ और ही अर्थ भासे वहाँ 'काकु' समझो ।

सूचना—इसके उदाहरण रौद्ररसपूर्ण वा हास्यरसपूर्ण वाद-विवाद में अधिकता से आया करते हैं । रमायण में अंगद और रावण के संवाद में बहुत से हैं ।

१—चौपाई—(अंगद)

कह कपि धर्मसीलता^१ तारी । हमहुँ सुनी कृत पर-तिय चोरी^२ ॥
धर्मसीलता तव जग जागी । पावा दरस हमहुँ बहुभागी ॥

२—दोहा

सत्य कह्यौ दसकंठ सब, मोहि न सुनि कहु कोह^३ ।
कोउ न हमारे कटक^४ अस, तो सन लरत जो सोह^५ ॥

३—चौपाई

कह कपितव गुन गाहकतार्ई^६ । सत्य पवनसुत^७ मोहि सुनार्ई ॥
कह अंगद सलज्ज जग माहीं । रावन तोहि समान कोउ नाहीं ॥
सो भुजबल राख्यो उर घाली^८ । जीतेउ सहसबाहु बलि बाली ॥

४—चौपाई—(सीता)

मैं सुकुमारि नाथ बन जांगू । तुमहि उचित तप मोकहं भोगू^९ ॥

५—दो०—काह^{१०} न पावक^{११} जारि सक, कान समुद्र समाय ।
का न करै अबला^{१२} प्रबल, केहि जग काल न खाय ॥

१ धर्मिष्ठता । २ दूसरे को स्त्री की चोरी द्वारा कमाई हुई । ३ क्रोध ।
४ सेवा । ५ तुझसे लड़ते हुए जो शोभित हो । ६ गुणों का आदर करना ।
७ हनुमान । ८ हृदय में रख छोड़ा । ९ भोग-विलास । १० क्या ।
११ अग्नि । १२ स्त्री ।

६—चौ०—(राम) मानस^१-सलिल - सुधा - प्रतिपाली^२ ॥
जिबै कि लखन-पयाधि^३ मराली^४ ॥
नब रसाल-बन-बिरहनसीला^५ ॥
स्नेह कि कोकिल बिपिन-करीला^६ ॥

सूचना—अनेक आचार्यों ने इस अलंकार को अर्थालंकार माना है ।
पर हम इसे शब्दालंकार ही मानते हैं । क्योंकि विशेष कंठध्वनि ही से
इसमें अर्थ का हेर-फेर होता है । कंठध्वनि श्रवण का विषय है । श्रवण-
मात्र की अलंकारता शब्दालंकार ही माना जा सकती है ।

(१) वीप्सालंकार

दो०—आदर अचरज आदि हित, एक सन्द बहु बार ।
ताहि वीप्सा कहत हैं, जे सुबुद्धि-भंडार ॥

विवरण—आदर, ताकीद, आश्चर्य अथवा अन्य कोई
आकस्मिक भाव प्रगट करने के हेतु एक शब्द कई बार कहा
जाय, वही वीप्सालंकार है ।

१—(आदर) (क) चौ०—सिव सिव हैं प्रसन्न कर दया^१ ।

(ख) पद—राम राम राम जीह^२ जौलों-तू न जगिहै ।

तौलों तू कहूँ जाय तिहूँ ताप तपिहै^३ ।

(ग) पद—रामरामरमु, रामरामरदु, रामराम जपु जीहा ।

(घ) पद—राम राम राम राम राम राम जपत ।

संगल-मुद उदित होत कलिमल^४ छल छपत^५ ॥

१ मानसरोवर । २ अमृत-तुल्य जल से पाली हुई । ३ खारे जल का
समुद्र । ४ हंसिनी । ५ नये आम के बागीचे में घूमनेवाली । ६ करील के
(काँटदार) जंगल में । ७ दया । ८ (जिह्वा) जीभ । ९ दुःख प्राप्ती ।
१० प्रप का सैल । ११ छिप जाते हैं ।

५—दो०—राम राम कहिराम कहि, राम राम कहिराम ।

तनु परिहरि रघुबर-बिरह, राउ^१ गण सुरधाम^२ ॥

२—(ताकीद) (क) पद—राम कहत चलु राम कहत चलु,
राम कहत चलु भाई रे ।

नाहीं तो भव-बिगारि^३ महँ परिहौ,
छूटत अलि कठिनाई रे ॥

(ख) पद—राम जपु राम जपु राम जपु बावर^४ ।

घोर भव-नीरनिधि^५ राम निजु^६ नाव रे ।

३—(आश्चर्य) राम राम ! यह क्या करते हो ।

४—(घृणा) छिः छिः उसे मत छुओ !

५—(पश्चात्ताप) राम राम ! यदि मैं जानता कि ऐसा होगा
तो मैं यह काम न करता ।

६—(अहंकार) भाई भाई, क्या तुम्हीं बड़े बुद्धिमान हो ?

सूचना—इसी प्रकार और भी आकस्मिक भाव प्रगट करने के लिये
शब्द दोहराए तेहराए जाते हैं ।

(१०) श्लेष

दो०—दोयतीन अरु भाँति बहु, आवत जामैं अर्थ ।

श्लेष नाम ताको कहत, जिनकी बुद्धि समर्थ ॥

विवरण—ऐसे शब्दों का प्रयोग जिनके दो तीन अर्थ हो
सकते हों, श्लेष अलंकार कहलाता है । इसके दो भेद होते हैं—

(१) वह जहाँ कवि का मुख्य तात्पर्य एक ही अर्थ से
होता है । इसकी गणना शब्दालंकारों में हो सकती है ।

१ राजा (दशरथ) । २ स्वर्ग । ३ सांसारिक आवागमन । ४ पागल ।

५ संसार रूपी समुद्र । ६ निश्चय ।

(२) वह जहाँ कवि का तात्पर्य दोनों वा तीनों अर्थों से होता है इसको गणना अर्थालंकारों में होनी चाहिए ।

उदाहरण—

१—चौपाई

रावन-सिर-सरोज-वनचारी^१ । चलि रघुवीर-सिलीमुख-धारी^२ ॥

यहाँ पर 'सिलीमुख' शब्द के दो अर्थ हैं (१) बाण, (२) भौंरा । तुलसीदासजी कहते हैं कि जैसे भौंरा दौड़कर कमल-वन में जाते हैं और कमलों में घुस जाते हैं, उसी प्रकार रघुनाथजी के शिलीमुख (बाण) रावण के सिरों में घुसने लगे । तुलसीदासजी का मुख्य लक्ष्य बाणों की आर जान पड़ता है न कि बाण और भौंरा दोनों की आर । इस हेतु यह श्लेष शब्दालंकार है । इसी प्रकार विहारी-कृत नीचे लिखे दाहों में एक अर्थ की मुख्यता है, इसलिये इन दोनों का श्लेष शब्दालंकार है ।

२—दा०—अजौं तरघौना^३ ही रह्यौ, श्रुति^४ सेवत इक अंग^५ ।

नाक-बास^६ बेसरि^७ लह्यौ, बसि मुकुतन^८ के संग^९ ॥

इसमें तरघौना, श्रुति, नाक, मुकुतन, शब्दों में श्लेष है परन्तु विहारी का मुख्य तात्पर्य कर्णफूल और नथ से है न कि किसी मुमुक्षु^{१०} से; जैसा कि श्लेष में व्यंजित होता है । इसी से यह शब्दालंकार है । इसी प्रकार नीचे के दाहों में सनभता चाहिए ।

१ रावण के शिर रूपी कमल-वन में घूमनेवाली । २ सेना, सज्ज ।
३ (क) कर्णफूल, (ख) तरघौना (न तरा) । ४ (क) कान, (ख) वेद ।
५ स्वयं अकेला, अबाध्य रीति से । ६ (क) नासिका, (ख) स्वर्ण । ७ (क) नाक का गहवा, (ख) जो समझा का न हो । ८ (क) मोती, (ख) मुक्त लोभ । ९ साथ । १० मुक्ति की इच्छा रखनेवाला ।

३—दो०—जो चाहौ चटक^१ न घटै, मैलो होय न मित^२ ।
 रज^३-राजस^४ न छुवाइए, नेह^५-चीकने चित्त^६ ॥
 (इसमें 'रज' और 'नेह' शब्दों में श्लेष है)

४—दो०—दूरि मजत^१ प्रभु, फीठि दै, गुन^२-विस्तारन-काल ।
 प्रगटत निर्गुन^३ निकट ही, खग-रंघ^४ गोपाल ॥
 (इसमें 'गुन' और 'निर्गुन' शब्दों में श्लेष है)

नीचे लिखे हुए 'रसनिधि'-कृत दोहों में भी ऐसा ही समझा । इनमें 'नेह' शब्द में श्लेष है ।

५—दो०—धनि दृगनारन^१ के जु तिल^२ जिममें स्याम-सनेह^३ ॥
 बिना नेह^४ के तिल^५ किते, परे रहत हैं देह ॥

६—दो०—कहनायत^१ यह मैं सुनी, पोषत तन को नेह ।
 नेह लगाए अब लगी, सूखन सिगरी देह ॥

७—दो०—आपु बुसाते^१ सज्जन^२, नेह न दीजौ जान ।
 बेहो तिल नेहै तजै, खरि हूँ जात निदान^३ ॥
 (खरि = खली, निर्दई)

८—दो०—बलि न सकैं निज ठौर तैं, जे तन-द्रुम^१ अभिराम ॥
 तहाँ आय रस बरसिबो, लाजिम^२ ताहि धनस्याम ॥
 (इस = पानी, आनंद । धनस्याम = काला बादल, कृष्ण ।)

१ चमकीलापन । २ मित्र । ३ धूल । ४ राजसी, हुकूमत । ५ प्रेम, तेल
 ६ भागते हैं । ७ (क) गुण, (ख) डोरी । ८ (क) निर्गुण ब्रह्म (ख) डोरी
 कम करने का, खींच लेने पर । ९ पतंग की तरह । १० पुतली । ११ आँख
 की पुतली की काली रेखा । १२ प्रेम । १३ तेल । १४ जिससे तेल निक-
 लता है । १५ लोकोक्ति । १६ अपने चलते । १७ हे सज्जनो । १८ अंत में ।
 १९ शरीर रूपी वृक्ष । २० बधित ।

सूचना—जहाँ कवि का स्वयं यह तात्पर्य होता है कि पाठक दोनों वा तीनों अर्थों की ओर ध्यान दें वह श्लेष अर्थालंकार है। प्रसंगवश इसके कुछ उदाहरण यहीं लिखे देते हैं जिससे पाठकगण दोनों के भेद और बारीकी को भलीभाँति समझ सकें।

(अर्थगत श्लेष के उदाहरण)

१-श्लोक-यः पूतनामारणलब्धकीर्तिःकाकोदरो येन विनीतदर्पः

यशोदयालंकृतमूर्तिरघ्यान् नाथायदूनामथवा रघूणाम् ॥*

स्वयं कवि कहता है कि इसका तात्पर्य यदुनाथ (कृष्ण) और रघुनाथ (राम) दोनों पर घटित हो सकता है।

केशव-कृत 'रामचंद्रिका' में जब रामचंद्र की सेना समुद्र-पार जाकर सुवेला पर्वत पर ठहरी है, उस समय केशव ने एक विद्वत्तामय कवित्त कहा है जिसमें रामजी की सेना के लिये अतिम चरण में कहा है कि—यह राम की सेना है, कि विभीषण की राउयश्री है, कि रावण की मृत्यु है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि कवि का लक्ष्य तीनों अर्थों पर है। इसलिये उसे अर्थालंकार ही मानना पड़ेगा। केशव कहते हैं—

२-क०—कुंतल ललित नील भृकुटी धनुष नैन,

कुमुद कटाक्ष बाम सबल सदाई है।

सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूपनन,

मध्य देस केसरी सुगज गति भाई है ॥

इस श्लोक के दो अर्थ हैं, एक राम-पक्ष का दूसरा कृष्ण-पक्ष का। (राम पक्ष में)—जी पवित्र नामवाले हैं, जिन्होंने राण में कीर्ति पाई है, जिन्होंने काक (जयंत) का दर्प नष्ट किया, जो यश और दया से युक्त हैं, वे रघुवंशियों के नाथ रामचंद्र। (कृष्ण-पक्ष में)—जिसने पूतना को मारने में कीर्ति पाई, जिसने काकोदर राक्षस का दर्प दूर किया, यशोदा जिसकी मूर्ति को सजाती हैं वे यदुवंशियों के नाथ श्रीकृष्ण।

विग्रहानुकूल सब लक्ष-लक्ष ऋक्ष-बल,
 ऋक्षराजमुखी मुख 'केसोदास' गाई है ।
 रामचंद्रजू की चमू राजश्री विभीषण की,
 रावन की मीनू दरकूच झाल आई है॥

❁ (राम-सेना के लिये) — कुंतल, ललित, नील, शृकुटी, धनुष, नयन, कुमुद, कटाक्ष, बाण = यूथप वानरों के नाम । सबल = बलवंत । सदाई = सदैव । सुग्रीव, तार, अंगद = बड़े सरदार । भूषनन = सेना में भूषणवत् । मध्यदेस = सेना का मध्य भाग । केसरी, गज = वानरों की जाति । गति भाई है = जिनकी चाल सुंदर है । विग्रह, अनुकूल = ऋक्ष सेना के यूथप । लक्ष-लक्ष ऋक्ष-बल = लाख-लाख ऋक्षों की सेना । ऋक्षराजमुखी = ऋक्षराज (जामवंत) जिसके मुखिया हैं । मुख गाई है = ये ऋक्ष-सेना के मुख-भाग (अग्रभाग) में हैं । चमू = सेना । दरकूच = कूच दर कूच डेरा डालती हुई । (राज्यश्री के लिये) — कुंतल = केश । ललित = सुंदर । नील = काले । कुमुद = कमल । बल = सौंदर्य । सुग्रीव = सुंदर गर्दन । तार = मोती । अंगद = बाजूबंद । मध्यदेस = कमर । केसरी = सिंह । गजगति = हाथी-सी चाल । विग्रहानुकूल = शरीर के अंग यथायोग्य हैं । लक्ष.....मुखी = लाखों नक्षत्र-सहित चंद्रमा के समान मुखवाली । मुख.....गाई है = केशव के दासों (रामभक्तों) के मुख से प्रशंसित । (मृत्यु के लिये) — कुंतल = भाला । ललित = तीक्ष्ण । नील = काले रंग की । शृकुटी = भौंहें चढ़ाए । धनुष = धनुष लिए । नैन = (नय + न) अन्याययुक्त । कुमुद = आनंदरहित, क्रुद । कटाक्ष बान = चितवन बाण-सी । सबल = बलवती । सुग्रीव = गर्दन में सुंदरता । तार = उच्च स्वर । अंगदादि भूषन न = बिजायट आदि गहने नहीं हैं । मध्य = मध्यम, अग्रसुंदर । देस = अंग । केसरी.....भाई है = सिंह के हाथी पर टूटने की-सी तेज चाल है । विग्रहानुकूल = विरोध के लिये अनुकूल समय । लक्ष.....बल = जिसमें लाखों ऋक्षों का बल है । ऋक्षराजमुखी = ऋक्ष-सा भयंकर मुख । मुख.....गाई है = जिसका मुख सज्जनों ने ऐसा ही कहा है ।

(सेनापति कवि सूम और दाता दोनों के लिये कहते हैं)
 ३—क०—नाहीं नाहीं करै^१ थोरे माँगे बहु देन कहैं,
 मंगन को देखि पट देत बार-बार हैं ।
 जाको मुख देखे भली प्रापति की घरी होत^२,
 सदा सुभ जन मन भाँप^३ निरधार हैं ॥
 भोगी हैं रहत बिलसत अचनी के मध्य,
 कन कन जोरें दान पाठ पर बार हैं^४ ।
 'सेनापति' बैनन की रचना बिचारो,
 जामें दाता अरु सूम दोऊ कीन्हें इकतार^५ हैं ॥

पट = वस्त्र, किवाड़ । सुभ जन मन भाप = दाता-पक्ष में
 'सुभ जन मन भाप' और सूम-पक्ष में 'सुभ जनम न भाप' ।
 भोगी = भोग-विलास करनेवाला और साँप । कन-कन =
 कनकन और कणकण (थोड़ा-थोड़ा) । भूषन कवि कहते हैं—

४—क०—सीता, संग सोभित^१ सुलच्छन सहाय^२ जाके,
 भूपर भरत नाम भाई नीति चारु है ।
 'भूषन' भनत कुल सूर-कुल भूषन है,
 दासरथी सब जाके भुज भुव-भारु है ॥
 अरि-लंक तोर जोर जाके संग बान रहैं,
 सिंधुर हैं बाँधे जाके दल को न पारु है ।
 तेगहि कै भेंटै जौनराकस मरद जानै,
 सरजा सिवाजी राम ही को अवतारु है ॥

१ 'नहीं' नहीं करते । २ प्राप्ति की घड़ी होती है, प्राप्ति की घड़ी
 चली जाती है । ३ दान-पाठ पर निछावर कर देते हैं, दान-पाठ में कुछ नहीं
 देते । ४ एक समान । ५ सीता संग सोभित = लक्ष्मी से युक्त (शिवाजी
 पक्ष में) । ६ सहायक ।

इसमें अंतिम चरण के अंतिम वाक्य से स्पष्ट प्रगट होता है कि कवि का लक्ष्य दोनों ओर है।

सीता संग सोभित = सीता के संग शोभित। लच्छम = लक्ष्मण, शुभ लक्षण। भरत = भरता है, भरतजी। सूरकुल = सूर्यकुल, वीरगण। दासरथी = दशरथ के पुत्र, रथी हैं दास जिसके। लंक = लंका, कमर। बान रहैं = बाण रहते हैं, वानर हैं। सिंधुर हैं बाँधे = सिंधु को बाँधा, हाथी बाँधे रहते हैं। तेगहि कै भेंटै = तलवार ही से भेंटता है, उसको पकड़कर भेंटता है। जौनराकस मरद जानै = जो नर अकस में मरद समझता है, जो राक्षसों को मर्दन करना चाहता है।

इसी प्रकार और भी उदाहरण समझ लेना चाहिए।

अर्थश्लेष के और अधिक उदाहरण अर्थालंकार में दिए जायेंगे।

सूचना—शब्दश्लेष में एक वा दो शब्द होते हैं और उनका श्लेषार्थ केवल उन्हीं शब्दों पर निर्भर रहता है। यदि वे शब्द पर्यायवाची शब्दों से बदल दें तो वह अलंकार ही मिट जाता है। इसीसे उसे शब्दालंकार मानना पड़ा है। अर्थश्लेष में शब्दों को बदल देने पर भी अलंकार बना रहता है। कहीं ऐसा भी होता है कि कुछ शब्दों को बदल सकते हैं, कुछ को नहीं बदल सकते। ऐसे स्थान पर जिसकी प्रधानता हो वही मानना चाहिए।



(दूसरा पटल)

अर्थालंकार

(१) उपमा

अर्थालंकारों में सर्वोत्तम और अनेक अलंकारों का मूल उपमा अलंकार है । इसीसे इसे पहले लिखते हैं ।

दोहा—रूप रंग गुण काहु को, काहु के अनुसार ।
तासों उपमा कहत हैं, जे सुबुद्धि-आगार ॥
जाको धर्मन कीजिए, सो 'उपमेय' प्रमान ।
जाकी समता दीजिए, ताहि कहिय 'उपमान' ॥
उपमेयऽरु उपमान में, समता जेहि हित होय ।
सो 'साधारन-धर्म' है, कहत सयाने लोय ॥
सो, से, सी, इव, तूल, लौं, सम, समान उर आम ।
ज्यों, जैसे, इमि, सरिस, जिमि, 'उपमा-वाचक' जान ॥

कहीं-कहीं 'रग, नाई, न्याय और मतिन' भी वाचक होते हैं ।

विवरण — जब दो वस्तुओं में पृथक्ता रहते हुए भी कोई समता वर्णन की जाय तब उपमा अलंकार होता है । समता आकृति, रंग और गुण की होनी चाहिए । वर्णन करने में जिसकी मुख्यता हो उसे 'उपमेय', जिससे समता दें उसे 'उपमान', जिस हेतु समता दें उसे 'धर्म' और जिस शब्द के आश्रय से समता प्रगट करें उसे 'वाचक' कहते हैं । जैसे—

१—दा०—बदौं कोमल कमल से जगजननी के पायँ ।

इसमें कवि का मुख्य तात्पर्य 'जगजननी' (पार्वती) के

चरणों के वर्णन से है, इस हेतु 'पायँ' शब्द 'उपमेय' है। कमल 'उपमान', कोमल 'धर्म' और 'से' वाचक है।

सूचना—अंगरेजी में इस अलंकार को 'सिमिली' (Simile) और फारसी तथा उर्दू में 'तशबीह' कहते हैं।

उपमा के दो भेद हैं—(क) पूर्णा, (ख) लुप्ता।

(क) पूर्णोपमा

दो०—वाचक साधारण धरम, उपमेयऽरु उपमान।

ये चारो जहँ प्रगट तहँ, पूरन-उपमा जान ॥

१—दो०—रामलपन सीता-सहित, सांहत परननिकेत^१।

जिमि बासव बस अमरपुर^२, सची^३-जयंत^४-समेत ॥

यहाँ राम, लखन और सीता उपमेय, बासव (इंद्र), जयंत और सची उपमान, 'सांहत' धर्म और 'जिमि' वाचक, चारों प्रगट हैं। इसी प्रकार और भी जाना। यथा—

२—सो०—उदय सूर^५ सो भाल, सिदुर-घसो गनेस को^६।

हरत बिघन को जाल^७, जो जग व्यापक तिमिर^८ सो ॥

यहाँ भाल उपमेय, सूर उपमान, उदय साधारण धर्म, 'सो' वाचक और बिघनजाल उपमेय, तिमिर उपमान, हरत धर्म और 'सो' वाचक प्रगट है।

३—सवैया

आनंद देत चकोर-हितून^९ को, है खल-कोकन^{१०} को दुखवारो।
कंत^{११} हैसंत-कुमोदन^{१२} को कलचांदनी-कित्ति^{१३} महसिन^{१४} भार
'गोकुल' सो न सु ग सरसै बरसै सुख है अति ही उजियारो।
मंद करै अरविदन को जस चंद सो सेत महीप तिहारो ॥

१ पण्डुटी। २ इंद्रलोक। ३ इंद्राणी। ४ इंद्र का पुत्र। ५ सूर्य।

६ सिद्ध लगा हुआ गणेश का मस्तक। ७ समूह। ८ अंधकार। ९ मित्र।

१० चक्रवाक। ११ स्वामी। १२ कुटुंब, सकेत कमल। १३ कोटि। १४ उज्ज्वल।

४—चौपाई

सेवहिं लखन सोय रघु पोरहिं । जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहिं ॥

५—चौपाई

रामहिं लखन बिलोकत कैसे । ससि हि चकोर-किसोरक^१ जैसे ॥

६—क०—फूलि उठे कमल से अमल^२ हितू^३ के नैन,
कहै 'रघुनाथ' भरे चैनरस सियरे^४ ।

दौरि आए भौर से करत गुनी गुन गान,
सिद्ध से सुजान सुख-सागर सों नियरे^५ ॥

सुरभी^६ सी खुलन सुकधि की सुमति लागी,
चिरिया-सी जागी चिता जनक के जियरे^७ ।

धनुष पै ठाढ़े राम रवि से लसत आज,
भार के-से नखत^८ नरिंद^९ परे पियरे^{१०} ॥

७—चौ०—करि-कर^{११} सरिस सुभग भुजदंड ।

८—चौ०—पीपर-पात-सरिस मन डोला ।

९—चौ०—बिरही-इव प्रभु करत बिषादा ॥

(पूर्णापमा का चक्र)

उपमेय	उपमान	वाचक	धर्म	उदाहरण
राम	रवि	से	लसत	राम रवि से लसत
नरिंद	भोर के नखत	से	परे पियरे	भोर केसे नखत नरिंद परे पियरे
भुजदंड	करिकर	सरिस	सुभग	करिकर सरिस सुभग भुजदंडा
मन	पीपरपात	परिस	डोला	पीपरपात सरिस मन डोला
प्रभु	बिरही	इव	करत बिषादा	बिरही इव प्रभु करत बिषादा

१ बच्चा । २ निर्मल । ३ हितुआ, मित्र । ४ शीतल । ५ निकट ।

६ गाय । ७ हृदय में । ८ प्रातःकाल के तारे । ९ राजा । १० पीले । ११ हाथ की सूँड़ ।

सूचना—उपमालंकार के प्रयोग से निम्नलिखित पाँच लाभ हैं—

- (१) अभीष्ट वस्तु का सम्यक ज्ञान होता है ।
 - (२) दो वस्तुओं की चमत्कारिक तुलना से चित्त प्रसन्न होता है ।
 - (३) उपमा-जनित परिणाम-दर्शन से स्थायी शिक्षा मिलती है ।
 - (४) भाषा में चमत्कार और सौंदर्य आ जाता है ।
 - (५) थोड़े में बहुत सा बोध होता है ।
- अतः कविता में इस अलंकार की अनिवार्य आवश्यकता है ।

(ख) लुप्तोपमा

दो०—वाचक साधारण धरम, उपमेयऽह उपमान ।

इनमें एक है तीन बिनु, लुप्ता बिबिध-विधान ॥

विवरण—पूर्वोपमा में चार वस्तुएँ होती हैं । इनमें से जहाँ किसी का लोप हो वहाँ लुप्तोपमा कहते हैं ।

इस विषय में भिन्न-भिन्न आचार्यों के भिन्न-भिन्न मत हैं । हमारे मत से जो हमें ठीक जँचते हैं उन्हीं को हम यहाँ लिखते हैं ।

(१) वाचकलुप्ता

जहाँ वाचक शब्द का लोप हो, जैसे—

१—चौ०—जारि दियो उपसु^१द-सुत^२, दुसह-रूप दुख-धाम ।

सुर-सिरोमनि रावरे^३, राम काम अभिराम ॥

२—चौ०—सरद-मयंक^४-बदन^५ छबिसीवाँ^६ ।

३—चौ०—नव अंबुज अबक^७-छबि नीकी ।

४—चौ०—सरद-बिमल-बिधु बदन सोहावन ।

५—दो०—नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन बारिज^१ नयन ।
 वहाँ से, से, सम इत्यादि वाचक शब्दों का लोप किया गया है ।

(२) धर्मलुसा

जहाँ साधारण धर्म का लोप हो, जैसे—

१—चौपाई

करि प्रनाम रामहिं त्रिपुरारी^१ । हरषि सुधा-सम गिरा^२ उचारी^३ ॥

२—चौ०—तुम सम पुरुष न मो सम नारी ।

३—दो०—गौतम नारी तरि गई, रही जो अघ^४ साँ पूरि ।

पाय सजीवन-मूरि-सी, प्रभु-पद-पंकज-धूरि ॥

४—सवैया

बाहँ भुजंग^५-सी, पल्लव-से कर, आंगुरी पै नख हीरक-हार^६-से ।

स्यों 'लछिराम' घटान-से रंग, प्रभा बिहँसे मुकुताहल-थार^७ से ॥

ये भ्रमरावलिलौ^८ जुलफें गुणभौहँ कमान^९ सी आनन^{१०} मार^{११} से

बालमयंक^{१२} लौं भालथली रघुनाथ के लोचन खंजकुमार^{१३} से

५—सा०—कुंद ईंदु^{१४} सम देह, उमारमन करुणायतन^{१५} ।

६—चौ०—करिकर^{१६} सम प्रभुभुज दसकंधर ।

इन उदाहरणों में साधारण धर्म का लोप किया गया है ।

इसी प्रकार और भी लुसाओं में केवल नाम ही से उसकी

परिभाषा जान लेनी चाहिए ।

१ कमल । २ महादेव । ३ वाणी । ४ कही । ५ पाप । ६ सर्प ।

७ हीरे की माला । ८ मुक्ताफल, मोती । ९ समान । १० धनुष ।

११ मुख । १२ कामदेव । १३ द्वितीया का चंद्रमा । १४ खंजब के बच्चे ।

१५ चंद्रमा । १६ दया के घर । १७ हाथी की सूँड़ ।

(३) उपमानलुसा

१—दो०—वाके से चंचल नयन जग काहू के हैं न ।

२—दो०—सुंदर नंदकिसोर सो जग में मिलै न और ।

३—सवैया

लखन राम से राज समाज में राजत कौन महीप के बारे^१ ।

४—चौपाई

समर धीर नहि जाय बखाना । तेहि सम नहि प्रतिभट जग आना^२ ।

(४) उपमेयलुसा

१—सो०—चंचल हैं ज्यों मीन, अरुनार^३ पंकज सरिस ।

निरखि न होय अधीन, ऐसो नर-नागर कवन ।

२—सवैया

साँवरे गोरे घटा-छटा से बिहरैं मिथिलेस की बागथली^४ में ।

(५) वाचकधर्मलुसा

जिसमें वाचक शब्द और साधारण धर्म का लोप किया जाय ।

१—चौपाई

ईस-प्रसाद^५ असीस तुम्हारी । सब सूतबधू देवसरि-बारी^६ ।

२—चौ०—बिधुवदनी^७ मृगसावक लोचनि ।

३—दो०—लखु लखु सखि सारस^८-नयन इंदुवदन घनस्याम ।

बिज्जुहास^९ दाड़िमदसन^{१०}, बिबाधर^{११} अभिराम ॥

४—चौ०—केहरि^{१२} कंधर चारु जनेऊ ।

५—दो०—लहि प्रसाद-माला जु भौ तनु कदंब की माल ।

सूचना—इसके कथन में बड़ी सावधानी चाहिए । तनक ही भेद से यह अलंकार रूपक अलंकार हो जाता है ।

१ बालक । २ अन्य । ३ लाल । ४ बाटिका । ५ महादेवजी की प्रसन्नता । ६ गंगाजल । ७ चंद्रमुखी । ८ कमल । ९ बिजली सी हँसी । १० अनार से दाँत । ११ बिबाफल से ओंठ । १२ सिंह के समान कंधा ।

(६) धर्मोपमेय लुप्त

जिसमें धर्म और उपमान का लोप किया जाय ।

१-दो०-रे अलि मालति सम कुसुम, दूँढ़ेहु मिलिहै नाहि ।

यहाँ मालती कुसुम उपमेय, सम वाचक मौजूद है ।
सुन्दर, मनोहर आदि धर्म का और 'मिलिहै नाहि' कहकर
उपमान का लोप किया गया है ।

२-चौ०-आजु पुरंदर^१ सम कोउ नाहीं ।

३-सो०-देखा दाडिम से दसन ।

यहाँ 'दसन' उपमेय और 'से' वाचक मौजूद है । स्वेन,
चमकीले इत्यादि धर्म का और 'दाडिम बीज' उपमान का लोप
है, क्योंकि केवल 'दाडिम' दाँतों का उपमान नहीं कहा जा
सकता । दाडिम शब्द केवल उसका लक्षक है ।

४-चौपाई

देख्यो खोजि भुवन दसचारी । कहुँ अस पुरुष कहाँ अस नारी॥

(७) धर्मोपमेय लुप्त

जहाँ धर्म और उपमेय का लोप किया जाय । जैसे—

१-सवैया

ग्यौर तिरीछे किए मुनि संगहि हेरत संभु-सरासन^१ मार^२ से ।
त्यौं 'लछिराम' दुहँ कर बान कमान-सी भौहँ सुब्रह्मवतार से ॥
सामुहँ श्रीमिथिलापति के डटि ठाढ़े सहीरस बीर-सिंगार से ।
नीलम चंपक-माल से कौन ? स्वयंवर में मृगराज-कुमार^३ से ॥

यहाँ मार से, रस बीर-सिंगार से, नीलम चंपक-माल से
और मृगराज-कुमार से इत्यादि में उपमान और वाचक मौजूद
हैं । धर्म का प्रत्यक्ष लोप है । अज्ञान-सूचक 'कौन' शब्द कहकर

१ इंद्र । २ धनुष । ३ कामदेव । ४ सिंह ।

उपमेय का लोप किया गया है, जो मुनि-संग, श्रीमिथिलापति सामुह्ये, श्रीर स्वयंवर इत्यादि के साहचर्य से लक्षित होता है।

(८) वाचकोपमेय लुप्ता

जहाँ वाचक और उपमेय का लोप किया जाय-जैसे—

- १—दोहा—अटा^१ उदित होतो भयो, छुबिघर पूरन चंद ।
२—दोहा—बढो कदम^२ पै कालिया, बिषघर^३ देखो आथ ।

(९) वाचकोपमान लुप्ता

जिसमें वाचक और उपमान का लोप किया जाय ।

- १—दोहा—तेरे बे कहु बचनहू, सुनत हिये हरषात ।
२—सो०—सूखम हरि-कटि-पेन^४ ।

३—चौपाई

- चितवनि चारु मार-मदहरनी^५ । भावत हृदय जाति नहीं बरनी ।
४—चौ०—अरुन नयन उर बाहु बिसाला ।
५—सो०—सुनि केघट के बैन, प्रेम-लपेटे अटपटे ।

६—चौपाई

सूरति मधुर मनोहर देखी । भयउ बिदेह^६ बिदेह^७ बिसेषी ।

(१०) वाचक धर्म-उपमानलुप्ता

जिसमें केवल उपमेय का जिक्र हो और युक्ति से उपमान का अभाव कहा जाय ।

- १—सो०—राम सरुष तुम्हार, बचन-अगोचर^८ बुद्धि-पर^९ ।

१ छत, अटारी । २ कदंब का वृक्ष । ३ सर्प । ४ ठीक सिंह की कमर के समान पतली । ५ कामदेव का मद हरनेवाली । ६ जनक । ७ शरीर के शून्य से इतिव । ८ वचनों से जो न जाना जा सके । ९ बुद्धि से परे ।

२—चौपाई

अहै अनूप राम प्रभुताई । बुधि-बिबेक-बल तरकि न जाई^१ ॥

३—चौ०—देखि अनूप एक अमराई^२ ।

४—चौ०—अति अनूप जहँ जनक-निवास ॥

५—दा०—बलि बँधत प्रभु बाँदेउ, सो तनु बरनि न जाय ।

सूचना—‘वाचक-धर्म-उपमेयलुप्ता’ का ‘रूपकातिशयोक्ति’ अलग ही एक अलंकार है । ‘धर्म-उपमाल-उपमेयलुप्ता’ में केवल वाचक रहेगा जिससे कोई अलंकारता नहीं आ सकती, और ‘वाचकोपमेयोपमानलुप्ता’ में केवल साधारण-धर्म के कथन से अलंकारता आ नहीं सकती ।

(लुप्तालंकार-सूचक चक्र)

नाम	उपमेय	उपमान	धर्म	वाचक
१—वाचक- लुप्ता	{ राम नयन	{ काम बारिज	{ अभिराम तरुन अरुन	{ × ×
२ धर्मलुप्ता	{ तुम मो देह	{ पुरुष नारी कुंद, ईंदु	{ × × ×	{ सम सम सम
३—उपमान- लुप्ता	{ नंदकिसोर लक्ष्मन-राम	{ × ×	{ सुंदर राजत	{ सो सं
४—उपमेय- लुप्ता	{ × ×	{ घटा छटा	{ साँवरे गारे	{ से से
५—वाचक- धर्मलुप्ता	{ सुतबधू कधर	{ देवसरि-बारी केहरि(कधर)	{ × ×	{ × ×
६—धर्मोपमान- लुप्ता	{ पुरंदर पुरुष नारी	{ × × ×	{ × × ×	{ सम अस अस
७—धर्मोपमेय- लुप्ता	{ ×	{ नीलमचपक-माल	{ ×	{ से
८—वाचको- पमेयलुप्ता	{ × ×	{ मृगराज-कुमार पूर्णचंद्र	{ × छविधर	{ से ×
९—वाचको- पमानलुप्ता	{ नयन उर बाहु	{ × × ×	{ अरुन बिसाल बिसाल	{ × × ×
१०—वाचकधर्मो- पमानलुप्ता	{ राम-प्रभुताई जनकनिवा- सू अमराई	{ × × ×	{ × × ×	{ × × ×

छदाहरण

- = राम काम अभिराम ।
- = तरुन अरुन बारिज नयन ।
- = तुम सम पुरुष न मो सम नारी ।
- = कुंद-इंदु सम देह ।
- = सुंदर नंदकिसोर सो जग में मिलै न और ।
- = लखन-राम से राजसमाज में राजत कौन महीप के बने ।
- = साँवरे गोरे घटा-कूटा से बिहरै मिथिलेस की बागथली में ।
- = सब सुतबधू देखसरि-बारी ।
- = केहरि-कंधर चारु जनेऊ ।
- = आजु पुरंदर सम कोउ नाही ।
- = कहँ अस पुरुष कहाँ अस नारी ।
- = नीलम चंपक-माल से कौन स्वयंबर में मृगराज-कुमार खे ।
- = अटा उदय होतो भयो छबिधर पूरत चंद ।
- = अरुन नयन उर बाहु बिसाला ।
- अहै अनूप राम प्रभुनाई ।
- = { अति अनूप जहँ जनक-निबासू ।
- { देखि अनूप एक अमराई ।

सूचना—जो पाठक उर्दू, हिंदी, अँगरेजी तीनों भाषाएँ जानते हों ।
वे आरोवाले श्रु को भलीभाँति समझ लें—

हिंदी	उर्दू वा फारसी	अंगरेजी
उपमा	तशबीह	सिमिली (Simile)
पूर्णोपमा	तशबीह काफिल	कंप्लीट सिमिली (Complete Simile)
उपमेय	मुशव्वह	दी सबजेक्ट कंपेयर्ड (The subject compared)
उपमान	मूशव्वह बिही	दी आब्जेक्ट विथ हिच दी कंपैरीजन इज़ मेड। (The object with which the comparison is made)
वाचक	हर्फ तशबीह	दी वर्ड इम्प्लाइंग कंपैरीजन (The word implying comparison)
धर्म	कजह तशबीह	दी कामन् ऐट्रीब्यूट (The common attribute)
लुप्तोपमा	तशबीह नामुकम्मल	इन्कंप्लीट सिमिली (Incomplete Simile)

(२) मालोपमा

दो०—जहाँ एकै उपमेय के, बरनैँ बहुत उपमान।

भिन्न अभिन्नहु धर्म तें, मालोपमा बखान ॥

विवरण—जहाँ एक उपमेय के बहुत से उपमान कहे जायँ वहाँ मालोपमा अलंकार होता है। यह दो प्रकार का होता है—

(१) भिन्नधर्मा, (२) एकधर्मा।

(१) भिन्नधर्मा मालोपमा

जहाँ अनेक उपमानों के पृथक्-पृथक् धर्मों के वास्ते उपमा दी जाय । जैसे—

१—सवैया

तेज-निधानन^१में रबि ज्यों छविचतन में बिधु^२ज्यों छवि छाजै ।
 सैलन^३ में ज्यों सुमेर लसै बर-वृक्षन में कलपद्रुम राजै ॥
 देवन में 'मतिराम' कहै मघवा^४ जिमि सोहत सिद्ध^५ समाजै ।
 राउ छतासुत^६ भाऊ दिवान जहान के राजन में इमि राजै ॥
 २—दो०—मरकत^७ से वुतिघंत हैं, रेसम से मृदु घाम^८ ।
 निपट^९ महीन सुतार से, कच^{१०} काजर सं स्याम ॥

३—चौपाई

बंदीं खल जस^{११} सेस सरोषा । सहस-बदन^{१२} बरनै परदोषा ॥
 पुनि प्रनवीं पृथुराज^{१३} समाना । पर-अघ सुनै सहसदस काना ॥
 बहुरिसक्र^{१४} सम बिनवौं तेही । संतत सुरानीक^{१५} हित जेही ॥
 ४—दो०—सफरी^{१६} से अंचल घने, मृग से पीन^{१७} सुपेन ।
 कमलपत्र से चारु ये, राधेजू के नैन ॥

(२) एकधर्मा मालोपमा

जहाँ सब उपमानों का एक ही धर्म कथन किया जाय वा अनुमान कर लिया जाय ।

१ तेज से युक्त । २ चंद्रमा । ३ पर्वत । ४ इंद्र । ५ एक प्रकार के देवता । ६ छत्रसाल के पुत्र । ७ नीलम । ८ टेढ़े, घुँघुराले । ९ अत्यंत चतले । १० बाल । ११ जैसे । १२ हजार मुख से । १३ राजा केन का पुत्र । १४ इंद्र । १५ जिसे देवताओं की सेना प्यारी है, शराब जिसे अच्छी लगती है । १६ मछली । १७ पुष्ट ।

१—हरिगीतिका

हिमवत जिमि गिरिजा महेसहि, हरिहि^१ श्री^२ सागर दई ।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व-कल-कीरति नई ॥

२—हरिगीतिका

जिमि भानु बिनु दिन, प्रान बिनु तनु, चंद्रबिनु जिमि जामिनी^३ ।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जिय भामिनी ॥

३—चौपाई

चैनतेय^४ बलि जिमि चह कागू, जिमि सस^५ चहै नागप्ररि^६ भागू
जिमि चह कुसल अकारन कोही^७, सुख संपदा चहै सिखद्रोही ॥
लोभी लोलुप कीरति चहई, अकलंकिता कि कामी लहई ।
हरिपद-बिमुख परमगति चाहा, तस तुम्हार लालच नरनाहा^८ ॥

४—क०—सारद^९ सो, सेस सो, सुधा सो, सकसिंधुर^{१०} सो,
सुरसरिता^{११} सो, सूर सासि सो बखान है ।
हंसन सो, होरन सो, हिम सो, हलायुध^{१२} सो,
हरगिरि^{१३}, हास्यहू सो, जपत जहान है ॥
भनत 'मुरार' घनसार^{१४} सद्घनहू^{१५} सो,
पारद^{१६} सो, पय^{१७} सो, पिनाकी^{१८} सो प्रमान है ।
आज युद्ध-जीत^{१९}-जस तखत महीप तेरो,
दीप-दीप दीपै दीपमालिका समान है ॥

१ विष्णु को । २ लक्ष्मी । ३ रात्रि । ४ गरुड़ । ५ खरगोश । ६ सिंह ।
७ क्रोधी । ८ नरनाथ, राजा । ९ सरस्वती । १० इंद्र का हाथी, ऐरावत ।
११ गंगा । १२ बलराम । १३ कैलास । १४ कपूर । १५ शरत्कालीन
अदल । १६ पारा । १७ दूध । १८ महादेव । १९ युद्ध को जीतनेवाले ।

५—सवैया—भृगुनंद^१ कुठार सी, बांसव^२ बज्र सी..... ।
त्रिपुरारि-त्रिसून सी श्रीपति चक्र सी 'बंक' कहै बड़धानल-सी ।
अरसिहन-खालि^३ सी खेत^४ मेंकालीसीसेसमुखानलकीभल^५ सी।
तरवार तिहारिय मान महीपति है बिकराल हलाहल^६ सी ।

६—सवैया

सारद नारद पारंद आग सी छीर-तरंग सी गंग की धार सी ।
सकर-सैल सी चंद्रिका फैल सी सारस^७-रैल सी हंसकुमार सी ।
'दास' प्रकासहिपाद्रिविलास सोकुंदसोकांससीमुक्तिभंडारसी ।
कोरति हिंदु-नरेस की राजति उज्जल चारु चमेली के हारसी ।

७—कवित्त—इंद्र जिमि जम^८ पर बाड़व^९ सुअम^{१०} पर,
रावन सदंभ पर रघुकुलराज है ।
पौन बारिबाह^{११} पर सभु रतिनाह^{१२} पर,
ज्यों सहस्रबाह पर रोम-द्विजराज है ॥
दावा^{१३} द्रुमदंड^{१४} पर चीता मृग-भुंड पर,
'भूषन' बितुंड^{१५} पर जैसे मृगराज^{१६} है ।
तंज तिमिरंस^{१७} पर काह जिमि कस पर,
ज्यों मलेच्छ-वंस पर सेर सिवराज है ॥
८—कवित्त—सक^{१८} जिमि सैल पर अर्क^{१९} तम-फैल पर,
बिघन की रैल^{२०} पर लबोदर^{२१} लेखिए ।
राम इसकंध पर भीम जरासंध पर,

१ परशुराम । २ इंद्र । ३ नृसिंह के नखों का समूह । ४ क्षेत्र (युद्ध-भूमि) । ५ आग की लपट । ६ विष । ७ कमल । ८ महिषासुर का पिता जिसे इंद्र ने मारा था । ९ बाड़वाग्नि । १० जल । ११ बाढ़ । १२ कामदेव । १३ दावाग्नि । १४ वृक्ष की लकड़ी । १५ हाथी । १६ सिंह । १७ अंधकार का अंश । १८ इंद्र । १९ सूर्य । २० समूह । २१ गवेष ।

‘भूषण’ ज्यों सिंधु पर कुंभज^१ बिसेषिण ॥
 हर ज्यों अनग^२ पर गरुड़ भुजंग पर,
 कौरव के अंग पर पारथ^३ ज्यों बेलिप ।
 बाज ज्यों बिहंग पर सिंह ज्यों मर्तग^४ पर,
 श्लेच्छ चतुरंग पर सिक्काज देखिप ॥

(समुच्चयोपमा)

कोई-कोई कवि ‘समुच्चयोपमा’ नाम का एक और भी अलंकार मानते हैं, जिसका लक्षण यह है कि उपमेय और उपमान की समता कई-एक धर्मों के कारण की जाय । जैसे—

१-दो०—चंपक-कलिका सी अहै, रूप रंग अरु वास^५ ।

यहाँ एक ही उपमेय (किसी नायिका) की समता एक ही उपमान (चंपक-कलिका) से रूप, रंग और वास तीन धर्मों के कारण की गई है ।

२-दो०—बहुवर्ता^६ सहज-प्रिया, तमगुनहरा^७ प्रमान ।

जगमारग-दरसावनो, सूरज-किरन समान ॥

(३) रसनोपमालंकार

दो०—कथित प्रथम उपमेय जहँ, होत जात उपमान ।

ताहि कहैं रसनोपमा, जे जग सुकवि-प्रधान ॥

विवरण—कई-एक उपमालंकारों की एक शृंखलाबद्ध श्रेणी को, जिसमें क्रमशः प्रथम कहा हुआ उपमेय उपमान होता जाता है, रसनोपमा कहते हैं ।

१ अगस्त्य । २ कामदेव । ३ अर्जुन । ४ हाथी । ५ सुगंध । ६ बहुत से रंगवाली । प्रजा (मनुष्यों) को प्यारी । ७ तम (अंधकार, तमोगुण) को हरनेवाली ।

उदाहरण—

१-दो०-मति सी नति^१, नति सी बिनति, बिनती सी रति^२ चारु ॥

रति सी गति, गति सी भगति, तो मैं पवनकुमार^३ ॥

२-क०-बंस^४ सम बखत, बखत सम ऊँचो मन,

मन सम कर, कर सम करी^५ दान के ।

३-मुकुर^६ सम बिधु, बिधु सरिस सुख, मुख समान सरोज^७ ॥

४-सवैया

ग्यारो न होत बफारो^८ ज्यों धूम^९ तें, धूम ज्यों जात घने घन^{१०} में मिलि

‘दास’ उसास मिलै जिमि पौन^{११} में, पौन ज्यों पडत आँखिन में पिलि

कौन जुदा करै लान ज्यों नीर में, नीर ज्यों छीर में जात खरोखिलि^{१२}

यों मति मेरी मिली मन मेरे सों, मो मन गो मन मोहन सों मिलि

५-दो०-बच सी माधुरि मूरती, मूरति सी कल कीति^{१३} ।

कीरति लौं सब जगत में, छाँय रही तब नाति ॥

६-दो०-सुभ स्वरूप के सम सुमति, सुमति सरिस गुन ग्यान ।

सुगुन ग्यान सम उद्यमहु, उद्यम से फल जान ॥

(४) अनन्वयोपमा

दो०—जहाँ होय उपमेय को, उपमेयै उपमान ।

तहाँ अनन्वय कहत हैं, जे जन परम सुजान ॥

विवरण—जहाँ उपमान के अभाव के कारण एक ही वस्तु उपमेश और उपमान दोनों का काम दे, वहाँ अनन्वयात्मक होगा ।

१ नम्रता । २ प्रेम । ३ हनुमान । ४ कुल । ५ आश्रय । ६ हाथ । ७ हाथी । ८ शीशा । ९ चंद्रमा । १० कमल । ११ भाग । १२ धुआँ । १३ बादल । १४ वायु । १५ बढ़िया हो जाता है । १६ कर्त्ति ।

१-चौपाई

लही न कतहुँ हारि हिय मानी । इन समये उपमा उर आनी ॥

२-हरिगीतिका

उपमा न कोउ कह 'दास तुलसो' कतहुँ कबि-कोबिद^१ लहै ।

बल बिनय बिद्या सील सोभा-सिंधु इन सम येइ अहै ॥

३-दो०—मिली न और प्रभा रती^२, करी भारती^३ दौर ।

सुंदर नंदकिसोर से, सुंदर नंदकिसोर ॥

४-दो०—निरवधि^४ गुन निरुपम पुरुष, भरत भरत सम जानि ।

५-चौ०—स्वामि गुसाइहि सरिस गुसाई ।

मोहि समान सैं स्वामि दाहाई ॥

६-सवैया

श्रीरघुनाथ-प्रताप लौं भूपर श्रीरघुनाथ प्रताप की लाली ।

७-सवैया

मैथिली^५ सी तिहुँ लोकन में मिली मैथिली की सुभ सुंदरतई ।

८-सवैया

राम से राम, सिय सौ सिया सिरमौर विरंचि^६ बिचारिसँवारे ।

(५) उपमेयोपमा

दो०—उपमा लागै परसपर, सो उपमा-उपमेय ।

विवरण—जहाँ उपमेय के लिये केवल एक ही उपमान हो, सीसरी सदृश वस्तु का अभाव हो, वहाँ 'उपमेयोपमा' अलंकार कहा जायगा । जैसे—

१-चौ०—वे तुम सम तुम उन सम स्वामी ।

१ पंडित । २ थोड़ी भी । ३ सरस्वती । ४ सीमारहित । ५ जाबकी । ६ अन्ध ।

२—सवैया

तो मुख सो ससि सोहत है बलि सोहत है ससि सो मुख तेरो ।

३—सवैया

भूपर भाऊ महीपति को मन सो कर औ कर सो मन ऊँचो ।

४—सवैया

लखन-राम कलाधर^१ से सो कलाधर लखन-राम सो सोहै ।

५-दो०—सुधा संत के बैन सम, बैन सुधा सम जान ।

बैन खलन के बिषहि से, बिष खल बैन समान ॥

६—सवैया

अंबरगंगा^१ सी हैं सरजू, सरजू सम गंग-छटा नभ^२ साजै ।

यौं 'लखिराम' सुदेव से सेवक, सेवक से सुभदेव समाजै ॥

सोहैं सुरेस^३ से राम-नरेस, सुरेसहु राम-नरेस सो राजै ।

औधपुरी अमरावती^४ सी, अमरावती औधपुरी सी बिराजै ॥

सूचना—ये ऊपर लिखे हुए पाँचों अलंकार उपमा ही के भिन्न-भिन्न भेद हैं । प्राचीन कवियों ने उपमा के और भी अनेक भेद माने हैं, पर उनमें कोई विशेष विलक्षणता नहीं है ।

उपमा अलंकार ही कविता की जान और कवियों का पुष्ट आधार है । आगे के अनेक अलंकारों में भी 'उपमा' ही प्राणवत् अंतर्हित रहेगा । इसलिये इनमें उपमेय और उपमान के लिये जा शब्द लिखे जायेंगे वे केवल पर्याय-मात्र होंगे । उन्हें यहीं समझ लेना चाहिए ।

उपमेय = { वर्य्य }^१, उपमान = { अवर्य्य }
प्रस्तुत { अप्रस्तुत }

(६) ललितोपमा

दो०—जहाँ समता को दुहुन की, लीलादिक पद होत ।

ताहि कहत ललितोपमा, सकल कबिन के मोत ॥

विवरण—जहाँ उपमेय और उपमान की समता जताने के लिये सम, समान, लौं, इव, तुल्य इत्यादि पद न लाकर ऐसे पद लाए जाते हैं जिनसे उपमेय और उपमान में बराबरी मुकाबला, मित्रता, ईर्षा इत्यादि सूक्ष्म भाव प्रगट होते हैं उसे 'ललितोपमा' कहते हैं ।

दो०—बहसत^१, निदरत, हँसत, अरु छवि-अनुहरत^२ बखानि ।

सत्रु, मित्र, अरु होड़कर^३, 'लीलादिक' पद जानि ॥

विवरण—जहाँ बहसत, हँसत, निदरत, छवि, अनुहरत, शत्रु है, मित्र है, होड़ लगी है इत्यादि या इसी अर्थ के अन्य शब्द उपमेय और उपमान की बराबरी प्रगट करने के लिये आते हैं, वहाँ 'ललितोपमा' समझना चाहिए । जैसे—

१—क०—साहि तवै सरजा^४ सिखा की सभा जा मधि है,
मेरुवारी^५ सुर की सभा को निदरति है ।

'भूषण' भनत जाके एक-एक सिखर तें,
केते धौं नदी-नद की रेल^६ उतरति है ॥

जोन्ह^७ को हँसति जोति हीरा-मनि मंदिरन,
कंदरन में छवि कुहू^८ की उछरति है ।

पेसो ऊँओ दुरग महाबली का जामैं,
नखतावली सौं बहस दीपावलि करति है ॥

१ बहस करना । २ शोभा की समानता होता । ३ बराबरी करना ॥

४ शिवाजी की एपाधि, शरजाह । ५ सुमेरु पर्वतवाली । ६ प्रवाह ॥

७ चाँदनी । ८ अमावास्या ।

२—सवैया

उत स्याम-घटा इत हैं अलकैं बक-पांति उतै इत मोती लरी ।
उत दामिनि दंत-चमक इतै उत चाप^१ इतै भुवबक^२ धरी ॥
उत चालक तो पिउ-पिउ रतै बिसरै न इतै पिउ^३ एक घरी ।
उत बूँद अखंड इतै अँसुवा बरसा बिरहीनि तें होड़ परी ॥

सूचना—इसीको केशवदास ने 'संकीर्णोपमा' कहा है और उदाहरण दिया है—

३--क०—बिधु कैसो बंधु, किधौ चोर हास्य रस को कि,
कुंदन^४ की बादी किधौ मोतिन को मीत है ॥
किधौ केशवदास रामचंद्र जू को गीत है ।

यहाँ रामजी के यश की 'स्वेतता' दर्साने के लिये बिधु को बंधु, हास्यरस का चोर, कुंदन का बादी (मुद्दई) और मोती का मित्र कहा है। इसी प्रकार का कथन 'ललितोपमा' कहलाता है क्योंकि ऐसे कथनों से एक प्रकार की समता ही प्रगट होती है ।

(७) प्रतीप

सूचना—'प्रतीप' शब्द का अर्थ है 'वहटा'। अलंकार-शास्त्र में इसका अर्थ लिया जाता है 'उपमा के अंगों का वहटफेर' । उपमा अलंकार में जिस जगह उपमेय को उपमान के समान कहते हैं, ठीक उसके प्रतिकूल इस अलंकार में उपमान को उपमेय के समान कहते हैं। ऐसा करने से उपमेय की उत्कृष्टता, उपमालंकार की अपेक्षा कुछ और अधिक बढ़ जाती है। यही इस अलंकार का तात्पर्य है। प्राचीनों ने इस अलंकार के पाँच प्रकार माने हैं। यथा—

१ धनुष । २ टेढ़ी भौंह । ३ प्रिय । ४ सोना ॥

(पहला प्रतीप)

दो०—जहाँ प्रसिद्ध उपमान को, पलटि करिय उपमेय ।
तासों प्रथम प्रतीप कवि, बरनत बुद्धि अजेय ॥

१—सबैया

पायन से गुललाला^१ जपादल^२ पुंज बंधूक^३ प्रभा बिथरै है ।
हाथ से पल्लव नौल^४ रसाल के लाल प्रभाव प्रकास करै है ॥
लोचन की महिमा सी त्रिवेणी लखे 'लखिराम' त्रिताप हरै है ।
मैथिली आनन से अरविद कलाधर^५ आरसी जानि परै है ॥
२—स०—तो पद से अनुमानि, तरुन अमल कोरे कमल ।

याही ते सनमानि, अवतंसित^६ मोहन करे ॥

३—दो०—बिदा किए बटु बिनय करि, फिरे पाय मन-काम ।
इतरि नहाए जमुनजल, जो सरीर-सम स्याम ॥

इन उदाहरणों पर विचार करने से प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि पैर, हाथ, लोचन, मुख और शरीर (वा शरीर का रंग) जो उपमा अलंकार में उपमेय माने जाते, वे यहाँ उपमान हो गए हैं और गुललाला, जपादल, बंधूक, रसाल-पल्लव, त्रिवेणी, कमल और जमुनाजल जो उपमा में उपमान ठहराए जाते, यहाँ उपमेय हो गए हैं । यही 'उपमा के अंगों का उलटफेर' है ।

(दूसरा प्रतीप)

दो०—जहाँ होय उपमान सों, उपमेय को अमान ।
तहाँ दूसरो प्रतीप है, नव प्राचीन प्रमान ॥

१ एक लाल पुष्प । २ गुड़हर । ३ फूल दुपहरिया । ४ नवल, नया ।
५ चंद्रमा । ६ खंजव ।

विचरण—उपमेय से उपमान को कछु बढ़कर जताना ।
इस अलंकार में सूरदास का यह पद बहुत अच्छा है ।

१-पद-नंदनंदन के बिछुरे आँखिया उपमा-जाग नहीं ।

कंज खंज^१ मृग मीन न होहीं कबिजन बृथा कहीं ॥

कंज हाति मुँदि जाति पलक में जामिनि^२ होत जहीं ।

खंज होत उड़ि जात छिनक में प्रीतम जित तितहीं ॥

मृग होती रहतीं निसिबासर चंदबदन दिगहीं^३ ।

रूप-सरोवर तें बिछुरे कहु जीवत मीन कहीं ॥

२-बरवा—गरबु करौ रघुनंदन, जिन मन माहँ ।

देखा आँखिन मूरति, सिय कै छाहँ ॥

३-दो०—महाराज रघुराजजू, कीजत कहा गुमान ।

दंड^४ कोष^५ दल^६ के धनी, सरसिज तुमहि समान ॥

४-बरवा—का घूँघुट मुख मूँदौ, अबला नारी ।

चंद सरग पै सोहत, यहि अनुहारि ॥

(तीसरा प्रतीप)

दो०—जहँ बरनत उपमेय तें, कछु हीनो उपमान ।

तहँ तीसरो प्रतीप है, कबि-जन करो प्रमान ॥

विचरण—जहाँ उपमेय की अपेक्षा उपमान में कछु लघुता वर्णन की जाय ।

१—खंज

श्रीरघुबीर-सिया छबि सामुहे स्याम-घटा बिजुरी परै फीकी ।

२-दो०—करत गर्ब तू करुपतरु, बड़ी सो तेरी भूल ।

या प्रभु की नीकी, नजर तकि^७ तेरे ही तूल^८ ॥

१ खंजन । २ रात्रि । ३ बास । ४ पहमदंड, राजदंड । ५ पहम कोश, खजाना । ६ पँखुड़ी, सेना । ७ देखो । ८ तुल्य, समान ।

३-दो०—कुलिसहु चाहि^१ कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि ।
चित खगेस रघुनाथ कर, समुक्ति परै कहु काहि ॥

४—सचैया

मान महीपति के मन आगे लगै लघु कौंकर सो कनकाचल^२ ।

(चौथा प्रतीप)

दो०—सरवरि में उपमेय की, जब न तुलै उपमान ।
चौथो भेद प्रतीप को, तहँ बरनै मतिमान ॥

१—चौपाई

बहुरि बिचार कीन मन माहीं। सीय-बदन सम हिमकर^३ नाहीं ॥

२-दो०—तो मुख ऐसो पंकसुत^४ अरु मयंक^५ यह बात ।

बरनै सदा असंक कवि, बुद्धि-रंक बिख्यात ॥

३-दो०—तुव मुख के सम है सकत कहा बिचारो चंद ।

४-चौ०—कोटि काम उपमा लघु सोऊ ।

(पाँचवाँ प्रतीप)

दो०—उपमेय के मुकाबिले, व्यर्थ होय उपमान ।

पंचम भेद प्रतीप को, ताहि कहत गुनवान ॥

या भूषन के जानिए 'वाचक' कितक, निकाम ।

मंद, वृथा, कछु नहिं, कहा, मिथ्या, निफल, गुलाम ॥

१-दा०—अमिय भरत जहँ आर सों, नयन-ताप हरि लेत ।

राधाजू को बदन अस, चंद उदय केहि हेत ॥

२-दो०—प्रभाकरन तमगुनहरन, धरन सहसकर^६ राजु ।

तव प्रताप ही जगत मैं, कहा भानु सों काजु ॥

१ बढ़कर । २ सुमेरु । ३ चंद्रमा । ४ कमल । ५ सहस्र किरणें, हजारों
अकार के राज कर ।

३—दो०—जहँ राधा आनन उदित, निसि-चामर सानंद ।

तहाँ कहा अरविंद है, कहा बापुरां चंद ॥

४—(व० तिलका) याको प्रताप यस लोक प्रकाम है ही ।

हैं ये वृथा करत चित्त जदै जबै ही ॥

धाता प्रभाकर निसाकर के तवै ही ।

रेखा करै चहुँघ^१ मंडल व्याज^२ तै ही ॥

५—दो०—जब जब जसवँत-तेज-जस, बिधना लेत जु देख ।

व्यर्थ समुझि रबि ससि करत, कुंडल मिस परिवेख ॥

६—दो०—कलष गृक्ष केहि काम को, जब हैं नृप जसवन ।

सूचना—इम अलंकार को फारसी, आरबी तथा उर्दू में 'तशबीह-माकूर' कह सकते हैं ।

(८) रूपक

दो०—उपमानऽरु उपमेय तें, वाचक-धर्म मिटाय ।

एकै कै आरोपिए, सो रूपक कबिराय ॥

जो काहू के रूप इव, रूप बनावै और ।

रूपक ताही सों कहैं, सबै सुकृषि-सिरमौर ॥

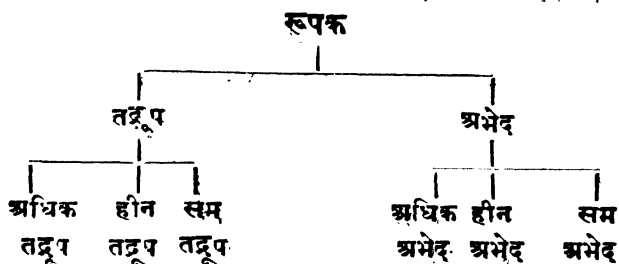
(सुगारिदान)

कहुँ कहिए यह दूसरो, कहुँ राखिए न भेद ।

अधिक, हीन, सम त्रिविध पुनि, ते तद्रूप अभेद ॥

विवरण—पूर्वोपमालंकार में से वाचक और धर्म को मिटाय कर उपमेय पर हो उपमान का आरोप करे अर्थात् उपमेय और उपमान को एक ही मान लें, यही रूपक अलंकार होगा ।

इस अलंकार के पहले दो भेद—(१) तद्रूप और (२) अभेद ।
फिर प्रत्येक के तीन-तीन प्रकार—(१) अधिक, (२) हीन और
(३) सम होते हैं । इस तरह पर इसके ६ प्रकार हो जाते हैं ।



(१) तद्रूप रूपक

जहाँ उपमान को उपमेय रूप करके वर्णन करें, वहाँ तद्रूप रूपक है । इसमें बहुधा अपर, दूसरा, अन्य इत्यादि शब्द वाचक हाकर आते हैं ।

(क) अधिक तद्रूप रूपक

हाँ उपमेय में उपमान से कुछ गुण बढ़कर हो, तो भी तद्रूप कहें ।

१-दो०—जस-धुज वा धुज तें अधिक, तीन लोक फहरात ।

धर्म-मित्र बड़ मित्र तें, मरन जियत संग जात ॥

यहाँ यश को ध्वजा ही करके वर्णन किया है, और धर्म को मित्र ही करके, परन्तु यश रूपी ध्वजा में यह अधिक गुण कहा कि वह तीनों लोकों में फहराती है (साधारण ध्वजा में यह गुण नहीं) और धर्ममित्र में यह अधिकता है कि वह मरने के अनन्तर भी साथ देता है (जो साधारण मित्र नहीं कर सकता) ।

३-दो०—मुख-सास बा ससितें अधिक, उदित ज्योति दिनरात ।

(ख) हीन तद्रूप रूपक

उपमेय में उपमान से कुछ गुण कम होने पर भी दोनों को एक रूप ठहरावें ।

उदाहरण—

- १—दो०—अपर धनेस^१ जनेस यह, नहिं पुष्पक-ग्रासीन ।
द्वितीय गनेस सुबेस सुचि, सांहत सुंड-बिहीन ॥
- २—दो०—बिपन के मंदिरन तजि, करत आँच सब ठोर ।
भाउसिंह भूगल को, तेज-तरनि^२ यह और ॥
- ३—बरवा—हुई भुज के हरि रघुवर, सुंदर भेल ।
एक जीभ के लछिमन, दूसर सेस ॥
- ४—दो०—भिरत फिरत जहँ तहँ कहो, मानत नहिं बदफैन^३ ।
यह अजान है दूसरो, बिन बिघान^४ को बैल ॥
- ५—दो०—हो समदृष्टो^५ संभु तुम, जग-जाहिर जसवंत ।
हो ब्रह्मा मुख चारि बिन, मरुपति बिस्व चदत^६ ॥
- ६—दो०—तुव अरि नारिन के लिए, सुनु जसवंत महोप ।
बन ओषधियाँ होति हैं, बिन कज्जल के दीप ॥
- ७—कविच—साहित्यै सिनराज भूषन सुजस तव,
बिगिर^७ कलंक खंद उर आनियतु है ।
पंचानन^८ एक ही बदन गनि तोहि,
गजानन^९ गजबदन बिना बलानियतु है ॥
एक सीस ही सहससीस^{१०} कला करिबे को,
कोई दृग सौ सहसदृग^{११} मानियतु है ।

१ कुबेर । २ सूर्य । ३ कुकर्म । ४ सींग । ५ दो दृष्टिवाले । ६ कहते हैं ।
७ बिना । ८ शिव । ९ गणेश । १० शेषनाग । ११ इन्द्र

दोई कर सों सहसकर^१ मानियतु तोहि,
दोई बाहु सों सहसबाहु जानियतु है ॥

(ग) सम तद्रूप रूपक

- १—दो०—नैन कमल ये ऐन हैं, और कमल केहि काम ।
२—स०—छाँह करें छितिमंडल को सब ऊपर यों 'मतिराम' भए हैं ।
पानिप^२ को सरसावत हैं सिगरे जग के मिटि लाप गए हैं ।
भूमि-पुरंदर भाऊ के हाथ पयोदन^३ ही के सुकाज ठप हैं ।
पंथिन के पथ रोकिये को नभ बारिद-वृंद वृथा उनए हैं ।
३—दो०—रच्यौ बिधाता दुहुन लै, सिगरी सोभा साज ।
तू सुंदरि रति दूसरी, यह दूजो सुरराज ॥
४—दो०—अपर रमा^४ ही मानियत, तोहि साध्वी गुनवति ।

(२) अभेद रूपक

उपमेय और उपमान की अभेदता-सूचक रूपक को 'अभेद रूपक' कहते हैं। तद्रूप रूपक में अपर, दूसरो और, अन्य अथवा भिन्नतासूचक कोई शब्द कहकर केवल तद्रूपता प्रगट की जाती है, जैसा कि उदाहरणों से स्पष्ट है। इस अभेद रूपक में ऐसा नहीं किया जाता, वरन् उपमान को ठीक उपमेय का रूप ही मानकर वर्णन करते हैं।

(क) अधिक अभेद रूपक

जहाँ उपमेय में उपमान से कुछ अधिक गुण विललाकर एक रूपता स्थापित की जाय, वहाँ यह अलंकार होता है, यथा—

१—सवैया

जंग मैं अंग कठोर महा मदनौर भरै भरना सरसे हैं ।
भूलन रंग घने 'मतिराम' महीरूह^५ फूलि प्रमान फैसे हैं ।

१ सूर्य । २ पानी, सौंदर्य । ३ बादल । ४ लक्ष्मी । ५ वृक्ष ।

सुन्दर सिंदुर-मंडित कुंभन^१ गैरिक शृंग^२ उतंग लसे हैं ।
भाउ दिवान उदार अपार सजीव पहार करी^३ यकसे हैं ।
यहाँ हाथी को पहाड़ माना है, पर इतना अधिक कहा है
कि ये हाथी 'सजीव' पहाड़ हैं (पहाड़ निर्जीव वस्तु है) ।

२—दो०—तुव मुख में अरु चंद में, कछु भेद न लखाय ।

एक बगैर कलंक के, तुव मुख जानो जाय ॥

३—चौपाई

नव बिधु बिमल तात जस तोरा । रघुबर-किंकर^४ कुमुद-चकोरा ।
उदित सदा अथइहि कबहूँ ना । घटिहि न जग-नभ दिनदिन दूना ।

४—कवित्त—रन-वन^५ घूमै तुव भुज-लतिका पै चढ़ी,

कढ़ी म्यान-बाँबो तैं बिषम बिष भरी है ।

जा अरि को डसै सो तो तजै प्रान ताही छिन,

गारडू^६ अनेक हारे भारे तैन भरी है ॥

भनत 'कबिद' राउ बुद्ध अनिरुद्ध-तनै,

जुद्ध-बीरता सों एक तैं ही बस करी है ।

तरल तिहारी तरवार पन्नगी^७ को कहूँ,

तंत्र है न मंत्र है न जंत्र है न जरी^८ है ॥

(ख) हीन अभेद रूपक

जहाँ उपमेय में उपमान से कुछ कमी दिखलाकर भी रूपक
बाँधा जाय । यथा—

१—दो०—महादानि जाचकन को, भाऊ देत सुरंग^९ ।

पछुन बिगर बिहंग^{१०} हैं, सुंडन बिगर मतंग^{११} ॥

१ हाथी का मस्तक । २ गेरू के पर्वत की चोटियाँ । ३ हाथी । ४ दास ।
५ अरण्य, जंगल । ६ सर्प का विष झाड़नेवाला । ७ नागिन । ८ जड़ी ।
९ घोड़ा । १० पक्षी । ११ हाथी ।

२-दो०—कलियुग सतयुग सो कियो, खेल दल सकल सँहारि ।

भुवन भरन पोषन करत, द्वै भुजधर दनुजारि ॥

३-दो०—सबके देखत व्योम-पथ, गयो सिंधु के पार ।

पच्छिराज बिन पच्छ को, वीर समीरकुमार ॥

४-दो०—है राधे तू उरबसी, धरे मानुषी देह ।

(ग) सम अभेद रूपक

जहाँ उपमेय और उपमान की पूर्णरूप से एकरूपता वर्णन की जाय । यथा—

१—चौपाई

राम-कथा सुंदर करतारी । संसय-बिहंग उड़ावनेहारी ।

२-स०—कामना आठहु जाम फलै कलपद्रुम राम नरेस हमारे ।

३-दो०—नारि-कुमुदिनी अवध-सर, रघुवर-बिरह-दिनेस ॥

अश्रुत भय विकसित भई, निरखि राम-राकेस ॥

४-दो०—संपति-चकई भरत-चक, मुनि-आयसु खेलवार ।

तेहि निसि आश्रम पीजरा, राखे भा भिनसार ॥

सूचना—वास्तव में सच्चा और शुद्ध रूपक यही है ।

विवरण—अर्थ-निर्णय, न्यायशास्त्र और व्याकरण के अनुसार तो रूपक के यही छः भेद हैं जो, ऊपर कहे गए । परंतु वर्णन-प्रणाली के अनुसार इन्हीं सब रूपकों के केवल तीन प्रकार कहे जा सकते हैं, अर्थात् (१) सांग, (२) निरंग और (३) परंपरित

(१) सांग रूपक

वह कहलाता है, जिसमें कवि उपमान के समस्त अंगों का आरोप उपमेय में करता है; जैसे—

१—पद—देखो माई सुंदरता की सागैर ।

बुधि बिबेक बल पार न पावत मगन होत मन-नोगर^१ ॥१॥

तनु अति स्याम अगाध अधुनिधि^२ कटि-पटपीत तरंग ।

चितवत चलत अधिक छवि उपजत भँवर परत सब अंग ॥२॥

नैन मीन मकराकृत कुंडल, भुजबल सुभग भुजंग ।

मुकुतमाल मिलि मानों सुरसरि^३ द्वै सरिता लिए संग ॥३॥

मोर-मुकुट मनिंगन आभूषन कटि किंकिनि नख-चंद ।

मनु अडोल बारिधि में बिबत राका^४ उडुगन^५ वृंद ॥४॥

बदन चंद्र-मंडल की सोभा अवलोकत सुख देत ।

जनु जलनिधि मधि प्रगट कियो ससि श्री^६ अंरु सुधा-समेत ॥५॥

देखि सरूप सकल गोपी जम रहैं बिचारि बिचारि ।

तदपि 'सूर' तरि सकी न सोभा रही प्रेम पछि हारि ॥६॥

यहाँ सूरदास ने श्रीकृष्ण की छवि में समुद्र का रूपक सांगोपांग बाँधा है। इसी प्रकार तुलसीदास ने 'विनयपत्रिका' में काशीपुरी के लिवे कामधेनु का सांगरूपक बाँधा है। जिसका आरंभ भी है—

२—पद—सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी^१ ।

तुलसीदास ने अपने 'रामचरित-मानस' (रामायण) के बालकांड में 'मानसरोवर' का रूपक, लंकाकांड में 'विजय-रथ' का रूपक और उत्तरकांड में 'ज्ञानदीपक' और 'मानसरोग' का सांगरूपक बहुत ही अच्छा कहा है। पाठकों को समझ लेना चाहिए ।

३-पद—नैदन्दन वृंदावन-चन्द ।

जदुकुल नभ तिथिद्वितिय देवकी प्रगटे त्रिभुवन-चन्द^१ ॥१॥

जठर-कुह^२ तें बहिरि बारिनिधि दिसि मधुपुरी^३ स्वच्छन्द ।

बसुदेव संभु सीस धरि आने गोकुल आनन्द-कन्द^४ ॥२॥

ब्रज-प्राची^५ राका तिथि जसुमति सरस सरद ऋतु नन्द ।

उडुगन सकल सखा संकर्षण^६ तम-दनुकुल जो निकन्द^७ ॥३॥

गोपीगन तहँ धरि चकोर गति निरख मेटि पल-द्वन्द^८ ।

'सूर' सुदेस कला षोडस^९ परिपूरन परमानन्द ॥ ४ ॥

सूचना—इस 'सांगरूपक' को अँगरेजी में सस्टेइन्ड मेटैफर (Sustained metaphor) कहते हैं ।

सांगरूपक के पुनः दो प्रकार हैं—

(१) समस्तवस्तु-विषयक । (२) एकदेश-विषयि ।

(क) समस्तवस्तु-विषयक सांगरूपक

इसके उदाहरण कई एक ऊपर लिख आए हैं । कुछ और लिखते हैं । यथा—

१—दो०—उदित उदयगिरि-मंच पर, रघुबर बाल-पतंग^१ ।

बिकसे संत-सरोज सब, हरषे लोचन-भृंग^२ ॥

२—चौपाई

दुगन केरि आसा निसि नासी । बचन नखत^३ अचली न प्रकासी^४ ।

मानी सहिष कुमुद सकुचाने । कपटी भूप उलूक लुकाने ।

भये बिसोक कोक^५ मुनि देवा । बरषहि सुमन जनावहि संवा

१ बंदनीय, बछा । २ अभावस्था । ३ मधुरा । ४ पूर्वदिशा । ५ बल-
राम । ६ अंधकार रूपी दैत्यों का संहार करनेवाले । ७ टकटकी लगाकर ।

८ सोलह । ९ सूर्य । १० नक्षत्र । ११ चक्रवाक ।

३—दो० रामनाम नरकेसरी^१, कनककसिपु कलिकाल ।

जापक-जन प्रह्लाद-जिमि दलि पालिहि सुरसाल^२ ॥

४—दो०—वर्षाभृनु रघुपति-भगति, 'तुलसी' सालि सुदास ।

रामनाम बर बरन^३ जुग, सावन भादों मास ॥

(ख) एकदेश-विधर्ति रूपक

वह कहलाता है जिसमें कुछ अंगों का निरूपण किया जाता है और कुछ का नहीं । जैसे—

१—दो०—नाम पहरुवा दिवस-निसि, ध्यान तुम्हार कपाट ।

लोचन निजपद-जंत्रिका, प्रान जाहिं केहि बाट ॥

यहाँ नाम, ध्यान और लोचन का रूपक पहरु, कपाट और यंत्र (ताला) से किया गया है, किंतु 'प्रान' का रूपक जो कैदी (बन्दी) से होना चाहिए था, नहीं किया गया—अर्थ-कर्ता अपनी बुद्धि से लगा लेता है ।

(२) निरंग रूपक

वह कहलाता है जिसमें केवल उपमान के प्रधान गुण का आरोप उपमेय पर किया जाता है । जैसे—

१—दो०—अवसि चलिय बन राम पहुँ, भरत मंत्रमल कीन्ह ।

सोकसिंधु बूझत सर्वादि, तुम अवलंबन दीन्ह ॥

यहाँ शोक को समुद्र रूप मान लिया है, उसके और अंग नहीं कहे गए । इसी प्रकार और भी जानो ।

२—पद

'तुलसिदास' यह विपति-बाँगुरों तुमहिं सो दसै निवेरे ।

यहाँ 'विपत्ति' पर बाँगुर (जाल) का आरोप है ।

१ कृतिह । २ देवताओं को कष्ट देनेवाले । ३ धान्य । ४ अक्षर । ५ बुझाते ।

३—पद

महामोह मृगजल-सरिता^१ महँ^२ धोरयो हौं बारहिं बार ।

यहाँ 'मोह' पर मृगजल-सरिता का आरोप है ।

सूचना—कभी-कभी कवि लोग निरंग रूक को मालाकार भी वर्णन करते हैं । यथा—

४—कवित्त—विधि के कमंडलु की सिद्धि है प्रसिद्ध यही,
हरिपद-पंकज प्रताप की लहर है ।

कहै 'पद्माकर' गिरीस^३ सीसमंडल की,
भुडन की माल ततकाल अघहर है ॥

भूपति भगीरथ के रथ की सुपुन्यपथ,
जम्हु-जप-योगफल फैल को फहर^४ है ।

छेप्र की छहर^५ गंगा रावरी लहर,
कलिकाल को कहर^६ जर्मजाल को जहर^७ है ॥

यहाँ गंगाजी की 'लहर' पर अनेक आरोप हैं और वे सब विरंग हैं ।

(३) परंपरित रूपक

वह कहलाता है जहाँ मुख्य रूपक का हेतु एक और ही रूपक होता है अर्थात् मुख्य रूपक एक और (अतर्गत) रूपक पर निर्भर होता है । जैसे—

१—सो०—सुमिय तासु गुन-ग्राम जासु, नाम अघेखग-बधिक ।

यहाँ श्रीराम 'नाम' पर 'बधिक' होने का आरोप किया गया, परंतु देखा क्यों किया गया ? इसलिये कि पहले 'अघ' पर 'खग' होने का आरोप कर चुके हैं—अर्थात् 'रामनाम' के बधिक होने की सिद्धि के लिये, पहले ही अघ को खग कह

डाला है, नहीं तो रामनाम पर अधिक का आरोप न हो सकना इसी प्रकार और भी जानो ।

२—सा०—सुनु गिरिराजकुमारि, भ्रम-तम-रबिकर^१ बचन मम ।

३—पद्धति

- (क) बंदों रघुपति करुनानिधान । जाते छूटै भवभेद-ज्ञान ।
 (ख) रघुबंस-कुमुद सुखप्रद-निसेस^२ । सेवित पद-पंकज अज^३ महेश
 (ग) निज भक्तहृदय-पाथोज^४-भृंग । लावन्य-बपुष अगनित अनंग
 (घ) अतिप्रबल मोह-तम-मारतंड^५ । अज्ञान-गहन-पाथक-प्रचंड ।
 (ङ) अभिमान-सिंधु-कुंभज उदार । सुररंजन भंजन-भूमिभार ।
 (च) रागादि सर्पगन-पन्नगारि^६ । कंदर्प-नाग-मृगपति^७ मुरारि ।
 (छ) भवजलधि-पोत^८ चरनारविंद । जानकी-रमन आनंदकंद ।
 (ज) हनुमंत प्रेम-बापी-मराल^९ । निष्काम-कामधुकगो दयाल ।
 (झ) त्रैलोक्यतिलक गुणगहनराम कह^{१०} तुलसिदास^{११} विश्रामधाम ।

इस पद में क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज और झ सबमें परंपरित रूपक है ।

४—चौपाई

मोह महाघन-पटल-प्रभंजन^{१२} । संसय-बिपिन-अवल^{१३} सुररंजन
 अगुन सगुन गुणमदिर सुंदर । भ्रमतम प्रबल प्रताप-दिवाकर^{१४} ।

५—चौपाई

कामक्रोध-मद-गज-पंचानन^{१५} । बसहु निरंतर जन-मन-कानन ।
 विषय मनोरथ-पुंज कंज-धन । प्रबल तुषार उदार पारमन ।

१ सूर्य की किरणें । २ चंद्रमा । ३ ब्रह्मा । ४ कमल । ५ सूर्य । ६ गरुड़ ।
 ७ कामदेव रूगी हाथी के लिये सिंह । ८ जहाज । ९ हंस । १० आँधी । ११
 आग । १२ सिंह । १३ सूर्य ।

यह परंपरित-रूपक कभी-कभी श्लेष से भी कहा जाता है। जैसे—

६—चौ०—संकर-मानस-राजमराला ।

यहाँ जब तक 'मानस' शब्द में श्लेष न माने, और उसके दो अर्थ (१) मन, (२) मानसरोवर न लें, तब तक रूपक का चमत्कार नहीं भासेगा ।

७—चौपाई

अंगद तुहों बालि कर बालक । उपजेउ बंस-अनल कुल-घालक ।

इसमें जब तक 'वंश' शब्द के श्लेष से दो अर्थ (१) बांस, (२) कुल न लिए जायँ, तब तक कोई चमत्कार नहीं भासता ।

सूचना—अँगरेज़ी में इस अलंकार को मेटैफर (Metaphor) और फारसी तथा उर्दू में 'तलाजमा' कहते हैं ।

(१) परिणाम

दो०—करै क्रिया उपमान रचि, उपमेय को स्वरूप ।

अलंकार परिणाम तहँ, बरनै कविकुलभूष ॥

बिबरण—उपमेय द्वारा की जानेवाली क्रिया का उपमान द्वारा किया जाना कहा जाय । इसी को परिणाम अलंकार कहते हैं । परिणाम का अर्थ यहाँ पर 'स्वभाव का बदलना' है । जैसे—

१—चौ०—कर कमलन धनु-सायक^१ फेरत ।

यहाँ 'कर' के उपमान 'कमल' द्वारा 'धनु-सायक फेरना' को वास्तव में कर द्वारा होना चाहिए, वर्णित है ।

२—दो०—सोनजुही कहुँ, कहुँ जुही कहुँ जाति^२ के जाल ।

हरे-हरे कर-कमल सौ, फूलन बीनति बाल^३ ॥

१—चौ०—अपने कर-कंज लिखी यह पाती ।

४—दो०—पद-पंकज तें चलत बर, कर-पंकज लै कंजु ।

मुख-पंकज तें कहत हरि, बचन-रचन^१ मुद मंजु ॥

५—सवैया

सागर श्रीरघुनंदन के कर-कंज सा मानिक मोती भर्यौ करें ।

६—दोहा—मुख ससि हरत अंधार ।

(१०) उल्लेख

परिभाषा—किसी निमित्त से एक व्यक्ति का बहुविधि वर्णन 'उल्लेख' कहलाता है । इसके दो भेद हैं—

(१) एकहि बहुत बहुत विधि लखैं,

(२) एकहि बरनि बहुत रीति ॥

विवरण—एक ही व्यक्ति को बहुत से भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न भिन्न विधि से लखें, कहें वा मानें, वहाँ प्रथम उल्लेख । यथा—

१—सवैया

हुजंन^१ भागु प्रचंड लखैं नृप-सेवक ते ससि-पूरन जानैं ।

मूरतिवत मनोज कहैं बनिता बस होत रु रीझैं सुजानैं ॥

मानैं कबींद्र सुरदुम^२ सो रु गिरापति^३ कै सब पंडित मानैं ।

आवत देखि कै रामनरिंद को भाँतिन भाँति निरूप बखानैं ॥

२—चौपाई

जिनकी रही भावना जैसी । प्रभु-मूरति देखि तिन तैसी ॥

देखहि भूप महारनधीरा । मनहु बीररस धरे सरीरा ॥

डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी । मनहु भयानक मूरति भारी ॥

एहे असुर छल छोनिप^४ बेधा । तिन प्रभु प्रगट काल सम देधा ॥

१ वचन-रचना । २ दुष्ट, शत्रु । ३ कल्पद्रुम । ४ बाणी के पंडित ।

५ राजा ।

पुरवासिन देखे दोउ भाई । नर-भूषन लोचन-सुखदाई ॥
 बिदुषन^१ प्रभु बिराट्मय दीसा । बहुमुख कर पग लोचन सीसा ॥
 जनक-जाति अवलोकहि कैसे । सजन^२ संगे प्रिय लागहि जैसे ॥
 सहित बिदेह बिलोकहि रानो । सिसुसम प्रीति न जाय बखानो ॥
 योगिन परमतत्त्वमय^३ भासा । सांत सुद्ध मन सहज प्रकासा ॥
 हरिभगतन देखे दोउ भ्राता । इष्टदेव सम सब सुख दाता ॥
 रामहि चितव भाव जेहि सीया । सो सनेह सुख नहि कथनीया ॥
 इहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ । तेहि तस देख्यो कोसलराऊ ॥
 (२) एक ही व्यक्ति को एक ही व्यक्ति बहुत विधि वर्णन करे । यथा—
 १—दो—साधुन को सुखदानि है, दुर्जनगन दुखदानि ।

बैरिन बिक्रम हानिप्रद, राम तिहारे पानि ॥

२—सवैया

सत्य की बेर^४ युधिष्ठिर है बल भीम है युद्ध-धरा महँ गाजै ।
 बान-बिलास मैं जानौ बिजै^५ नकुलैश्च बाजिन^६ की गति साजै ।
 आगम^७ जानिबे को सहदेव लखे सबके मनभावते छाजै ।
 पोषकता जग की हरिहै लखि 'कूरमराम' नरिंद बिराजै ।

३—कवित्त—सारमाला सत्य की बिचारमाला वेदन की

भारी भागमाला^८ है भगीरथ नरेस की ।

तपमाला जन्हु की सु जपमाला जोगिन की,

आछी आपमाला^९ है अनादि ब्रह्म बेस की ।

कहै 'पदमाकर' प्रमानमाला पुन्यन की,

गगाजू की धारा मानमाला है धनेस^{१०} की ।

ज्ञानमाला गुरु की गुमानमाला ज्ञानिन की,

ध्यानमाला ध्रुव मौलिमाला^{११} है महेश की ॥

१ मसखरे । २ स्वजन, संबंधी । ३ ब्रह्म । ४ हाथ । ५ समय । ६ अर्जुन ।
 ७ घोड़ा । ८ भविष्य । ९ भाग्य । १० जड़ । ११ धनपति । १२ मुंदमाला ।

सूचना—इस अलंकार की कारसी तथा श्रृं में “तन्सीकुलसिकात” कहते हैं।

(११) स्मरण

दोहा

कछु लखि, कछु सुनि, सोचि कछु, सुधि आवै कछु खास ।
सुमिरन ताको भाषिए, बुधवर सहित हुलास ॥

विवरण—यद्यपि प्राचीन आचार्यों ने इस अलंकार की परिभाषा ऐसी लिखी है। कि :—

“सदृश वस्तु लखि सदृश की, सुधि आवै जेहि ठौर ।

सुमिरन भूषन तेहि कहै, सकल सुकवि-सिरमौर” ॥

परन्तु हिंदी-साहित्य में हमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनसे ज्ञान पड़ता है कि प्राचीनों का यह लक्षण पर्याप्त नहीं है। इसीसे हमने इस अलंकार की नवीन परिभाषा ग्राही है। कारण यह है कि या तो इसको अलंकार ही न मानना चाहिए या अगर अलंकार मानना ही है तो केवल सदृश वस्तु को देखकर सदृश वस्तु की सुधि आने ही में क्यों माना जाय ? सब दशाश्रों में क्यों न माना जाय ? पहले देखी हुई वस्तु का स्मरण कई भाँति से हो सकता है। जैसे—

कछु लखि—

(क)—(समान गुणवाली वस्तु को देखकर स्मरण)

१—चाँपाः—प्राची^१दिसि ससि उपउ सोहावा ।

सिय-मुख-सरिस देखि सुख पावा ॥

२—दो०—लखि ससि मुख की हांत सुधि, तन-सुधि घन को जोहि^२।

३—चौपाई

बीच बासकरि जमुनहि आप । निरखि नीर लोचन जल छाप

दो०—रघुवर-वरन-बिलोकि बर, बारि^१ समेत-समाज ।

होत बिरह-बारिधि मगन, चढ़े बिबेक-जहाज ॥

(ख) — (संबंधी वस्तु को देखकर स्मरण)

१—दो०—सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर ।

मन है जात अजौ^२ वहै, वा जमुना के तोर ॥

—(बिहारी)

२—चौपाई

खल होत नवनीत^३ निहारी । मोहन के मुख-जोग विचारी ॥

—(यशोदा-वचन ऊधव-प्रति)

(ग) — (स्वप्न देखकर स्मरण)

१—सवैया

आगि परै तो न कान्ह कहूँ, न बंद^४ की छाँह नहीं जमुनातट ।

२—दो०—देखौं जगि तवै सखी, साँकर^५ लगी कपाट ।

कित है आवत जात भौं, को जानै केहि बाट ॥

(घ) — (कभी-कभी वैषम्य-दर्शन से भी स्मरण होता है) यथा:—

१—कविस्त—ज्यों-ज्यों इत देखियत मूरख बिमुख लोग,

त्यों-त्यों भ्रजवासी सुखरासी मन भावै है ।

खारे जल छीलर^६ दुखारे अंधकूप देखि,

कार्लिदी^७ के कूल-काज मन ललचावै है ॥

जैसी अघ बीहत सो कहतै ना बनै बैन,

'नागर' ना चैन परै प्रान अकुलावै है ।

यूँ ही पलास देखि-देखि कै बबूर बुरे,
 हाय हरे-हरे ते तमाल सुधि आवै हैं ॥
 —(नागरीदास)

कछु सुनि-

१-दा०—सुनि कोकिल ध्वनि बचन की, आवत है सुधि मोहि ।

२-सवैया

का कहिए 'रिय' बोलि परीहा चथा जिय की पुनि देत जगाय ।

(चर्चा वा कथा सुनकर स्मरण)

एक समय कृष्ण को सुनाने समय यशदा ने कथा कहना आरंभ किया । निधिवशात् रामावतार की कथा कहने लगी । कथा कहते-कहते जब सीता-हरण का प्रसंग आया, तब बाल-रूप कृष्ण को पूर्वजन्तु का स्मरण आया और अज्ञातक चौंकर बोले—“लक्ष्मण ! लाना ला खेरा धनुष-बाण” । इस बात का कवियों ने अच्छी आलंकारिक भाषा में वर्णन किया है । यथा—

३-चोपाई

इक दिन महारि^१ स्थाम को लैकै । परी पलंग पर तकिया देकै ॥
 लागी कहन कथा सुखदाई । जमि अवतार लीन रघुराई ॥
 बाल-बिनोद बिबाह-उछाह । बिपिन-गवन भूरति कर दाह^२ ॥
 भरत-सनेह लखन-सेवकाई । कहि खरदूषन केरि लड़ाई ॥
 कह्यो जानकी केर हरन जब । “कहं धनुषर” कहि कृष्ण उठे तब ॥

सोचि कछु-

(कुछ सोच-समझ कर, कुछ विनयन करके स्मरण)

१-दा०—नृप उदार चितन करत, आए जसवैत याद ।

—(मुरारिदान)

यहाँ उदार राजाओं का चित्रण करने से जसवंतसिंह का स्मरण आया। कविराज 'भूषण' ने जो उदाहरण अपने 'शिवराज-भूषण' में लिखा है, वह इस चित्रण का बहुत अच्छा प्रमाण है। भूषण लिखते हैं:—

२—कवित्त—तुम शिवराज वज्रराज^१-अवतार आज,
 तुम ही जगत काज पोषत-भरत हो^२ ।
 तुरहैं छाँड़ि याते काहि घिनती सुनाऊँ,
 मैं तुम्हारे गुन गाऊँ तुम ढोले^३ क्यों परत हो ॥
 'भूषण' भनत बहि कुल मैं नयो गुनाह,
 नाहक समुझि यह चित मैं धरत हो ।
 और बामहनन देखि करत सुदामा सुधि,
 मर्मह देखि काहे सुधि भृगु की करत हो ॥

भूषण कहते हैं कि मुझे ब्राह्मण-कुल में पैदा होने का नया सुनाह (बाप) आप लगाते हैं, और विष्णु का अवतार होने के कारण मुझपर आप नाराज होते हैं, क्योंकि भृगुजी ने विष्णुजी की छाती पर लात मारी थी। कृष्ण का अवतार होने के कारण सुदामा की मित्रता का चित्रण करके अन्य ब्राह्मणों को मानना और विष्णु का अवतार होने के कारण 'भूषण' को भृगुवंशी जानकर उस समय की अकस निकालना क्या ये सब बात बिना चित्रण के हो सकती है? इस कारण चित्रण (सोचि कह्यु) से भी स्मरणालंकार हो सकता है। पाठकों को याद रखना चाहिए कि 'स्मृति' नामक एक 'संचारी' भाव भी होता है। उसमें भी गन वा विस्मृत वस्तुओं के स्मरण का ही वर्णन होता है। उस भाव और इस अलं-

कार में भेद यह होता है कि जब वर्णन में 'रस' की पुष्टि हो तब तो वह 'स्मृति' संचारी भाव होगी, जब अर्थ में चमत्कार आवे तब अलंकार माना जायगा ।

(१२) भ्रांति (भ्रम)

दो०—भ्रांति और की और में, निश्चित जब अनुमान ।

भ्रांति, भ्रमालंकार तेहि, कहैं सुकवि मतिमान ॥

विवरण—भ्रम से किसी और वस्तु को कोई और वस्तु मान बैठना भ्रांति है । जैसे—

१—चौपाई

जो जेहि मन भावै सो लेहीं । मनि मुख मेलि^१ डारि कपि देहीं ॥

यहाँ नाना वर्ण की मणियों को देखकर नानावर्ण के फलों का भ्रम होता है । फल समझकर मुख में डाल लेते हैं पर जब वह फूटती नहीं तब डगल देते हैं ।

२—सो०—कपि कर हृदय विचार, दीन्ह मुद्रिका डारि तब ।

जानि असोरु^२ अंगार, सीध हरषि उठि कर गह्यो ॥

यहाँ जानकीजी श्रीरामचंद्र की स्वर्ण-मुद्रिका को अशोरु-अदत्त अंगारा समझती हैं ।

३—दो०—चहुँघा तेरे सुगस की, रुरो^३ रासि निहारि ।

फिर-फिर दोवत जटनि हर, गिरि गंगा की धार ॥

४—दो०—पार्यँ महावर देन को, नाइन बैठी आय ;

फिर-फिर जानि महावरी^४, पँ डी मीड़त जाय ॥

(शकुंतला कहती है)

- ५—सौ०—रीसखि मोहि बचाय, या मतचारे भ्रमर सौं ॥
 डसो चहत मुख आय, भस्म भरो बारिज^१ गुनै ॥
- ६—दो०—जानि स्यामघन^२ घन तुम्है, नाचि उठैं बन मोर ॥
 चितै रहत मुख ओर निसि, निस्चल चखन^३ चकोर ॥
- ७—दो०—परत भ्रमर सुकतुंड^४ पर, मन धरि कुसुम-पलास^५ ।
 सुक ताको पकरन चहत, जंबूफल^६ की आस ॥

(१३) संदेह

(दोहा)

बहु विधि बरनत बर्ण्य को, नियत न तथ्य अतथ्य ॥
 अलंकार संदेह तहँ, बरनत हैं मतिपथ्य^७ ॥

विवरण—जहाँ किसी वस्तु को देखकर संशय बना हो रहे, निश्चय न हो। 'संति' में एक वस्तु पर निश्चय जम जाता है, संदेह में किसी पर नहीं जमता। धौं, किधौं, कीधौं, की, कि, या, अथवा इत्यादि संदेह-सूचक शब्द इस अलंकार के बाचक हैं। जैसे—

१—चौपाई

की तुम तीनि देव महँ कोऊ । नर-नारायन की तुम दोऊ ॥
 की तुम हरिदासन^१ महँ कोई । मारे हृदय प्रीति अति होई ॥
 की तुम राम कीन-अनुरागी । आप माहि करन बड़भागी ॥

१ कमल । २ श्रीकृष्ण । ३ अखि । ४ सुगो की बोंच । ५ टेसू का फूल ।
 जामुन । ६ सुबुद्धि । ७ भगवान के भक्त ।

२—कवित्त—पाय अनुसासन^१ दुसासन कै कोप धायो,
 द्रुपदसुता को चीर गहे भीर भारी है ।
 भीषम करन द्रोण बैठे व्रतधारी तहाँ,
 कामिनी की ओर काहू नेक ना निहारी है ॥
 सुनिकै पुकार धायो द्वारिका तैं जदुराई,
 बाढ़त दुकूल^२ खैंचे भुजबल हारी है ।
 सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है,
 कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है ॥

३—पद—ये कौन कहाँ ते आए ।

मुनि-सुत किधौं भूप-बालक किधौं ब्रह्म-जीव जग जाए।
 रूप^३-जलधि के रतन, सुछवितिय-लोचन-ललित-लला ये^४ ॥
 किधौं रबिसुवन, मदन, ऋतुपति^५ किधौं, हरिहर^६ भेष बनाए ।
 किधौं आपने सुकृत^७-सुरतय के सुफल राखरे^८ पाए ॥

—(गीतावली)

सूचना—यह अलंकार फारसी अरबी तथा उर्दू के 'तजाहुल आरिफ'
 नामक अलंकार से मिलता-जुलता है ।

(१४) अपन्हति

दो०—मिथ्या कीजै सत्य को, सत्य जु मिथ्या होत ।
 अपन्हति षट भेद को, बरनत हैं कबि गोत ॥

सुद्ध, हेतु परजस्त, भ्रम, छेका, कैतव देखि ।
 'ना' बाचक है पाँच को, कैतव को मिस, लेखि ॥

१ आज्ञा । २ साड़ी । ३ सौंदर्य । ४ छविरूपी स्त्री के ये बालक
 लोचन हैं । ५ वसंत । ६ विष्णु और महादेव । ७ पुण्य । ८ आपने ।

विवरण—‘अपन्हुति’ शब्द का अर्थ है ‘छिपाना’। इस-
लिये इस अलंकार में किसी बात का छिपाना और कोई अन्य
बात कहकर दूसरे का संताप कर देना यही वर्णन रहता है।
इसके ६ भेद हैं, जिनमें से प्रथम पाँच में निषेधवाची ‘न
‘नहीं’ का प्रयोग अनिवार्य है और अंतिम ‘कैतवापन्हुति’
में ‘मिस’ शब्द का प्रयोग अवश्य ही होता है। बस इन्हीं
वाचक शब्दों से इस अलंकार की ठीक पहचान हा जाती है।

(१) शुद्धापन्हुति

दो०—दुरै सत्य उपमेय को, प्रगट करै उपमान ।

शुद्धापन्हुति कहैं तेहि, जे कबिंद मतिमान ॥

विवरण—उपमेय को असत्य ठहराकर उपमान का स्थापन
किया जाय, वही शुद्धापन्हुति अलंकार है। जैसे:—

१—चौपाई

मैं जु कहा रघुवीर कृपाला । बधु^१ न होय मोर यह काला ॥

यहाँ सत्य बंधुत्व को असत्य ठहराकर उपमानरूपी असत्य
कालत्व का स्थापन किया है।

२—दो०—पहिरे स्याम न पीतपट, घन में बिज्जु^२ बिलास ।

३—दो०—सारद^३ ससि नहि सुंदरी, उदया जस जसवंत ॥

४—दो०—अंक^४ न संग रही जु लंगि, भिळुक-जन की पंत^५ ।

५—दो०—नहि सुधांसु यह है सखी, नभगंगा को कंज ॥

६—सवैया

वे न घने घन कुंजरमाल^६ हैं, या चपला न दिपै तरवारी ।
मर्जनि नहि नगारे बजैं, बकपाँति नहीं गजदंत निभारी^७ ॥

१ भाई । २ बिल्ली को चमक । ३ शरद कानु का । ४ चंद्रमा का
कलंक । ५ पंक्ति । ६ हाथी । ७ केवल, खालिय ।

धै न मयूर जो बोलत हैं बिरुदावलि बंदि^१बर्दे जस भारी ।
या नहि पावसकाल अली, यह तो सखि है अमरेससवारी^२ ॥

सूचना—याद रखना चाहिए कि यह अपन्हुति अलंकार कई-एक अन्य अलंकारों से मिलकर भी आता है । उदाहरणार्थ देखो 'प्रापन्ह-वोत्प्रेक्षा' और 'सपन्हवातिशयोक्ति' ।

(२) हेत्वपन्हुति

दो०—सुद्धापन्हुति में जहाँ, कहिए हेतु बनाय ।

हेतु अपन्हुति कहत हैं, ताहि सकल कबिराय ॥

विवरण—शुद्धापन्हुति में जब कोई कारण भी बतला दिया जाय, तब वही हेत्वपन्हुति हो जायगी । जैसे—

१—दो०—रात-माँझ रबि होत नहि, ससि नहि तीव्र सुलाग ।

उठी लखन अचलाकिए, बारिधि^३ सों बड़वाग^४ ॥

यहाँ चंद्रमा को देखकर रामचंद्र कहते हैं—'हे लक्ष्मण, देखो तो यह चंद्रमा नहीं है क्योंकि इसकी किरणें तीव्र जान पड़ती हैं और रात्रि में सूर्य का होना असंभव है इससे यह सूर्य भी नहीं है, अतः यह समुद्र से निकलती हुई बड़वाग्नि हो है' । यदि केवल इतना ही कहा जाता कि 'यह चंद्रमा नहीं है, बड़वाग्नि है' तो शुद्धापन्हुति हांती । चंद्रमा के निषेध का कारण 'तीव्र लगता है' भी कहा गया है, अतः हेत्वपन्हुति है । इसी प्रकार 'सूर्य नहीं है' इसका भी कारण 'रात्रि है' बतलाया गया है । इसी प्रकार और भी समझना । यथा—

२—सवैया

सेत^१ सरीर हिये बिष स्याम कला-फन^२ री मनि जानु जु^३ हारै ।
 जीभ-मरीची^४ दसौदिसि कैलती काटत जाहि बियोगन-तारै^५ ॥
 सीस^६ पूँछि लौं गात गरबों पै डसे बिन ताहि परै न कलारै^७ ।
 सेस के मोत के पेसे ही होत हैं चंद नहीं या फनिद^८ है मारै ॥

३—दो०—सिव सरजा के कर लसै, सो न होय किरवान^९ ।
 भुज-भुजैंगेस-भुजैंगिनी, भक्ति पौन-अरि-प्रान ॥

(३) पर्यस्तापन्हुति

दो०—धर्म और में राखिए, धर्मी साँच छिपाय ।
 पर्यस्तापन्हुति कहैं, ताहि सकल कबिराय ॥

विवरण—(पर्यस्त = फँका हुआ) किसी वस्तु में उसके सच्चे धर्म का निषेध इसलिये किया जाय कि वह धर्म किस दूसरी वस्तु में आरोपित करना है। यथा—

१—दो०—हे न सुधा यह है सुधा, संगति-साधु-समाज ।

यहाँ 'साधु' में सुधात्व (अमरत्वगुण) का निषेध इसलिये किया गया कि उसका धर्म साधु-समाज की संगति में स्थापित करना मंजूर है ।

२—दो०—नहीं सक^१ सुरपति अहैं, सुरपति नंदकुमार ।
 रतनाकर सागर न है, मथुरा-नगर-बजार ॥

३—दो०—यह न चाँदनी चाँदनी, मृदु बिहँसनि-नंदलाल ।

४—पद—मीन^२ में नहिं प्रीति सजनी, चातकहिं नहिं प्रेम ।
 एक मति गति एक व्रत, यह भरत ही में नेम ॥

१ उज्ज्वल । २ कलाएँ फण हैं । ३ किरणें । ४ छाप । ५ चैन ।
 ६ शेषनाग । ७ तलवार । ८ इंद्र । ९ मछली ।

५—सो०—कालकूट^१ बिष नहि, बिष है केवल इंदिरा^२ ।
हर^३ जागन छकि^४ वाहि, यहि सँग हरिनींदन तजत ॥

सूचना—प्रायः देखा जाता है कि इस अलंकार के उदाहरणों में जिस के सच्चे धर्म को छियाना होता है उसे दो बार लाना पड़ता है । उदाहरणों में देखो—सुधा, सुरपति, चाँदनी और विष शब्द दो-दो बार आए हैं ।

(४) भ्रांतापन्हुति

दो०—भ्रम संका मन और के, कछु कारन तें होय ।
दूरि करै कहि सत्य सो, भ्रांतापन्हुति सोय ॥

१—चौपाई

कह प्रमुहँसि जनि हृदय डराहूँ लूक^१ न असनि^२ न केतु न राहू ।
ये किरोट दसकंधर करे । आवत बालि-तनय^३ के भेरे ॥

२—दा०—बेसर^४ मांती-दुति-भलक, परी अधर पर आय ।
चुनो होय न चतु^५ तिय, क्यों पट पौछा जाय ॥

३—दोहा—आली लाली लखि डरपि^६, जनि टेरहु नैंदलाल ।
फूले सद्यन पलास ये, नहि दावानल-ज्वाल ॥

(५) छेकापन्हुति

दो०—संका नासै और की, साँची बात दुराय ।
छेकापन्हुति कहत हैं, ताहि कबिन के राय ॥

विवरण—(छेक = चतुराई) यह अलंकार भ्रांतापन्हुति का ठीक विरोधी है । उसमें सत्य कहकर भ्रम दूर किया जाता है और इसमें सत्य को छियाकर असत्य बातें कहकर शंका दूर करने की चेष्टा की जाती है (चाहे वह शंका दूर हो वा न हो) ।

१ हालाहल, समुद्र से निकला विष । २ लक्ष्मी । ३ महादेव । ४ पीकर । ५ उठका । ६ वज्र । ७ अंगद । ८ बुलाक । ९ डंकर ।

१—कवित्त—साँवरो सलोनो गात^१ गीतपट सोइत सो,
 अछुज-सं आनन^२ पै परै छवि ढरकी ।
 मंत्र ऐसी जत्र ऐसी तंत्र-सी तरकि परै^३,
 हँसनि चलनि धितवनि स्थौं सुघर को ।
 'गोकुल' कहत वन-कुंजने को बासी लखे,
 हाँसी सी करतु है री काम कलाधर^४ की ।
 एतने में बोली और मिले हरि सुखदानी,
 नार्ही में कहानों कहो राम-रघुवर की ॥
 यहाँ कोई गोपी कृष्ण की छवि का वर्णन कर रही थी, एक
 अन्य स्त्री ने आकर पूछा कि क्या तुम्हें कृष्ण मिले थे, तब वह
 सत्य बात (कृष्ण-दर्शन) को छिपाकर कहती है कि नहीं, मैं
 तो राम की कथा कह रही थी ।

२—चौपाई

कछु न परीक्षा लीन्ह गुसाई^१ । कान्ह प्रणाम तुम्हारिहि नाई ।
 सूचना—'मुकरी' इसी अलंकार में कहा जाती है । जैसे—

१—चौपाई

अर्द्धनिसा बट आयो भौन । सुंदरता बरनै कहि कौन ।
 निरखत ही मन भया अनद । क्यों सखि साजन^२? नहिं सखि चंद ।

२—चौपाई

सोभा सदा बढ़ावनदारा । आँखिन ते बिन^३ करूँ न न्यारा ।
 आठ पहर मेरो मनरंजन । क्यों सखि साजन? नहिं सखि अजन

(६) कैतवापन्हुति

दो०—मिस ग्योजादिक सन्द दै, कहै आन को आन ।
 ताहि कैतवापन्हुती, भूषन कहैं सुजान ॥

१ शरीर । २ कमल-सा मुख । ३ समक में आवी है । ४ चंद्रमा ।
 ५ प्रेमी । ६ कृष्ण ।

१—चौपाई

पठै मोइ मिस खगपति^१ तारी । रघुपति दीन्ह बड़ाई मोहीं ।

२—चौपाई

लखी नरेस बात यह साँची । तिय मिस मीचु^२ सीस पर नाची ॥

३—सवैया

लालिमाश्रीतरवानि के तेज मैं सारद^३ लौं सुखमा की निसैनी^४ ।

नूपुर नीलमनीन जड़े जमुना जगै जौहर में सुखदैनी ॥

यौं 'लछिराम' छुश नख-नील^५ तस्गिनी गग-प्रभा फल पैनी ।

मैथिली क चरनां बुज व्याज^६ लसै मिथिला मग मजु त्रिबैनी ॥

४—दा०—छनपरभा^७ के छल रही, चमकि मार-करवार^८ ।

बीरवधू^९ के व्याज री, दहकत आजु अंगार ॥

सूचना—इस अलंकार में मित्र, छल, व्याज, बहाना इत्यादि शब्दों का लाना आवश्यक है। जिस वस्तु के बहाने जो वस्तु कथन की जाती है, इन दोनों में कारण और कार्य का सा अथवा उपमेय उपमान का सा संबंध भी होना जरूरी है। 'पर्यायोक्ति' से इसका अंतर समझ लेना चाहिए। पर्यायोक्ति अलंकार की सूचना देखिए।

(१५) उत्प्रेक्षा

सूचना—उत्प्रेक्षा (उद् + प्र + ईक्षण) शब्द का अर्थ है "बलपूर्वक प्रधानता से देखना"। इस अलंकार का मुख्य तात्पर्य "किसी उपमेय का कोई उपमान कल्पनाशक्ति द्वारा कल्पित कर लेना है" कल्पना प्रतिभा के बल से ही हो सकती है। जितनी ही शक्तिवती प्रतिभा होगी उतनी ही उत्तम कल्पना हो सकेगी, इसलिये इस अलंकार को उत्प्रेक्षा कहते हैं। अतः उत्प्रेक्षा की यह परिभाषा हुई—

१ गहड़ । २ मृत्यु । ३ सरस्वती । ४ शोभा की सीढ़ी । ५ नख । ६ बहाना । ७ बिजली । ८ कामदेव की तलवार । ९ एक बरसाती लाल शर्मा ।

दो०—बल सों जहाँ प्रधानता करि देखिय उपमान ।
उत्प्रेक्षाभूषण तहाँ कहत, सुकवि मतिमान ॥

वाचक—मनु, जनु, मानो, जानो, निश्चय, प्रायः, बहुधा इव, खलु इत्यादि शब्द इस अलंकार के वाचक होते हैं ।

उत्प्रेक्षाअलंकार तीन प्रकार का होता है—(१) वस्तुत्प्रेक्षा, (२) हेतुत्प्रेक्षा और (३) फलोत्प्रेक्षा ।

(१) वस्तुत्प्रेक्षा

किसी वस्तु के अनुरूप बलपूर्वक कोई उपमान कल्पित किया जाय, वहाँ वस्तुत्प्रेक्षा अलंकार कहा जायगा । इसके दो प्रकार हैं ।

(क) उक्तविषया—जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय पहले कहा जाय, और तब उसके अनुरूप कल्पना की जाय । (ख) अनुक्त विषया—जहाँ विषय न कहा जाय, केवल कल्पना की जाय ।

(क)—उक्तविषया वस्तुत्प्रेक्षा

१—दो०—सोहत ओढे पीतपट, श्याम सलाने गात ।

मनो नीलमणि सैल पर, आतप^१ परधा प्रभात ॥

यहाँ 'पीतांबर ओढे कृष्ण का श्यामलतनु' उत्प्रेक्षा का विषय है, सो पहिले कह दिया गया है, तब उत्प्रेक्षा की गई कि वह तनु कैसा है मानो नीलमणि का पर्वत है जिसपर प्रातःकाल के सूर्य की किरणें पड़ रही हैं । यहाँ मुख्य तात्पर्य तो कृष्ण के तनु के वर्णन से है परंतु कवि अपनी कल्पना से पाठक का ध्यान बलपूर्वक खींचकर एक नीलमणि के पर्वत पर अतःकाल की सूर्य-किरणों के पड़ने के दृश्य की ओर लिए जाता है ।

इस दृश्य के दिखलाने से कवि का तात्पर्य यह है कि पाठक (दर्शक) कृष्ण के तनु की उत्कृष्ट शोभा का अनुमान कर सकेगा। इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिए। कुछ और उदाहरण देखिए।

२—दो०—लता-भवन तें प्रगट भे, तेहि औसर दोउ भाइ ।
बिकसे जनु जुग^१ विमल बिधु, जलद पटल बिलगाइ^२ ॥

३—सवैया

संभु-सरासन^३ तोरयो मृनाल^४ सो भाल बिसाल प्रताप सोहावै ।
त्यों 'लछिराम' स्वयंवर में मिथलेस-अनंद अमात ब छावै^५ ॥
राम गये जयमाल के देत सु मैथिली^६ यों समता सरसावै ।
मानो रमा रतनाकर^७ में रतनाबली श्रीहरि का पहिरावै ॥
४—दो०—सखि सोहति गोपाल के, उर गुंजन की माल ।

बाहिर लसत मनो पिप, दावानल की ज्वाल^८ ॥

५—दो०—'पूरन' जमुना-नोर पर, यों आतप छबि होति ।
मानहु कृष्ण सरीर पर, पीतपटो की जोति ॥

इन सब उदाहरणों में उत्प्रेक्षा के विषय पहले कह दिए गए हैं तब उत्प्रेक्षाएँ की गई हैं, इसलिये ये उदाहरण उक्त-विषया के हैं।

सूचना—गोस्वामी तुलसीदासजी तथा कवि-शिरोमणि ब्रह्मदासजी ने रामजी तथा कृष्णजी की बालछवि-वर्णन में इस अलंकार का बहुत अधिक और बहुत उत्तम प्रयोग किया है। जैसे:—

१—लोचन नील-सरोज-से भ्रू पर मसिबिंदु^९ बिराज ।
जनु बिधुमुख छवि-अमी को रक्षक राखे रसरज^{१०} ॥

१ दो। २ फाड़कर। ३ धनुष। ४ कमल दंड। ५ अटता नहीं।
६ जानकी। ७ समुद्र। ८ एक बार श्रीकृष्ण जी दावानल पी गए थे।
९ काजल का छिड़ोना। १० शृंगार।

- २—सिसु-सुभाव सोहत जब कर गहि,
बदन^१-निकट पद-पल्लव लाए ।
मनहु सुभग जुग भुजैंग^२ जलज^३,
भरि लेत सुधासमिसौं सबु^४ पाए ॥
- ३—बंधुक^५ सुमन अरुन पद-पंकज,
अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आए ।
नूपुर जनु मुनिबर कलहंसन,
रचे मीढ़^६ दै बाँह बसाए ॥
- ४—भाल बिसाल ललित लटकन बर,
बालदसा के चिकुर^७ सुहाए ।
मनु दोर^८ गुरुसनि कुज^९ आगे करि,
ससिहि^{१०} मिलन जम के गन आए ॥
- ५—गजमनिभाल बीच आजत कहि जात न पदिक निकाई
जनु उड़गन बारिद-मडल पर नवग्रह रची अथाई^{११} ।
- ६—मंजु मेवक^{१२} मृदुल तनु अनुगत भूषन-भरनि^{१३} ।
जनु सुभग शृंगार-सिसुन^{१४} फया अद्भुत-फरनि ॥

(ख) अनुक्तविषया वस्तुप्रेक्षा

जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय कथन न करके उत्प्रेक्षा क
जाय । जैसे—

- १—दो०—अजब बरसत गगन यह, मानो अथए भानु ।
यहाँ खूँसरा^१ के अतार 'अतार हा फैरा' जा उत्प्रेक्ष
का विषय है वह झूठे कहा नहीं गया, परन्तु उत्प्रेक्षा की ग

१ मुव । २ मप । ३ कमठ । ४ आनद । ५ फूट दुहिया । ६ घोषज
७ शरण में रखा । ८ केश । ९ मंगल । १० बैठे, गांठो । ११ काका
१२ सहने । १३ छोटा वृक्ष ।

है कि मानो सूर्यास्त के अनंतर यह आकाश काजल बरसाता है। ऐसे ही कथन को अनुकविषया जानो।

२—दो०—उदित सुधाधर करत जनु, सुधामयी बसुधाहि।

यहाँ चंद्रोदय के अनंतर जो 'चाँदनी फैलती है, वही इसका विषय है, सो कवि ने कहा नहीं। उत्प्रेक्षा यह की कि चंद्रमा उदय होकर मानो समस्त धरातल को सुधामय कर देता है (सुधा का रंग सफेद माना गया है)।

३—दो०—सरद-ससी बरसत मनो, घन घनसार अमंद।

यहाँ भी 'चाँदनी का प्रकाश' जो उत्प्रेक्षा का विषय है, वह नहीं कहा गया, उत्प्रेक्षा यह की गई कि मानो शरद-ऋतु का चंद्रमा बहुत-सा सफेद कपूर बरसाता है। चाँदनी की तरह कपूर का रंग भी स्वेत ही होता है।

४—सचैया

मोर लौं मंजु नचैं धरती पर मंडित-फेन लगाम उमाहैं^१।
कान के बीच लसैं कलगी फिरी त्यौर तिरीछी अतूल अदा^२ हैं।
काम-कबूतर लौं 'लछिराम' छलैं यों अटेरन^३ की परमा^४ हैं।
बाजि बली रघुबंसिन के मनो सूरज के रथ चूमन चाहैं।

इसमें श्रीरामजी की बारात के घोड़ों का वर्णन है, उनके तन की छवि वर्णन करके कवि कहता है कि 'वे घोड़े मानो सूर्य का रथ चूमना चाहते हैं' अर्थात् उछलने में बहुत ऊँचे तक उछलते हैं, परंतु उनकी 'उछाल' जो इस उत्प्रेक्षा का मुख्य 'विषय' है कवि ने कही ही नहीं। इससे अनुक-विषय जानो। इसी प्रकार और भी समझ लो।

१ उत्साहित होते हैं। २ अनुपम शोभा। ३ कावा काटना।
४ शोभा।

५—दो०—बरसै जनु काजल गगन, तम लिपटत सब गात ।

दीठि नीच-सेवा सरिस, बिफल भई-सी जात ॥

सूचना—उपमा में दो वस्तुओं की समता वस्तुतः दिखलाई जाती है ।
उत्प्रेक्षा में केवल उस समानता का संभव संशय रूप से कहा जाता है ।

(२) हेतूत्प्रेक्षा

अहेतु को हेतु मानकर उत्प्रेक्षा की जाय, वहाँ हेतूत्प्रेक्षा समझो । इसके भी दो प्रकार हैं:—(१) 'सिद्धास्पद' अर्थात् उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध हो (संभव हो), (२) 'असिद्धास्पद' अर्थात् उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध न हो (असंभव हो) ।

(सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा)

१—दो०—मनो कठिन आँगन चली, ताते राते^१ पायें ।

सुकुमार स्त्रियों के चरणों में ललाई स्वाभाविक ही होती है, परंतु कवि उसका हेतु कल्पित करता है कि मानों कठिन आँगन में चलने से वह ललाई आ गई है । स्त्रियाँ आँगन में चलती हैं यह तो सिद्ध आधार है । अहेतु में हेतु की कल्पना की गई है, यही अलंकारता है ।

२—दो०—रवि-अभाव लखि रैन में, दिन लखि चंद-बिहीन ।

सतत^१ उदित यहि हेतु जनु, जस प्रताप भुवि कीन ॥

यहाँ भी रात में सूर्य का अभाव और दिन में चंद्रमा का अभाव सिद्ध आधार है, पर इन्हीं कारणों से कोई राजा पृथ्वी भर में अपना यश और प्रताप नहीं फैलाता (उसका कारण कुछ और ही होता है) ।

३—क०—घोर निरधनता सुदामा-घर बास कीन्हो,

दारुन कलेस दै दै दीन को सतायो है ।

संमति लै बाम^१ की सिधायो द्विज स्थाम-पास,
 भेंट करि तंदुल^२ अखंड धन पायो है ॥
 'पूरन' जू मानों भई द्वारिका गया की पुरी,
 जाय बिघ्न जामैं मनमानो फल पायो है ।
 दारिद्र-पिसाच मानि आखत^३ निमंत्रण को,
 संग जाय तरिगो न फेरि भीन आयो है ॥
 'गया' में तर जाना सिद्धास्पद हेतु है । दरिद्ररूपी पिशाच
 के लौटकर न आने का वही हेतु कहा गया है ।

(असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा)

जहाँ उत्प्रेक्षा का कथित हेतु असंभव हो । जैसे—

१—दो०—मुख सम नहि यातें मनो चर्दहि छाया छाय ।

राधिका के मुख के समान नहीं है, इससे मानों चंद्रमा में
 छाया (काला दाग) छाई हुई है । यहाँ असिद्ध आधार
 कहा गया है, अतएव असिद्धास्पद है ।

२—दो०—पूस दिमन में हैं रहां, अग्नि-कोन में भानु ।

में जाना जाड़ा बली, तें वह डरै निदानु ॥

सूर्य का जाड़े से डरना असिद्ध आधार है और डर के
 कारण सूर्य पूस में अग्निकोण में (जाड़े से डरकर) अग्नि
 तापने के लिये चला जाता है, यह कारण ठीक नहीं ।

३—दो०—तुव चख^४ निरखि लजाय मनु, किय बनवास मृगीन ।

कुवलय^५ रहत मलीन दिन, रहे पैठि जल मीन ॥

नेत्रों से मृगियों, कुमुद-पुष्पों तथा मीनों का लजाना,
 असिद्ध आधार है, और इसी लज्जा के कारण मृगी बन में

१ छी । २ चावल । ३ अक्षत, चावल । ४ आखिरका । ५ नेत्र ।
 ६ श्वेत कमल ।

रहने लगीं, कुवलय (कुई के फूल) दिन में मलीन रहते हैं,
और मछलियाँ पानी में डूबी रहती हैं, ये बातें ठीक नहीं ।

४—दो०—मोर-मुकुट की चंद्रकनि, यों राजत नंदनंद ।

मनु सस्तिसेखर^१ को अकस,^२ किय सेखर^३ सत चंद ॥

५—दो०—भाल लाल बँदी ललन, आखत^४ रहे बिराजि ।

इंदु-कला^५ कुंज^६ में बसी, मनहुँ राहु-भय भाजि ॥

६—पद—भुजन भुजंग सरोज नैननि बदन, बिधु जीत्यो लरनि ।

बसे कुहरन^७ सलिल नभ, उपमा अपर दुरि^८ डरनि ॥

यहाँ 'राम की भुजाओं से हारकर सर्प बिलों में रहने लगे,
नेत्रों से हारकर कमल पानी में जा डूबे, और मुख से हारकर
चंद्रमा आकाश में जा बसा और अन्य उपमा भी डरकर छिप
रहीं' ऐसा कहा गया है ।

इन उपमानों का हार जाना वा डर जाना 'असिद्ध आधार'
है और उपमानों के वहाँ वहाँ रहने का जो कारण कल्पित किया
गया है वह ठीक नहीं है, इसीसे 'असिद्धास्पद हेतूप्रेक्षा' है ।

७—पद—उपमा हरि तन देखि लजाने ।

कोउ जल में कोउ बनहिं रहे दुरि कोऊ गगन उड़ाने ।

मुख देखत ससि गयो अँबर^९ को तड़ित^{१०} दसन छबि हेरो

मीन कमल कर चरन नयन डर जल में कियो बसेरो ।

भुजा देखि अहिराज लजाने बिबरनि पैठे धाय

कटि निरखत केहरि^{११} डरि मानो बन बिच रहयो दुराय

—(सूरसागर से)

१ महादेव । २ विरोधी (कामदेव) । ३ सिर पर धारण किया ।
अक्षत (चावल) । ४ चंद्रमा की कला । ५ मंगल । ६ बिल । ७ छिप गा
९ आकाश । १० बिजली । ११ सिंह ।

(३) फलोत्प्रेक्षा

अफल को फल मानने की उत्प्रेक्षा करना फलोत्प्रेक्षा है ।
इसके भी दो भेद हैं:—

१—सिद्धास्पद—जिसकी उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध हो
(संभव हो) ।

२—असिद्धास्पद—जिसकी उत्प्रेक्षा का आधार असिद्ध
हो (असंभव हो) ।

(सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)

१—दो०—मधुप निकारन के लिये, मानो रुके निहारि ।

दिनकर निज कर देत है, सतदल^१ दलनि उघारि ॥

सूर्योदय से कमलों का खिलना सिद्ध आधार है, परंतु कवि कल्पना करता है कि मानों रात भर बंद रहे हुए भौरों को बंद से छुड़ाने के लिये सूर्य कमलों को अपने करों (किरणों) से खोल देता है । सूर्य का कमलों को खिलाना इसलिये नहीं होता कि उसमें बंद रहे हुए भौरों बंद से छूट जावें, वरन् वह स्वयं सिद्ध विषय है । भौरों का बंद से छूटना यह अफल है, उसे ही फल कल्पित किया है; अतः फलोत्प्रेक्षा है ।

२—दो०—दुवन^२-सदन सबके बदन^३, सिव-सिव आठो जाम ।

निज बचिबे को जपत जनु, तुरकौ हर को नाम ।

—(भूषण)

‘शिव-शिव’ कहने से मनुष्य संकटों से बच सकता है, यह (हिंदूधर्मानुसार) सिद्ध आधार है । परंतु मुसलमान लोग इस फलप्राप्ति के लिये ‘शिव-शिव’ (शिवाजी का नाम) नहीं कहते थे, वरन् डर से बहुधा उनकी चर्चा किया करते थे, उस चर्चा में उनका नाम बार-बार लेना पड़ता था ।

३—सवैया

मौज भयो मिथिलापुर में चतुरंग चमू^१ सजि आई बरात है ।
 त्यों उछले तैं जवाहिर की लरैं दूटैं तुरंगन^२ के लहरात है ॥
 लक्ष्मनराम को यौ दसरथ लिये निजगोद न मोद अमात^३ है ।
 ताप मिटाइबे के हित मानो पपीहरा स्वाती के बुंद नहात है ॥

(असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)

१-दो०—तो पद समता को कमल, जल संवत इक पाँय ।

कमल स्वतः जल में रहता है, राधिका के चरणों की समतारूपी फल की प्राप्ति के लिये नहीं । जड़ कमल में समता की इच्छा का होना असिद्ध आधार है । इसलिये यहाँ असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा है ।

२-वीर—दमयंती कचभार प्रभा से पिच्छभार^४ हतप्रभा निहार ।

कार्तिकेय की सेवा करता है मयूर खलु संयम धार ॥

यहाँ मयूर में दमयंती के बालों की शोभा की समता प्राप्तिरूपी फल की इच्छा का होना असिद्ध आधार है (सर्वथा असंभव है) और यह कहना कि उसी फल की प्राप्ति के लिये मयूर कार्तिकेय की सेवा करता है अफल को फल कल्पित करना है, यही असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा है । इसमें खलु (निश्चय) उत्प्रेक्षा का वाचक है ।

३—सवैया

बारि में बूड़ि जपैं रबि को सरि^५ पंकज पायन को गहिबे को ।

बास उपास करैं बन में कटि^६ की सरि सिंहिनियों चहिबे को ॥

... ..

रोज अन्हात है छीरधि^७ में ससि तो मुख की समता लहिबे को ॥

१ सेना । २ घोड़ा । ३ अँटना । ४ मोर की पूँछ । ५ समता । ६ कसर ।

७ दूध का समुद्र, क्षीरसागर ।

ऊपर जितने उदाहरण दिए गए हैं उन सबों में उत्प्रेक्षा वाचक शब्द मनो, जनो, खलु, मनु, जनु, इव, ध्रुव इत्यादि मौजूद हैं। परंतु कहीं-कहीं बिना वाचक शब्द के भी उत्प्रेक्षा की जाती है। ऐसी उत्प्रेक्षा गम्योत्प्रेक्षा, गुप्तोत्प्रेक्षा वा ललितोत्प्रेक्षा कही जाती है।

सूचना—फलोत्प्रेक्षा और हेतूत्प्रेक्षा की पहचान करना विद्यार्थियों के लिये तनिक कठिन बात है। इसकी जाँच के लिये सर्व प्रथम 'क्रिया' को जाँचो। यदि क्रिया किसी हेतु से कही गई जान पड़े तो हेतूत्प्रेक्षा समझो और यदि उस क्रिया से किसी फल की इच्छा प्रगट होती हो तो फलोत्प्रेक्षा समझो। नीचे लिखे उदाहरणों पर विचार करो—

१—राधिकाजी के अधर और नासिका की छबि अनूप है, मानों बिंबाफल को देखकर लालच-वश आकर शुक बैठा हो (सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा)।

२—राधिकाजी के अधर और नासिका की छबि अनूप है, मानों बिंबाफल का स्वाद लेने के लिये शुक चोंच मारना चाहता है (सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)।

३—श्रम से पसीने की बूँदे लटों द्वारा मुख पर गिर रही हैं, मानों चंद्र को राहु का सताया हुआ समझकर नागवृंद उसपर अमृत बरसा रहे हैं (असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)।

४—मानों राहु-युद्ध-जनित पीड़ा दूर करने के लिये नाग-वृंद चंद्र पर अमृत बरसा रहे हैं (असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)।

(गम्योत्प्रेक्षा)

दो०—तोरि तीरतरु के सुमन, बर सुगंध के भौन ।
जमुना तो पूजन करत, वृंदावन को पौन ॥

१—चौपाई

इनहि देखि बिधि मन अजुरागा । पटतर^१-जोग बनावन लागा ॥
कीन्ह बहुत स्रम अइकि^२ न आए । तेहि इरषा बन आनि दुराए ॥

२—चौपाई

कह प्रभु गरल^३ बंधु ससि केरा^४ । अति प्रिय निज उर दोन्ह बसेरा ॥
इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिए ।

सूचना—जानना चाहिए कि सब प्रकार की उत्प्रेक्षाएँ गम्योत्प्रेक्षा हो सकती हैं ।

(सापन्हवोत्प्रेक्षा)

कभी-कभी अपन्हुति सहित उत्प्रेक्षा की जाती है, उसे 'सापन्हवोत्प्रेक्षा' कहते हैं । सब प्रकार की अपन्हुतियों से मिलाकर सब प्रकार की उत्प्रेक्षाओं के उदाहरण लिखें तो बड़ा विस्तार होगा, इसलिए केवल एक उदाहरण लिखते हैं—

१—दोहा—कमलन कहँ तेहि मित्र गुनि, मानहु हतिबे काज ।

प्रबिसहिं सर नहि न्हान हित, रबि-तापित गजराज ॥

यहाँ सूर्यताप से तापित गज का सरोवर में प्रवेश स्नानार्थ निषेध करके, तदनंतर सूर्य के मित्र जानकर कमलों का नाश करने के लिये उत्प्रेक्षा की गई है, अतः यह 'सापन्हव फलोत्प्रेक्षा' है । इसी प्रकार सब उत्प्रेक्षाएँ सापन्हव हो सकती हैं ।

(१६) अतिशयोक्ति

दो०—जहँ अत्यंत सराहिबो, अतिसयोक्ति सुकहंत ।

भेदक, संबंधा, चपल, अक्रम, रूप, अत्यंत ॥

विवरण—जहाँ किसी की अतिशय सराहना करना मंजूर हो उस उक्ति के कथन में अतिशयोक्ति होती है। इसके छः भेद हैं—

(१) भेदकातिशयोक्ति, (२) संबधातिशयोक्ति, (३) चपलातिशयोक्ति, (४) अक्रमातिशयोक्ति, (५) रूपकातिशयोक्ति और (६) अत्यन्तातिशयोक्ति ।

सूचना—इस अलंकार को अंगरेज़ी में हाइपरबोल (Hyperbole) और फारसी तथा उर्दू में मुबालगा कहते हैं ।

(१) भेदकातिशयोक्ति

दो०—औरै सब्दन की जहाँ, उत्कर्षता सुषेस ।

भेदक अतिसय उक्ति तहँ, मानत सुकषि-नरेस ॥

‘औरै-औरै’ शब्द इस अलंकार का वाचक है । जैसे—

१—दो०—औरै कछु बोलन चलनि, औरै कछु मुसुकान ।

औरै कछु सुख देत है, सकैं न बैन बखानि ॥

२—दो०—अनियारे^१ दीरघ दृगनि, किती न तरुनि समान^२ ।

वह चितवनि औरै कछु, जेहि बस होत सुजान ॥

(कभी-कभी ‘न्यारी रीति है’ ‘और ही बात है’ ‘अनोखी बात है’ इत्यादि, या इसी अर्थ के और भी शब्द इस अलंकार के वाचक होते हैं) । जैसे—

३—क०—जगत को जैतबार जीत्यो अवरंगजेब,

न्यारी रोति भूतल निहारी सिवराज की ।

—(भूषण)

४—दो०—अवलोकनि बोलनि हँसनि, डोलनि औरै-और ।

आवनि मृदु गावनि सबै, औरै वाके तीर^३ ॥

- ५-कविस्त—मंगलीक^१ बदन-बिलास 'लछिराम' औरै,
 कलंगो मरार^२ मोर भाल सजवारे में ।
 औरै आनि औरै बानि औरै चढ़ी सान भुज,
 औरै धनुवान राम-कर गजरारे^३ में ॥
- ६-दो०—औरै हंसनि बिलोकिबो, औरै बचन उदार ।
 'तुलसी' ग्रामबधून के, देखे रह न सँभार ॥

(२) संबंधातिशयोक्ति

दो०—जहँ अयोग्य है योग्य में, जहँ अयोग्य में योग्य ।

विवरण—संबंधातिशयाक्ति के दो भेद हैं—(१) योग्य में अयोग्यता प्रगट करके प्रस्तुत की अतिशय बड़ाई करना ।

(२) अयोग्य में किसी के संबंध से ऐसी योग्यता दिखलाना कि अतिशय बड़ाई प्रगट हो ।

(१) योग्य में अयोग्यता

- १-स०-सानभरे^१ भुज-दंड अखंड तिहूँ पुर मंडन मान भरै को ?
 आंगुरी वेअलकेस घनी सनी मौजन में अनुमान करै को ?
 यौ नखभा 'लछिराम' लखे नखतावलि के परमान^२ धरै को ?
 श्रीरघुनाथ के हाथन सामुहे कल्पलता सनमान करै को ?
 कल्पलता सम्मान करने योग्य वस्तु है, पर अयोग्य ठहराकर उसके संबंध से रामजी के हाथों की अतिशय उदारता प्रगट की गई है ।

२—चौपाई

अति सुंदर लखि मुख सिय तेरो । आदर हम न करत ससि कैरो ।

१ मंगलकारी । २ आनवान । ३ हाथी की सूँड़ । ४ शानदार ।
 ५ समान ।

यहाँ शशि सम्मान योग्य होने पर भी मुख की अतिशय सुन्दरता वर्णन करने के हेतु अनादर-पात्र ठहराया गया है।

३—सवैया

कानन कुंज प्रमोद बितान^१ भरे फल फूल सुगंध बिधानै ॥
बावली के अरबिदन पै मकरंद मल्लिद^२ सने सुभ गानै ॥
त्यौ 'लछिराम' तरंगन तें सरजू के कढ़े सुर साजि बिमानै ।
औधपुरी महिमा यौ चितै अमरावति कां हम क्यों सनमानै ॥

(२) अयोग्य में योग्यता

१—चौपाई—फबि फहरें अति उच्च निसाना^३ ।

जिन महँ अटकत बिबुध^४ बिमाना ॥

बिबुध-विमान अवश्य ही बहुत ऊँचे पर होंगे। उनसे संबंध प्रगट करने से 'ध्वजा' में यह योग्यता हो गई कि उसकी ऊँचाई की अतिशयोक्ति हो गई। बिबुध-विमान के संबंध से अत्यन्त ऊँचाई लक्षित हुई।

२—सवैया

बासन^५ बाँस कठौती हुती औ फटी दुपटी जेहि बीतत सीवत^६ ।

'गोकुल' छानी सरी^७ गरी भीति^८, रहे जित ब्रूहन के गन जीवत ॥

धाम सुद मै लह्यो हरि सों जेहि देखि देखि दिगंपति भीवत^९ ।

बैठि जितै गन चातक के घन तें बन^{१०} चोंच चलाय कै पीवत ॥

इसमें चातक और घन के संबंध द्वारा यह प्रगट किया है कि सुदामा का मंदिर बहुत ऊँचा था। कोई घर इतना ऊँचा नहीं होता, परंतु यहाँ घन चातक के संबंध से अयोग्य घर में भी अतिशय ऊँचाई की योग्यता कथन की गई है।

१ चंदवा । २ भौरा । ३ ध्वजा । ४ देवता । ५ बर्तन । ६ सीते ।

७ सड़ी गली । ८ दीवार । ९ डरता था । १० जल ।

सूचना—‘संबंधातिशयोक्ति’ का कविता में बहुत अधिक काम पड़ता है। इस अलंकार के बहुत प्रचलित उदाहरण यों कहे जाते हैं कि इसका वर्णन शेष, शारदा भी नहीं कर सकते, वेद भी नेति-नेति कहता है। यथा—

४—चौपाई

जोहि बर बाजि^१ राम असवारा । तेहि सारदौ न बरनै पारा^२ ।

५—चवपैया

सारद श्रुति^३ सेवा ऋषय असेषा^४ जा कहैं कोउ नहि जाना ॥

६—दां०—जो सुख भा सिय-मातु-मन, देखि राम बर बेष ।

सो न सकहि कहि कल्प सत, सहस^५ सारदा सेष ।

७—हरिगीतिका

कोटिहु बदन^६ नहि बनै बरनत जगजननि शोभा महा ।

सकुचहि कहत श्रुति सेष सारद मंदमति ‘तुलसी’ कहा ।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि शेष, शारदा, श्रुति इत्यादि को कथन के अयोग्य ठहराकर उनके संबंध से प्रस्तुत वस्तु में अतिशयोक्ति की स्थापना की जाती है।

(३) चपलातिशयोक्ति

दो०—कारन के लखतहि सुनत, कारज आसुहिं^७ होय ।

चपला अतिसय उक्ति यह, अलंकार है सोय ॥

१—सवैया

पंचबटी के बिहंग उमंग में बोलत बानी सुधारस घूँटे ।

त्यों ‘लछिराम’ अदेव^८ ललाट तें आयु की रेख के अंक^९ वे छूटे ॥

आसुरी हाथन तें पल एक में भाग सांहाग के भाजन^{१०} फूटे ।

आगम श्रीरघुनाथ सुने मुनि-मंडली के मन-बंधन छूटे ॥

१ बोड़ा । २ वर्णन नहीं कर सकती । ३ वेद । ४ समस्त । ५ हजार ।

६ मुख । ७ शीघ्र । ८ असुर । ९ चिन्ह । १० बर्तन ।

२—चौपाई

तब सिव तीसर नैन उधारा । चितवत काम भयो जरि छारा ॥

३—चौपाई

बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा । सुनत नसाहि काम मद दंभा ॥

४—दो०—आयो-आयो सुनत ही, सिव सरजा तुव नाचै ।

बैरि-नारि-दूग-जलन सौं, बूडि जात अरि-गावै ॥

५—क०—'भूषन' भनत साहि तनै सिवराज एते,

मान तव धाक आगे दिसा उबलति है ।

तेरी चमू^१ चलिबे की चरचा चले तैं चक्र,-

बर्तिन की चतुरंग चमू बिचलति है ॥

(४) अक्रमातिशयोक्ति

दो०—कारन अरु कारज जहाँ, होत एक ही संग ।

अक्रमातिसयउक्ति सो, बरनत सुकवि सुदंग ॥

१—चौपाई

संधान्यौ प्रभु बिसिष^१ कराला । उठी उदधि-उरअंतर उवाला ॥

२—सवैया

पायन को जमुना उमहीं जल बाढ़ो जबै बसुदेव गरे लौं ।

हूंकत ही जदुनंदन के जमुनाजी बहीं तरवा के तरे लौं ।

३—दो०—बानासन^३ तैं रावरे, बान बिषम रघुनाथ ।

दससिर-सिर धर तैं छुटे, दोऊ एकहि साथ ॥

४—दो०—उठयो संग गजकर^४ कमल चक्र चक्रधर^५ हाथ ।

कर तैं चक्र सु नक्र^६ सिर धर तैं बिलग्यो साथ ॥

१ सेना । २ बाण । ३ धनुष । ४ हाथी की सूँड़ । ५ विष्णु ।

६ मगर, ग्राह ।

५—क०—उद्धत अपार तुव दुंदुभी धुकार साथ,
 लंघै पारावार^१ बाल-वृंद^२ रिपुगन के ।
 तेरे चतुरंग के तुरंगन के रंगे रज,^३
 साथ ही उड़ात रजपुंज हैं परन^४ के ॥
 दल्लिन के नाथ सिवराज तेरे हाथ चढ़ें,
 धनुष के साथ गढ़-कोट दुरजन^५ के ।
 'भूषन' असीसैं तोहि करत कसीसैं^६ पुनि,
 बानन के साथ छूटैं प्रान तुरकन के ॥

सूचना—संग ही, साथ ही, एकै साथ, साथ अथवा इसी अर्थ का कोई शब्द इस अलंकार का वाचक जान पड़ता है ।

(५) रूपकातिशयोक्ति

दो०—जहँ केवल उपमान कहि, प्रगट करें उपमेय ।
 रूपकातिशयउक्ति तहँ, बरनत सुकवि अजेय ॥

विवरण—जहाँ केवल उपमान कह कर उपमेयों का अर्थ समझा जाता है, वहाँ यह अलंकार होता है । जैसे:—

१—दो०—कनकलता पर चंद्रमा धरे धनुष द्वै बान ।

यहाँ कनकलता=कोई स्त्री । चंद्रमा=मुख । धनुष=भौंहें । बान=कटाक्ष ।

व्याह के समय रामचंद्रजी सीताजी के सिर में सिंदूर देते हैं ।

२—चौपाई

राम सीय-सिर सेंदुर देहीं । उपमा कहि न जात कवि केहीं ॥
 अरुन-पराग जलज भरि नोके । ससिहि भूष अहि लोभ अमी के ॥

यहाँ अरुणपराग=सँदुर । जलज=शीख वा कमल ।
ससि=सीताजी का मुख । अहि=रामजी का हाथ ।

सूचना—सूरदास ने इस अलंकार में अनेक पद कहे हैं । उनमें से एक यह है । इसमें राधिकाजी के समस्त अंगों का वर्णन है ।

३-पद—(राग सारंग)

अद्भुत एक अनूपम बाग ।

युगल कमल पर गज क्रीडत है ता पर सिंह करत अनुराग ॥
हरि पर सरवर सर पर गिरिवर गिरि पर फूले कंज पराग ।
रुचिर कपोत बसै ता ऊपर ता ऊपर अमृत-फल लाग ।
फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव ता पर सुक पिक मृगमद काग ।
खंजन धनुष चंद्रमा ऊपर ता ऊपर इक मनिधर नाग ।

युगल कमल=दोनों चरण । गज=मंद चाल । सिंह=
कटि । सरवर=नाभि । गिरिवर=कुच । कज=मुख । कपोत
=कंठ । अमृतफल=चिबुक । पुहुप=गोदना बिंदु । पल्लव=
होंठ । सुक=नासिका । पिक=बानी । मृगमद=कस्तूरीबिंदु ।
काग=काकपक्ष, पाटी । खंजन=नेत्र । धनुष=भौंहें । चंद्रमा
=ललाट । मणिधरनाग=सीस-फूल सहित गुथी हुई वेणी ।

सूचना—इसी प्रकार और भी समझना चाहिए ।

४-कवित्त—‘भूषण’ भनत देस-देस वैरि-नारिन में,

होत अचरज घर-घर दुःख द'द के ।

कनकलतानि इंदु, इंदु मांहि अरबिद,

भरै अरबिदन तैं बुंद मकरंद के ॥

यहाँ कनकलता=स्त्रियाँ । इंदु=मुख । अरबिद=नेत्र ।
मकरंद-बुंद=आँसू ।

रामायण में तुलसीदासजी ने रामचंद्रजी के मुख से
सीताजी के लिये कहलाया है :—

५—चोपाई

खंजन सुक कपोत मृग मीना । मधुप-निकर कोकिला प्रवीना ॥
 कुंद-कली दाडिम दामिनी । सरद-कमल ससि अहि-भामिनी ।
 वरुण-पास मनोज-धनु हंसा । गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ॥
 श्रीफल कमल कदलि हरखाही । नेकु न संक सकुच मन माहीं ॥
 सुनु जानकी तोहि बिनु आजू । हरषे सकल पाय जनु राजू ॥
 इसमें भी उपमानों द्वारा जानकीजी के अंगों को (उपमेय को) सूचित किया है । जैसे:—

खंजन=नेत्र । सुक=नाक । कपोत=प्रीवा । मृग,मीन=नेत्र । मधुप=बाल । कोकिला=वाणी । कुंद-कली=दंत । दाडिम=दंत । दामिनी=मुसकान । सरद-कमल,ससि=मुग्ध । अहिभामिनी=वेणी । वरुण-पास=बाल (छूटे हुए) । मनोज-धनु=भौंहें । गज=चाल । केहरि=कटि । श्रीफल=कुच । कमल=हाथ । कदलि=जंघा ।

कहने का तात्पर्य यह है कि जब तुम मेरे संग थीं, तब ये सब उपमान तुम्हें देख देखकर लज्जित रहते थे । अब तुम्हारा हरण हो जाने से ये सब प्रसन्न हुए हैं ।

सूचना—इस जगह हम सूरदास-कृत दो-तीन पद ऐसे लिखे देते हैं जिनको समझ लेने से इस अलंकार की सामग्री अच्छी तरह से समझ में आ जायगी । पद दानलीला के समय के हैं ।

६—पद—लेहों दान^१ इनन्ह को तोसों ।

मत्तगर्भद^२ हंस । तुम पै हैं कहा दुरावति मो सों ॥ १ ॥

केहरि^३ कनक-कलस^४ अमृत के कैसे दुर दुरावति ।

बिद्रुम^५ अदैं ब्रज के किनका नाहित^६ हमैं दिखावति ॥ २ ॥

१ कर । २ मतवाला हाथी (चाल) । ३ गति के लिए । ४ सिंह, (कमर) । ५ सोने का घड़ा (कुच) । ६ सूँगा (ओठ) । ७ नहीं तो ।

खग कपोत^१ कोकिला^२ कीर^३ खंजन^४ चंचल मृग^५ जानति ।
मनि कंचन के चक्र^६ जरे हैं एते पर नहि मानति ॥ ३ ॥
सायक^७ वाँप^८ तुरे^९ बनि जनिजति^{१०} होनितप्रति श्रावहुजाहु ।
दान दिए बिनु जान न पैहौ दिये ते होय निबाहु ॥ ४ ॥
यह बनिजति^{११} बृषभानु-सुता तुम हम सो बैर बढ़ावत ।
सुनहु 'सूर' एतै पें कहति है हम धौं कहा लदावत ॥ ५ ॥
७—पद—यह सुनि चकित भई ब्रजयाला ।

तरुनी सबै परसपर बूझैं कहा कहत गोपाला ॥ १ ॥
कहँ तुरग कहँ गज केहरि कहँ हंस सरोवर सुनिए ।
कचन-कलस गढ़ाए कब हम देखे धौं यह गुनिए ॥ २ ॥
कोकिल कीर कपोत बनहि में मृग खंजन एक सग ।
तिनके दान लेत हैं हम पै देखहु इनके ढंग ॥ ३ ॥
चदन और सुगंध बतावत कहाँ हमारे पास ।
'सूर' स्याम जी ऐसे दानी देखि लेहु हम पास ॥ ४ ॥

८—पद—भूलि रहे तुम कहा कन्हारै ।
तिनको नाम लेत तुम आगे जे सपनेहु दृष्टि न आई ॥ १ ॥
हयबर^{१२} गयबर^{१३} सिंद हंस खग मृग कहँ हैं हम लीन्हें ।
सायक चाप तुरी^{१४} सुनि चकृत चमर न देखे चीन्हें ॥ २ ॥
चदन और सुगंध कहत हौ कंचन-कलस बतावहु ।
'सूर' स्याम ये सब जौ हैं तबहि दान तुम पावहु ॥ ३ ॥
९—पद—प्रगट करौ अब तुमहि बताऊँ ।

चिकुर^{१५} चौर, घूँघट हयबर बर, भू सारंग^{१६} दिखाऊँ ॥ १ ॥

१ कछुतर (गर्दन) । २ बाणी के लिये । ३ सुग्गा (नाक) ।
४, ५ आँख के लिये । ६ तलवे । ७ बाण (कटाक्ष) । ८ धनुष (भौंह) ।
९ घोड़ा (घूँघट) । १० जानी जाती हैं । ११ वाणिज्य करती हैं ।
१२ घोड़ा । १३ हाथी । १४ घोड़ा । १५ केश । १६ धनुष ।

बान कटाक्ष, नैन खंजन मृग, नासा सुक उपमाऊँ ।
 तरिवज्र चक्र, अधर बिद्रुम बर, दसन बज्र रुन ठाऊँ ॥ २ ॥
 श्रीव कपोत, कोकिला बानी, कुच घट-कनक समाऊँ ।
 यौवन-मद रस-अमृत भरे हैं रूप रंग भलकाऊँ ॥ ३ ॥
 अंग सुगंध बास पट अबर गनि-गनि तुमहि सुनाऊँ ।
 कटि केहरि, गगंद^१ गति सोभा हंस सहित इक ठाऊँ ॥ ४ ॥
 फेर किए कैसे निबहोगी घरहि गए कहं पाऊँ ।
 सुनहु सूर यह बनिज तुन्हारे फिरि फिरि तुमहि सुनाऊँ ॥ ५ ॥
 सूचना—इसको फारसी में 'सनअत तअज्जब' कह सकते हैं ।

(सापन्हवातिशयोक्ति)

जहाँ अपन्हुति सहित रूपकातिशयोक्ति हो । जैसे:—

१—दो०—अहि ससि-मंडल पै लसै, जिय पताल जिन जानु
 यहाँ मुखरूपी चंद्रमा पर वेणीरूपी सर्प का वर्णन है ।
 उसे पाताल में मत जानो कहकर अपन्हुति प्रगट की गई है ।

(६) अत्यंततिशयोक्ति

दो०—जहाँ हेतु तें प्रथम ही, प्रगट होत है काज ।

अत्यंततिसयोक्ति तेहि, कहैं सकल कबिराज ॥

१—दोहा—हनुमान की पूँछ में, लगन न पाई आग ।
 लंका सिगरी जरि गई, गए निसाचर भाग ॥

२—दो०—राजन् ! राउर नाम जस, सब अभिमतदातार ।
 फल-अनुगामी^१ महिपमनि, मन-अभिलाष तुम्हार ॥

इसमें पहले 'फल' तदनंतर मनोभिलाष वर्णन किया गया है ।

३—कवित्त—मंगन मनोरथ के प्रथमहि दाता तोहि,
 कामधेनु । कामतरु सो गनाइयतु है ।

यातैं तेरे गुन सब गाय को सकत,
कबि बुद्धि अनुसार कछु तऊ माइयतु है ॥
‘भूषन’ भनत साहितने सिधराज निज,
बखत^१ बढ़ाय करि तोहि ध्याइयतु है ।
दीनता को डारि औ अधीनता बिडारि,
दीह दारिद को मारि तेरे द्वार आइयतु है ॥

४—दो०—कबि-तरुवर सिख-सुजस-रस, सींचे अचरज-मूल ।
सुफल होत है प्रथम ही, पीछे प्रगटत फूल ॥

५—दो०—ग्राह-प्रहीत गयंद-मुख, कढ़न न पाई ‘आहि’ ।
पहले ही हरि आय कै, निज कर उधरयो ताहि ॥

६—कवित्त—धूम-धाम ऐसी रामचंद्र-बीरता की मची,
‘लछिराम’ रावन सरोष सरकस^२ तैं ।
बैरी मिले गरद मरोरत कमान-गोसे,^३
पीछे कढ़े बान तेजमान तरकस^४ तैं ॥
७—चौपाई

कह कपि मुनि गुरुदळिना लेहू । पीछे हमहि मंत्र तुम देहू ॥
८—दोहा—पद पखारि जलपान करि, आपु सहित परिवार ।
पितर पार करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयउ लै पार ॥

(१७) तुल्ययोगिता

दोहा—क्रिया और गुण करि जहाँ, धर्म-एकता होय ॥

चतुर चतुर बिधि कहत हैं, तुल्ययोगिता सोय ॥

विवरण—क्रिया द्वारा अथवा गुण द्वारा जहाँ कई-एक
व्यक्तियों का एक ही धर्म कथन किया जाय, वह तुल्ययोगिता
है । यह चार प्रकार की होती है—

(१) पहली

बन्धन को जहँ धर्म एक, प्रथम कहत कबि लोग ।

विवरण—जहाँ अनेक उपमेयों का एक धर्म कथन किया जाय, वहाँ प्रथम तुल्ययोगिता जानो । यथाः—

१—चौपाई

गुरुरघुपति सब मुनिमन माहीं । मुदित भए पुनि-पुनि पुलकाहीं ।

२—सवैया

श्रीदसरथ सों माँगिबे हेत गुनी निगुनी दोउ द्वार पै ठाढ़े ।

३—चौपाई

सब कर ससय अरु अज्ञानू । मद महीपन कर अभिमानू ॥

भृगुपति केरि गबन-गढ़वाई । सुर मुनिवरन केरि कदारा ३ ॥

सिय कर सोच जनक-परितापा । शानिन कर दारुन दुख दापा २ ॥

सभु-चाप बड़ दोहित-पाई । चढ़े जाय सब संग वनाई ॥

४ दो०—मुख-ससि निरखि चकोर अरु, तन-पानि पलखि मीन ।

पद-पंकज देखत भँवर, होत नयन-रस लीन ॥

सूचना—इन उदाहरणों में केवल वर्णों की धर्मकता कही गई है ।

(२) दूसरी

दो०—धर्म अबन्धन को जहाँ, एकै विधि ठहराय ।

तुल्ययोगिता दूसरी, ताहि कहैं कबिराय ॥

विवरण—जहाँ अनेक उपमानों का एक ही धर्म कहा जाय । जैसे—

१—दो०—लखि तेरी सुकुमारता, ए री या जग माहि ।

कमल गुलाब कठोर-से, केहि का भासन नाहि ॥

२—दो०—एक बेर जिन-जिन लखे, तेरे लोचन चाहि १ ।

नोके लागत मीन मृग, खजन कज न ताहि ॥

३—दो०—सिव सरजा भारी भुजन, भुव-भरु^२ धरयो सभाग ।

‘भूषन’ अब निहंचित हैं, सेसनाग दिगनाग^३ ॥

४—सवैया

चंदन चंद्र पियूषम यूषरु^४ सुद्धयोनिधि^५ छोर सों पागे ।

पूना की राति में कैरव के बन सेत सरोरुहई छबि जागे ॥

पारद^६ डार तुषार-पहार कपूर के भार रु दूध के भागे^७ ।

मैले लगे सब ही के बिलास सु राम महीपति के जस आगे ॥

सूचना—उदाहरणों में अर्घ्यों (उपमानों) की धर्मरुता कही गई है ।

(३) तीसरी

दो०—सम करिए उत्कृष्ट गुन, बहु के इक महँ लाय ।

तुल्ययोगिता तीसरी, ताहि कहैं कबिराय ॥

१—दो०—जाय जोहारे^८ कौन को, कहा कहैं है काम ।

मित्र मातु पितु बहु गुरु, साहेब मेरे राम ॥

२—दो०—तुम बिधि, बुध, बिधु^९ बिबुधपति^{१०} बिधुधर^{११} बुद्धिनिधानं ।

तुमहि भूप हो कलातर, गुननिधि चर तुसुजान ॥

३—दो०—कामधेनु अरु कामतर, चितामनि मन मानि ।

अरु चौथो तेरो सुजस, ए मनसा^{१२} के दानि ॥

सूचना—(तीसरी तुल्ययोगिता और दूसरे उल्लेख का भेद)—

तीसरी तुल्ययोगिता में एक को बहुतों की समता दी जाती है । दूसरे उल्लेख में एक को बहुत भाँति से वर्णन किया जाता है । तुल्ययोगिता में बहुतों के उत्कृष्ट गुणों की एक में समता की जाती है ।

१ इच्छा करके । २ बोरु । ३ दिग्गज । ४ किरण । ५ क्षीर समुद्र ।

६ पारा । ७ फेन । ८ पुकार करवा । ९ चद्रमा । १० इंद्र । ११ महादेव ।

१२ मनोवांछित ।

उल्लेख में बहुतां के गुण पृथक-पृथक वर्णन करने का तात्पर्य होता है। नीचे लिखे उदाहरण समझो।

तुल्ययोगिता—यह राजा इंद्र, करण और युधिष्ठिर के समान है।

उल्लेख—यह राजा तेज में इंद्र, दान में करण और धर्म में युधिष्ठिर है।

(भेद)—तुल्ययोगिता में समान-कथन का भाव रहता है, उल्लेख में केवल गुण-वर्णन का भाव रहता है।

(४) चौथी

दो०—हितु में अनहितु में जहाँ, करिए एकै धर्म ।

१—दा०—जो सींचै सर्पिष^१सिता^२ अरु जो हनै कुठाल^३।

कटु लागै तिन दुहुन को, यहै नौब की चाल ॥

२—दो०—कोऊ काटो क्रोध करि, वा सींचो कहि नेह ।

बेधत वृक्ष बबूल को, तऊ दुहुन की देह ॥

३—दा०—जो सींचत काटत जु है, जो पेरत जन कोइ ।

जो रक्षक तिन सबन को, ऊख मीठिए होइ ॥

४—दो०—बंदौ संत समान-चित, हित अनहित नहिं कांउ ।

अंजलि-गत सुभ सुमन जिमि, समसुगंध कर दाउ ॥

५—सवैया

‘दास’ जु पापी सुरापी^१ तपी अरु जापी हितू-अहितू सम भाई ।

गंग तिहारी तरंगन सों सब पावैं पुरदर^२ की प्रभुताई ।

६—सवैया

ओरघुनाथपुरी की प्रभा सरयू के तरंग ते संग गली में ।

सिद्ध सुरापी असंत औ संत बिमान चढ़े लसैं ब्योमथली में ॥

(१८) दीपक

दो०—बन्य अबन्यन को जहाँ, एकै धर्म कहाय ।

दीपक तासों कहत हैं, सिगरे कबि-समुदाय ॥

चित्रण—जहाँ उपमेय और उपमान दोनों का एक धर्म कथन किया जाय, वहाँ दीपक होता है । जैसे:—

१—दोहा—सोहत भूपति दान सों, फल-फूलन आराम^१।

२—सवैया

‘गोकुल’ दोऊ सराहिबे जोग जगे जग में जस मोद महा तैं ।
रावरे नैन-कटाच्छन तैं बलि खंजन राजत चंचलता तैं ॥

३—सवैया

थाह न पैप गंभीर बड़ो है सदा हो रहै परिपूरन पानी ।
राकै^२ बिलोकि कै ‘श्रीयुत दासजू’ होत उमाहिल^३ मैं अनुमानी ॥
आदि वही मरजाद लिए रहै हैं जिनकी महिमा जग जानी ।
काहू के केहू घटाए घटै नहि सागर औ गुण-आगर^४ प्राणी ॥

पहले उदाहरण में ‘भूपति’ वर्ण्य है ‘आराम’ अवर्ण्य है, दोनों का धर्म ‘साहत’ एक ही कहा गया है, परंतु सोहने के कारण भिन्न-भिन्न कहे गए हैं । इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में नैन वर्ण्य, खंजन अवर्ण्य है, दोनों का धर्म ‘राजत’ एक ही कहा गया है, परंतु राजने का कारण कटाक्ष और चंचलता भिन्न-भिन्न हैं । तीसरे उदाहरण में ‘गुण-आगर प्राणी’ वर्ण्य है और ‘सागर’ अवर्ण्य । ‘घटाए घटै नहीं’ धर्म एक है । श्लेष से दोनों के कारण की भी एकता दिखलाई है, पर वास्तव में कारण यहाँ भी भिन्न-भिन्न हैं ।

१ बागीचा । २ पूर्णिमा की वजेली । ३ उत्साहित होता है, बढ़ता है ।
४ गुणी ।

४—चौपई

संग ते जती कुमंत्र ते राजा । मान ते ज्ञान पान^१ ते लाजा ॥

प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी । नासहि बेगि नीति अस सुनी ॥

इसमें 'राजा' वर्य है और शेष सब अवर्य हैं । कारण भिन्न-भिन्न हैं । 'नासहि' सबका धर्म एक कहा गया है । (इसी प्रकार और भी समझना) ।

५—दो०—सुरसरिता सों सिंधु, अरु चंद्रिकाहि सों चंद ।

कीरति सों जसवंत नृप, महिमा धरत अमंद ॥

सूचना—(१) तुल्ययोगिता में केवल उपमेयों का वा केवल उपमानों का एक धर्म कथन किया जाता है । (२) दीपक में उपमेय और उपमान के धर्म का एक ही साथ कथन किया जाता है ।

(११) आवृत्ति-दीपक

दो०—क्रियापदन को होत जहँ, आवर्तन को जोग ।

दीपक आवृत्ति कहत हैं, ताहि सकल कबिलोग ॥

दीपक आवृत्ति तीन बिधि, पदावृत्ति एक जानु ।

अर्थावृत्ति दूजो तृतिय, पद-अर्थावृत्ति मानु ॥

(१) पदावृत्ति

दो०—अर्थ दोय पद एक की, आवृत्ति करिए जौन ।

पदावृत्ति दीपक तहाँ, कहिए मति के भौन ॥

१—दो०—बहै रुधिर सरिता, बहैं^१ किरवानैं^२ कढ़ि कोस^३ ।

बीरन बरहिं^४ बरांगना, बरहिं^५ सुभट रन-रोस ॥

^१ मदपान । ^२ चलती हैं । ^३ तलवारें । ^४ म्यान । ^५ वरण करती है ।
६ जकते हैं ।

२—दो०—नंद-सुवन ब्यारू^१ करत, बाढ़ी प्रीति अथोर ।
परसति^२ सुंदरिसरस तिय, परसति दूग की कोर^३ ॥

३—सवैया

'रघुनाथ' जहाँ तक गोधन हैं, सँग ते खरिबो परित्यागत हैं ।
सुर^४ साँवरे सारंग^५ रागत हैं, वन के सब सारंग^६ रागत हैं^७ ॥

(२) अर्थावृत्ति

दो०—सब्दपृथक् एकै अरथ, जहाँ सु आवृत लेत ।
अर्थावृत्ति दीपक तहाँ, कहैं सुकवि करि हेत ॥

१—चौपाई

पय-पयोधि^८ तजि अवध बिहाई^९ । जेहँ सिय राम लखन रहे आई ॥

२—दो०—दौरहि सगर मत्त-गज, आवहि हय^{१०}-समुदाय ।
नटहि^{११} रग महुँ बहु नटो, नाचहि नट हरखाय ॥

३—दोहा—दिस-दिस बिकसे कुँज-वन, फूले रुचिररसाल^{१२} ॥

४—सवैया

छिन होत हरीरी^{१३} मही को लखै निगलै छिनही धन-जोति-छटा ।
अवलोकति इंद्रबधून^{१४} की पाँति बिलोकति है छिन कारीघटा ॥
तकि डार कर्दवन की तरसै दरसै तउ नाचत मोर अटा ।
अध ऊरध आवत जात भयां चित नागरि को नट कैसा बटा^{१५} ॥

५—चौपाई—कूजहि, कोकिल गूँजहि भूंगा ।

६—सवैया

काहे ते आए नहीं 'रघुनाथ' ये आईकै औधि के बासर पूजे^{१६} ।

१ रात का भोजन । २ परोसती है । ३ किनारा । ४ स्वर । ५ वंशी ।
६ बजाते हैं । ७ मृग । ८ अनुरक्त होते हैं । ९ क्षीरसागर । १० छंडकर ।
११ घोड़ा । १२ नाचते हैं । १३ आम । १४ हरी-हरी । १५ एक बरसाती-
छाल कीड़ा । १६ गोल बट्टा । १७ पूर्ण हो गए ।

देखु मधुव्रत गूँज चहुँ दिसि कोयल बोली कपोतहु कूजे^१ ॥

(३) पदार्थावृत्ति

दो०—पद अरु अर्थ दुहून की, आवृत्ति फिरि-फिरि होय।
कहत पदार्थावृत्ति तेहिं, दीपक सब कबि-लोय^२ ॥

१—दोहा—गरजत हैं रन रामजू, गरजत है दससीस ।

धावत रिस भरि रजनिचर, चहुँ दिसि धावत कीस ॥

२—दो०—बोलत चातक चाय सों, बोलत मत्त मयूर ।

३—दो०—तोरघौ नृपगन को गरब, तोरघो हर-कोदंड^३ ।

राम जानकी जीव को, तोरघौ दुःख अखंड ॥

४—कवित्त—'ग्वाल कबि' आन भरे सान भरे स्यान^४ भरे,

कछू अलस्यान भरे भरे मान माल के ।

लाज भरे लाग^५ भरे लाभ भरे लोभ भरे,

लाली भरे लाड़ भरे लोचन हैं लाल के ॥

५—दो०—भलो भलाई पै लहै, लहै निचाई नीच ।

सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच^६ ॥

सूचना—स्मरण रखना चाहिए कि लाटानुप्रास तथा यमक नामक शब्दालंकारों में भी शब्दों का आवर्तन होता है। मेद यह है कि उन शब्दालंकारों में सब प्रकार के शब्दों का आवर्तन होता है और इस अलंकार में केवल क्रियापद का आवर्तन है। वे आवर्तन केवल 'कान' को सुखकर हैं। यह अर्थालंकार है और इसके क्रियापदों का आवर्तन अर्थ में विलक्षणता लाता है।

(२०) कारक-दीपक

दो०—क्रम तें क्रिया अनेक को, कर्ता एकै होय ।

कारक दीपक ताहि को, बरनत हैं सब कोय ॥

१ बोलें । २ लोग । ३ शिव का धनुष । ४ चतुराई । ५ लाग-बाँट । ६ मृत्यु ।

चिवरण—क्रियाएँ कई-एक हों, पर उनका कर्ता एक हो, वह कारक-दीपक अलंकार कहलाता है ।

१—चौ०—लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े ।

२—दो०—दरस दियो तो मित्रवर, आश्रो बैठो पास ।

कुसल कहौ निज भवन की, बाढ़ै हिण हुलास ॥

३—दो०—ऋषिहि देखि हरषै हियो, राम देखि कुम्हलाय ।

धनुष देखि डरपै महा, चिता चित्त डालाय ॥

सूचना—स्मरण रखना होगा कि 'समुच्चय' अलंकार में भी कई क्रियाओं का कर्ता एक होता है, पर दोनों में भेद यह है कि 'कारक-दीपक' की क्रियाओं से प्रगट किए कार्यों का क्रम से (पहले एक, फिर दूसरा, फिर तीसरा इत्यादि) होना समझा जाता है, और 'समुच्चय' वाली क्रियाओं से प्रगट किए हुए कार्य एक तो केवल भाववाचक होते हैं दूसरे उनका होना एक साथ पाया जाता है अर्थात् उनमें क्रम नहीं प्रगट होता । इसीलिए इस अलंकार की परिभाषा में 'क्रम से' पद दिया गया है ।

(२१) मालादीपक

दो०—दीपक अरु एकावली, मिलै जहाँ ए दोय ।

बरनत कबि कोबिद सकल, मालादीपक सोय ॥

१—सो०—जग की रुचि^१ ब्रजबास, ब्रज की रुचि ब्रजचंदहार ।

हार-रुचि बंसी 'दास', बंसी-रुचि मन बाँधियो ॥

२—दो०—रस सों काव्यरु काव्य सों, सोहत बचन महान ।

बानी ही सों रसिक-जन, तिन सों सभा सुजान ॥

३—चौपाई

भरत-सरिस को राम सनेही । जग जपु राम राम जपु जेही ॥

४—क०—मन कवि 'भूषण' को सिव की भगति जीत्यो,
 सिव की भगति जीत्यो साधु-जन-सेवा ने ।
 साधुजन जीते या कठिन कलिकाल,
 कलिकाल महावीर महाराज महिमेवाने^१ ॥
 जगत में जीते महावीर महाराजन तैं,
 महाराज बावनहू पातसाह लेवा ने ।
 पातसाह बावनौ दिली के पातसाहि,
 दिलीपति पातसाहै जीन्यो हिंदूपति संवा ने ॥

(२२) देहरीदीपक

दो०—परै एक पद बीच में, दुहुँ दिसि लागै सोइ ।
 सो है दीपक देहरी, जानत हैं सब कोइ ।

१—सवैया

है नरसिंह महामनुजाद^२ हन्यो प्रहलाद को संकट भारी ।
 'दास' विभीषनै लंक दई निज रकें सुदामा को संपत भारी ॥
 द्रौपदी चीर बढ़ायो जहान में पांडव के जस की उजियारी ।
 गत्रिन के खनि गव बढ़ावत दोनन के दुख श्रीगिरधारी ॥
 यहाँ रेखांकित शब्द दोनों आर लगते हैं । शब्द का ऐसा
 ही प्रयोग देहरीदीपक है ।

२—दो०—लहि जसवत नरेस पद, कविन निहाल सु 'कोन' ।
 अभय प्रजा मरुदेस अरु, समथ जु अखिल अरीन ॥
 यहाँ 'कोन' शब्द दोहे के उन्नयन में भी लगता है ।

(२३) प्रतिवस्तूपमा

दो०—जुग वाक्यन को होत जह, एकै भर्म बखान ।
 भूषण प्रतिवस्तूपमा, ताहि कहै मतिमान ॥

^१ महिमावान । ^२ राक्षस, मनुष्य को खानेवाला ।

विशरण—इस अलंकार में तीन बातें जरूरी हैं—(१) उपमेय और उपमान-स्वरूप दो वाक्य, (२) दोनों वाक्यों का एक ही धर्म, (३) उस धर्म का समानार्थवाची शब्दों द्वारा अलग-अलग कथन। जैसे—

१—दो०—सोहत भानु प्रताप सों, लसत सूर^१ धनु-बान ।

(क)—लसत सूर धनु-बान = उपमेय-वाक्य है।

सोहत भानु प्रताप सों = उपमान-वाक्य है।

(ख)—‘शोभित होना’ दोनों वाक्यों का एक धर्म है।

(ग)—उपमेय में वही धर्म ‘लसत’ से कहा गया है।

उपमान में वही धर्म ‘सोहत’ से कहा गया है।

२—दो०—चटक^२ न छाँड़त घटत हू, सज्जन नेह^३-गँभीर ।

फोको परै न बरु फटै, रँग्या चोल-रँग^४ चीर ॥

इस दोहे में सज्जन की प्रीति की दृढ़ता का वर्णन है।
पूर्वाद्ध उपमेय-वाक्य, और उत्तरार्द्ध उपमान-वाक्य है।
‘कम न होना’ दोनों का एक धर्म है जो ‘चटक न छाँड़त’ और ‘फोको परै न’ दो एकार्थवाची शब्दों द्वारा प्रगट किया गया है। केवल शब्द अलग-अलग हैं, अर्थ एक ही है।

३—चौपाई

तिनहि सोहात न अवध बधावा । चोरहि चाँदनि राति न भावा ॥

इसमें पूर्वाद्ध वाक्य उपमेय-रूप और उत्तरार्द्ध वाक्य उपमान-रूप है, दोनों का एक धर्म ‘सोहत न’ और ‘न भावा’ पृथक्-पृथक् शब्दों द्वारा कथन किया गया है। पुनः—

४—दो०—साधु-संग पायहु नहीं, खल को खलपन^५ जाय ।

सुधा पिपायहु अहि^६ नहीं, तजत गरल दुखदाय ॥

१ वीर । २ चटकीलापन । ३ प्रेम, तेल । ४ एक प्रकार का लाल रंग ।

५ दुष्टता । ६ सर्प ।

५—दो०—पिसुन^१ बचन सज्जन-चित्तै^२; सकै न फोरि न फारि।

कहा करै लगि ताय^३ में, तुपक^४ तीर तरवारि ॥

यहाँ 'सकै न फोरि न फारि' और 'कहाँ करै' भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा 'अशक्तता' रूपी एक धर्म प्रगट किया है।

६—सवैया

रंग सो बारिज छाजै भरे छवि राधे के नैन कटाच्छ सों राजै ।

७—सवैया

राजै सुधा सों सुधानिधियों मुसकानिसों सोहत तो-मुख जैसे ।

सूचना—कभी-कभी 'काकु' से और 'एकार्थवाची' शब्दों के बदले विरोधवाची शब्दों द्वारा भी इसका 'एक धर्म' कहा जाता है। जैसे:—

(काकु से)—८—चौपाई

सो मैं बरनि सकौं विधि केही । डाबर-कमठ कि लेहीं ॥

यहाँ उपमेय रूपी पूर्वार्धवाक्य में, वर्णन की 'अशक्तता' कही गई है और उपमान रूपी उत्तरार्धवाक्य में 'काकु' से अशक्तता प्रगट है।

(विरोधवाची शब्दों से)

९—दो०—प्रगट होत गुन आप ही, कहे और के नाँय^५।

लहसुन की दुर्गंध नहिं, सौगंध किए छिपाय ॥

यहाँ उपमेय-वाक्य में 'गुण' और उपमेय-वाक्य में दुर्गंध (अवगुण) कहा गया है, और उपमेय-वाक्य में 'आप ही प्रगट होत' 'विधि-वाक्य' से और उपमान-वाक्य में 'नहिं सौगंध किए छिपाय'-निषेध-वाक्य से दोनों की 'एक धर्मता' गुण का प्रगट हो जाना कहा गया है।

सूचना—इस अलंकार की माला भी देखी जाती है। जैसे:—

१०—दो०—बहत^१ जु सर्पन को मलय^२, धरत जु काजर दीप ।

चंदहु भजत^३ कलंक को, राखहि खलन महोप ॥

इसमें चार वाक्य हैं चारों में अंतिम वाक्य उपमेय रूप है, और शेष तीन उपमान रूप हैं । चारों की एक-धर्मता 'बहत, धरत, भजत और राखहि' एकार्थवाची शब्दों से कही गई है ।

११—लीलावती

म'द-जल-धरन छिरद^१ बल राजत, बहु जल-धरन जलद क्विसाजै
पुहु^२ मि-धरनफनिनाथ^३ लसत अति तेज-धरन ग्रीषम रबिछाजै ।
खरग-धरन सोभा तहँ^४ राजत रुचि 'भूपन' गुन-धरन समाजै ।
दिङ्गि-दलन दच्छिन-दिसि थंभन पैंड-धरन सिवराज बिराजै ॥

(२४) दृष्टांत

दो०—लखि बिबा प्रतिबिंब गति, उपमेयो उपमान ।

वाचक-पद के लोप तें, हैं दृष्टांत सुजान ॥

विवरण—दृष्टांत में दो वाक्य होते हैं, एक उपमेय-वाक्य दूसरा उपमान-वाक्य । दोनों वाक्यों के पृथक-पृथक धर्म होते हैं । दोनों में बिब-प्रतिबिब भाव-सा जान पड़ता है अर्थात् एक प्रकार की समता-सी जान पड़ती है । परंतु यह समता बिना 'वाचक' शब्दों के दिखलाई जाती है ।

१—दो०—पर्णी प्रेम नंदलाल के, हमें न भावत जोग ।

मधुप राजपद पायकै, भीख न मांगत लोग ॥

इसमें पूर्वार्ध उपमेय-वाक्य है । इसका धर्म है जोग न भाना, और उत्तरार्ध उपमान-वाक्य है जिसका धर्म है 'भीख

न माँगना' परंतु बिना वाचक शब्द के ही इन दोनों की समता का बिब-प्रतिबिंब भलकता है। अर्थात् कृष्ण के प्रेमियों का जोग में लित होना वैसा ही है जैसे किसी राजा का भीख माँगना।

२—सवैया

रामकलाधर^१ की सुषमा^२ लखि आँखिन को रुख और न भाव
छोड़ि तरंग सुधा-सरिकी कोउ पोखरि^३ को जल पोवन धावै

३—दो०—सिव औरगहि जित सके और न राजा रावै ।
हथिमत्थ पै सिंह बिनु, आन न घालै घाव^४ ॥

४—दो०—तिरखि रूप नंदलाल का, दूगन रुनै नहि आन,
तजि पियूष^५ कोऊ करत, कटु आपधि को पान ॥

(दृष्टांत-अलंकार की माला भी देखी जाती है)

५—सवैया

अरविद प्रकुलित देखि कै भौर अचानक जाय अरै पै अर ।
बनमाल थली लखि कै मृगसावक दौरि बिहार करै प करै ।
सरसी^१ ढिग पाय कै व्याकुल मीन बिलास सौं कूदि परै प परै ।
अवलांकि गोपाल को 'दासजू' ये आँखियाँ तजिल उठै ढरै ।

सूचना—दृष्टांत से मिलता हुआ प्राचीनों ने 'उदाहरण' नामक एक अलंकार माना है जिसकी हिंदी-काव्य में बड़ी भरमार है, परंतु हाल के आचार्यों ने इसे न जाने क्यों छोड़ दिया है। यह उदाहरण अलंकार, उपमा, दृष्टांत और अर्थांतरन्यास में से किसी में भी अंतर्भूत नहीं हो सकता।

१ चंद्रमा । २ शोभा । ३ गड़ही । ४ चोट करना । ५ अन्य, दूसरा ।
६ अमृत । ७ ताड़ाब ।

ज्यों, यों जैसे कहि करिय, जुग घटना समतूल ।

उदाहरन भूषन कहैं, ताहि सुकषि बुधिमूल ॥

काई साधारण बात कहकर 'ज्यों जैसे' इत्यादि वाचक शब्दों द्वारा किसी विशेष बात से जहाँ समता दिखलाई जाती है वहाँ 'उदाहरण' अलंकार होता है। दृष्टांत और अर्थांतरन्यास में वाचक शब्द नहीं आता। उदाहरण अलंकार के उदाहरण ये हैं—

१—दो०—एक दोष गुन-पुंज में, होत निमग्न 'मुरार' ।

जैसे चंद-मयूष^१ में, अंक-कलक^२ निहार ॥

२—दो०—अनरसद्व रस पाइए, रसिक रसीली-पास ।

जैसे साँठे^३ की काँठन, गाँठो भरी मिठास ॥

३—दो०—जगत जनाया जेहि सकल, सो हरि जान्यो नाहि ।

ज्यों आँखिन सब देखिए, आँखि न देखी जाहि ॥

४—दो०—बुरो बुराई जा तजै, तो चित खरो सकात^४ ।

ज्यों निकलंक मयंक लखि, गनै लोग उतपात ॥

५—दो०—यों दल काढ़े बलख तैं, तैं जयसाय भुवाल^५ ।

उदर अघासुर^६ के परे, ज्यों हरि गाय गुवाल ॥

इन उदाहरणों में ज्यों, जैसे वाचक शब्द आए हैं, अतः ये दृष्टांत नहीं हैं (परिभाषा देखो) ।

सूचना—(१) दृष्टांत अलंकार में कवि का मुख्य लक्ष्य उपमान-वाक्य (उत्तरार्द्ध भाग) पर होता है। उदाहरण अलंकार में कवि का मुख्य लक्ष्य उपमेय-वाक्य (पूर्वार्द्ध भाग) पर होता है; उत्तरार्द्ध केवल बानगी के तौर पर होता है ।

(२) स्मरण रखना चाहिए कि इसी से मिलता-जुलता हुआ 'अर्थांतरन्यास' अलंकार भी होता है। दोनों में भेद यह है कि—

१ किरण। २ कलंक का चिह्न। ३ ऊख। ४ डरता है। ५ राजा। ६ एक राक्षस।

दृष्टांत में दो समवाक्यों की एकता दिखाने का भाव होता है। अर्थात्तरन्यास में एक वाक्य का समर्थन दूसरे वाक्य से किया जाता है।

१—दो०—काटे पै कदली फरै, कोटि जतन कोउ सींच।

चिनय न मान खगेस सुनु, डाँटेहि पै नचनीच ॥

यहाँ कदली वृक्ष और नीच पुरुष की एकता दिखलाने का भाव है, इसलिये यह दृष्टांत अलंकार है।

२—बौ०—देह जानि संका सब काहु। बक्र चंद्रमहि प्रसै न राहु ॥

यहाँ एक वाक्य का दूसरे वाक्य से समर्थन करने का भाव है, इसलिये यह अर्थोत्तरन्यास अलंकार है।

अर्थोत्तरन्यास में साधारण का समर्थन विशेष से और विशेष का समर्थन साधारण से होता है। और दृष्टांत में साधारण की समता साधारण से और विशेष की समता विशेष से की जाती है।

बहुधा विद्यार्थी इन दोनों के उदाहरणों में भेद नहीं कर सकते ऐसा हमारा अनुभव है। इसलिये हम दोनों के भेद को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

प्रतिवस्तूपमा में दोनों वाक्यों का एक ही धर्म होता है और वह दोनों वाक्यों के साथ अलग-अलग एकार्थवाची शब्दों में कहा जाता है।

दृष्टांत में दोनों वाक्यों के धर्म भिन्न-भिन्न होते हैं, अर्थात् केवल उपमेय वाक्य और उपमान-वाक्य में बिम्बप्रतिबिम्ब भाव होता है, धर्म में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव नहीं होता, परंतु कवि उसका कथन ऐसी युक्ति से करता है कि इस युक्ति के कारण दोनों वाक्यों में एक प्रकार की एकता सी आसने लगती है। इसी विलक्षणता का नाम अलंकार है।

(२५) निदर्शना

दो०—सरिस वाक्य जुग के अरथ, करिए एक आरोप।

भूषन ताहि निदर्शना, कहत बुद्धि दै ओप ॥

चिवरण—जहाँ दो वाक्यों के अर्थ में (विभिन्नता रहते हुए भी) समता-भाव सूचक ऐसा आरोप किया जाय कि दोनों

एक से जान पड़ें, वहाँ निदर्शना अलंकार होता है। प्राचीन
आचार्यों ने इसके द्वां भेद कहे हैं, परंतु नवीन आचार्यों ने इसके
पाँच भेद माते हैं।

(१) पहली निदर्शना

दो०-जो, सो, जे, ते, पदन करि, असम वाक्य सम कीन ।
ता कह प्रथम निदर्शना, बरनै कबि परबीन ॥

१—चौपाई

जो अति सुभट सराह्य रावन । सो सुग्रीव केर लघु धावन^१ ॥

२—चौपाई

सुनु खगेस हरिभक्ति बिहाई । जे सुख चाहिहि आन^२ उपाई ॥
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी^३ । पैरि पार चाहत जड़ करनी ॥

३—दो०—जग-जोत जे चाहत हैं तो सों बैर बढ़ाय ।

जीवे की इच्छा करत, कालकूट^४ ते काय ॥

४—सवैया

जो सुभ बानी^५ बसै विधि संग सदा सिव-अंग लसै सु भवानी^६ ।
जो कमला^७ कमलापति के संग 'देव' सचीस^८ सची^९ सुखदानी ॥
दीप-सिखा ब्रज-मंदिर सुंदर जागति जोति सबै जग जानी ।
साधुकी साधिकासिद्ध समाधिकासो ब्रजराजकी शधिका रानी ॥

सूत्रमा—

दो०—वाचक संब्द कहूँ-कहूँ, लोप कर कबिराय ।

अर्थ गौर करि कीजिए, निदर्शना दरसाय ॥

१—दो०—साहन सों रन माँड़िबा,^{१०} कीबो सुकबि निहाल^{११} ।

सिव सरजा को खयाल है, औरन को जंजाल ॥

१ दूत । २ अन्य । ३ नाव । ४ जहर । ५ सरस्वती । ६ पार्वती ।
७ कश्मी । ८ इंद । ९ इंद्राणी । १० युद्ध करना । ११ संतुष्ट ।

अर्थात् जो शिवाजी के लिये एक खेल के समान है, वही औरों के लिये महा कठिन काम है।

२—दो०—मीठे बचन उदार के, सोने माहि सुगंध।

अर्थात् उदार में मधुर भाषण गुण का होना ही सोने में सुगंध का होना है।

३—सवैया

अति खीन^१ मृनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पांव दै आवना है ।
सुई बेह^२ को बेधि सकै न तहाँ परतीत को टाँड़ा^३ लदानना है ।
'कबिबोधा' अनी^४ घनी नेजहु की चढ़ि तापै न चित्त डगावनो है ।
यह प्रेम को पंथ करार^५ है री तरवार की धार का धावना है ।

(२) दूसरी निदर्शना

दो०—थापिय गुन उपमान को, उपमेयहि के अंग ।
ता कह द्वितिय निदर्शना, कहिए सुमति उत्तम ॥

१—दो०—जब कर गहत कमान-सर, देत अरनि को भीति^१ ।
भाउसिंह में पाइए, सब अरजुन की रीति ॥

२—दो०—लीन्हों तेरे करन नृप, करन करन की रीति ।
पायन अंगद की वहै, लई रीति करि प्रीति ॥

३—चौपाई

अस कहि फिरि चितए तेहिओरा । सियमुखससि भए तैन चकोरा ।

(३) तीसरी निदर्शना

दो०—थापिगुन उपमेय को उपमानहि के अंग ।
ता कहैं त्रितिय निदर्शना कहिए सुमति उत्तम ॥

१—सवैया

आनन ओज अमंद प्रमान कलाधर^१ में वही छाँह परी है ।
बन बिलोचन की 'लछिराम' प्रकासक लालिमा कंज करी है ॥
मौज मझातम की महिमा किल^२ कल्पलता परतीति धरी है ।
गौर गंभीरता श्री रघुनाथ की छोर-समुद्र के बीच भरी है ॥

२—सवैया

नेकु हँसी सो भई नखतावली मालती कुंद जुड़ीन पै दाया-
न बैन कहे ते भए वे सुधा गति सों भई हंसन की सुचि काया ॥
जाति के भूषन पात^३ से लागत यों 'खुरुदत्त' करी बिधि माया ।
चंद भयो मुख को प्रतिबिंब उदै भई चाँदनी अंग की छाया ॥

३—कवित्त—कीरति सहित जो प्रताप सरजा में बर,

मारतड मध्य तेज चाँदनी सो जानो मैं ।

सोहत उदारता श्री सोलता खुमान^४ में,

सो कंवन में मृदुता सुगंधता बखानी मैं ॥

'भूषन' भनत सब हिंदुन के भाग फिरे,

चढ़े ते कुमति चकताहु की पेसाबी^५ मैं ।

सोहत सुबेस दान कीरति सिवा में सोई,

निरखी अनूप रुचि^६ मोतिन के पानी मैं ॥

४—दो०—तुव बचनन की मधुरता, रही सुधा महँ छाय ।

चार चमक चल नैन की, मीनन लई छिनाय ॥

(४) चौथी निदर्शना

दो०—अपने सद व्यौहार तें, औरहिं सिखवै ज्ञान ।

सो सद अर्थ निदर्शना, मानैं सब बुधिमान ॥

१ चंद्रमा । २ निश्चय । ३ शीशे की साधारण गुरिया । ४ आयुष्मान ।

५ माथा, कलाट । ६ अमक ।

४—उल्लाला

सिवराज साहिसुव^१ सत्थ नित, हय गय लखन संचरइ ।
यक्षय गयंद^२ यक्षय तुरग, किमि सुरपति सरवरि करइ ॥

(दूसरे ढंग के उदाहरण)

१—चौपाई

जिनके जस प्रताप के आगे । ससि मलीन रवि सीतल लागे ॥

२—दो०—जन्म सिंधु पुनि बंधु बिष, मलीन सकलंक ।

सिय-मुख समता पावकिमि, चंद बापुरो रंक ॥

३—दो०—घटै बढ़ै सकलंक लखि, सब जग कहै ससंक ।

सीय बदन सम है नहीं, रंक मयंक एकंक^३ ॥

(२७) सहोक्ति

दोहा—जहँ मनरंजन बरनिए, एक संग बहु बात ।

सो सहोक्ति आभरन है, ग्रंथन में बिरयात ॥

१—चौपाई

जस प्रताप बीरता बड़ाई । नाक^४ पिनाकहि^५ संग सिधार्ई ॥

२—पद

गहि करतल मुनि पुलक सहित कौतुकहि उठाय लिखो ।

नृपगन मुखन समेत नमित करि सजि सुख सबहि दियो ॥

आकरण्यो सिय मन समेत हर हरण्यो जनक हियो ।

भंज्यो भृगुशक्ति मर्व-सहित तिहुँ लोक बिमांह कियो ॥

३—चौपाई

त्रिभुवन जय समेत बैदेहो । बिनहि बिचार बरै^६ हठि तेही ।

१ शाहजी के पुत्र । २ गजेंद्र, ऐरावत । ३ विश्वय । ४ इज्जत । ५ शिव का धनुष । ६ वरण करे ।

४—कवित्त—जनक निरासा, दुष्ट नृप की आसा,
 दुरजन की उदासी, सांक रनिवास मनु के ।
 वीरन के गरब गरूर भरपूर सब,
 भ्रम मोह आदि मुनि कौसिक के तनु के ॥
 'हरिचंद' भय देव मन के पुहुमि^१ भार,
 बिकल बिचार सबै पुरनारी जनु^२ के ।
 सैंका मिथिलेस की सिया के उरसूल सबै,
 तोरि डारे रामचंद्र साथै हरधनु के ॥
 सूचना—संग, सहित, समेत, साथ, एकै साथ इत्यादि या इसी अर्थ
 के अन्य शब्द इस अलंकार के वाचक हैं ।

(२८) विनोक्ति

दो०—द्वै विधि कहैं विनोक्ति को सुकवि बुद्धि के ऐन ।
 प्रस्तुत कछु बिन न्यून अरु कछु बिन सोभा दैन ॥

(प्रथम विनोक्ति)

दो०—कछू वस्तु बिन बरनिए, वर्ननीय जहैं हीन ।

१—सवैया

राम सुरूप निधान को रूप प्रकासक पवघटी न अमात है^१ ।
 लखन मैथिली साथ जऊ रिपुदौन^२ भरतथ बिना न सोहात है ॥

२—दोहा

कवि बिन नहिं सोहै सभा, निसि बिनु सुधासिवास^३ ।
 फवत न गिरिधरदास बिनु गिरिधर 'गिरिधर-दास'^४ ॥

३—चौपाई

जिय बिन देह नदी बिनु बारी^५ । तैसइ नाथ पुरुष बिनु नारी ।

४—हरिगितिका

जिमि भानु बिनु दिन, प्रान बिनु, चंद्र बिनु जिमि जामिनी*।
तिमि अवध^१ तुलसीदास^२ प्रभु बिनु सभुकि धौं जिय भामिनी*॥

५—चौपाई

अस जिय जानि भजहिं जे आना । ते नर-पसु बिन पूँछ बिषाना*॥

(द्वितीय विमोक्ति)

दो०—बर्ननीय बर्नत जहाँ, कछू बस्तु बिनु रम्य ।

१—दा०—भली प्रीति बिन कपट की, दत सबहिं चित चैन ।

कैसे नीके लगत ए, बिनु सकाच के बैन* ॥

२—सोरठा—बिनु कठोरता अम्ब, लसत रावरे के चरन ।

सब जग के अवलंब, बसत साधु-जन के हिये ॥

(मिश्रित)

(प्रथम)—दान बिना सोहत नहीं, नृप जिमि द्विरद^१ बिसाल ।

(द्वितीय)—ग्रास बिना सोहत सुभट, जैसे मनि गन माल ।

दान = (क) दक्षिणा, (ख) गजमद ।

(ध्वनि से)

(प्रथम)—बड़े दूगन को फल कहा, जो न लख्यो हरि-रूप ।

धिक भवनन जा नहिं सुमे, प्रभु के चरित अनूप ॥

अर्थात् बिना हरि-दर्शन नेत्र और बिना हरि-कथा सुने
कान शोभा नहीं पाते ।

(२६) समासोक्ति

दो०—जहाँ प्रस्तुत में होत है, अप्रस्तुत को भान ।

समासोक्ति तेहि कहत हैं, कबिजन परम सुजान ॥

दो०—कवि इच्छा जेहि कथन की, 'प्रस्तुत' ताको जानु ।

अनचाहे हूँ फुरि परै, 'अप्रस्तुत' सो मानु ॥

विवरण—जब किसी कथन में कवि इच्छित अर्थ के अलावा (शब्दों की गंभीर गठन के कारण) कोई दूसरा अर्थ भी भास-मान होता है तब उसे कथन में समासोक्ति अलंकार माना जाता है। ऐसे कथन में बहुधा ऐसे श्लिष्ट शब्द अनायास आ जाते हैं, जिससे दूसरे अर्थ का भान होने लगता है। परंतु यह जरूरी नहीं है कि श्लिष्ट शब्दों ही द्वारा यह अलंकार सिद्ध हो सके। अश्लिष्ट शब्दों से भी काम चल सकता है।

सूचना—इस अलंकार को अंगरेजी में 'मॉडेल मेटैफर (Model Metaphor)' कहते हैं।

(अश्लिष्ट शब्दों द्वारा)

१—चौपाई

लोचन मगु रामहिं उर आनी^१ । दीन्हें पलक-कपाट सयानी ॥

इसमें कवि इच्छित अर्थ के अलावा यह भी भासित होता है कि किसी चंचल व्यक्ति को बाँधुवा बनाने के व्यवहार में किवाड़ों को बंद कर देना होता है।

२—दा०—कुमुदिन^२ हू प्रमुदिन भई, सौँफ कलानिधि जोय।

इसमें कवि इच्छित अर्थ तो यह है कि 'संध्या समय में चंद्रमा को देखकर कुमोदिनी फूली।' परंतु इससे किसी नायिका की दशा की भी सूचना मिलती है।

(श्लिष्ट शब्दों द्वारा)

१—दो०—बड़ो डोल लख पील^३ का सवन तज्यो बन-थान ।

अनि सरजा तू जगत में, ताका हरयो गुमान ॥

इसमें 'सरजा' शब्द श्लिष्ट है। इसका अर्थ है (१) सिंह और (२) शिवाजी का एक खिताब होने के कारण स्वयं शिवाजी।

कवि की इच्छा सिंह वर्णन की है। परंतु 'सरजा' शब्द श्लिष्ट होने के कारण इसमें शिवाजी और औरंगजेब के व्यवहार का भी भान होता है।

२—दो०—तुही सर्व्व द्विजराज^१ है, तेरी कला^२ प्रमान।

तापै सिव^३ किरपा करी, जानत सकल जहान ॥

इसमें कवि का इच्छित तात्पर्य तो चंद्रमा की प्रशंसा है, परंतु 'द्विजराज' और 'शिव' शब्द श्लिष्ट होने से भूषण कवि और शिवाजी के व्यवहार का भान होता है।

३—कविल्ल—'भूषण' जो करत न जाने बिनु घोर सोर,

भूलि गयो आपनी उँचाई लखे कद की।

खोइहौ प्रबल मदगल^४ गजराज एक,

सरजा सों बैर कै बड़ाई निज मद की ॥

यहाँ भी कवि-इच्छा हाथी के वर्णन को है, परंतु पहले उदाहरण की तरह इसमें भी शिवाजी और औरंगजेब के व्यवहार का भान होता है।

४—सो०—लता नवल तनु अंग, जाति जरी जीवन^५ बिना।

कहा सिखयो यह ढंग, तबन अरुन^६ निरदै^७ निरखु ॥

इस सोरठे में दोपहर के प्रबंड तापयुक्त सूर्य के तेज से किसी नाजुल लता के सूख जाने का वर्णन है, परंतु गौर करने से किसी बरहिनी नायिका की दशा का भी भान होता है।

१ श्रेष्ठ ब्राह्मण, 'चंद्रमा'। २ चंद्रमा की कला, विद्या। ३ महादेव, शिवाजी। ४ मदगलित। ५ जल, विदग्धा। ६ सूर्य। ७ निर्दय।

५-कविस—जीवन के दानि हो सुजान हो सरस अति,
 जगत के जीवन को आसँद उमाहे हो ।
 सुजस को पाश्रो परस्वारथ को धाश्रो,
 धरा-तपनि मिटाइवे की मति अवगाहे हो॥
 'गोकुल' कहत इन्हें आस रावरे की है,
 जू प्यास इनकी न मेटि देत कहो काहे हो ।
 गरजि घुमरि घनस्याम^१ क्यों बरावत^२ हां,
 कछु चातकीनहूँ को अपराध चाहे^३ हो ॥
 इसमें कवि की इच्छा बादल और चातकियों के वर्णन
 को है, परंतु तनक ही गौर करने से इसमें कृष्ण और गांधियों
 के व्यवहार का भान मिलता है ।

इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिए ।

सूचना—(श्लेष और समासोक्ति के भेद)—

(१) श्लेष में सब ही अर्थ प्रस्तुत समझे जाते हैं ।

(२) समासोक्ति में प्रस्तुत में अप्रस्तुत का भान-सा होता है ।

(३०) परिकर

दो०—अभिप्राय जहँ किया को, सुबिसेषन में होय ।

अलंकार परिकर तहाँ, बरनत हैं कबि लोय ॥

विवरण—जहाँ कोई ऐसा विशेषण लाया जाय जो उस
 पद की क्रिया से संबंध रखता हो ।

१—सवैया

जानो न नेकु व्यथा पर^१ की बलिहारी तऊ पै सुजान कहावत ।

२—सवैया

भाल में जाके सुधाधर है वहै साहेब ताप हमारो हरैगो ।

अंग है जाको बिभूति^१ भरो वहै भौन में संपति भूरि भरैगो ।
घातक है जो मनोभव को जग पातक चाही के जारै जरैगो ।
'दास' जू-सीस पै गंग लिए रहै ताकी कृपा कहो को न तरैगो ।

३—दो०—चक्रपानि हरि को निरखि, असुर जात भजि दूरि ।

रस^२ बरसत घनस्याम तुम, ताप हरत मुद पूरि ॥

४—कविस--सीतल करैंगे मेडि ताप त्रिभुवन राम,

स्यामघन बरन बरसि दान-धारा को ।

सूचना—इस अलंकार को फारसी तथा उर्दू में 'सनअत' इश्तिकाक कह सकते हैं ।

(३१) परिकरांकुर

दो०—अभिप्राय जहँ क्रिया को, है बिसेष्य पद माहि ॥

सुकवि सकल बरनन करै, परिकर-अंकुर ताहि ॥

१—दो०—रत्ननाकर^३ बासी रमा, प्रानन को आधार ।

हरि कुबेरपति रावरो, हरे रोग-बिकरार ॥

२—चौ०—बदन मयंक^४ ताप-अय-मोचन ।

३—चौपाई

सुनहु बिषय मम बिटप असोका । सत्य नाम करु हरु मम-सोका ॥

४—दो०—धरनिमुता^५ धीरज धरेउ, समय सुधर्म बिचारि ॥

५—पद--हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी ।

६—दो०—जम-करि मुँह तरहरि^६ परधा, यह धरहरि चित लाय ।

बिषय-तृषा परिहरि अजौं, नरहरि के गुन गाय ॥

यहाँ 'नरहरि' शब्द साभिप्राय है । जमराज को हाथी

१ भस्म, ऐश्वर्य । २ जल, आनंद । ३ समुद्र । ४ चंद्रमा । ५ पृथ्वी की पुत्री, सीता । ६ नीचे करके ।

(करि) माना तो हाथी को मारने के लिये नरहरि (नृसिंह) समर्थ हैं ।

७—पद

हृषीकेस सुनि जाउँ जाउँ 'बलि अति भखेस जिय मोरे ।
'तुलसिदास' इन्द्रिय-संभव दुख हरे बनिहि प्रभु तोरे ॥

८—पद

'तुलसिदास' भवब्याल-असित तव सरन उरग रिपुगामी ।

'हृषीकेस' और 'उरग रिपुगामी' संज्ञापण साभिप्राय हैं, क्योंकि हृषीकेस (हृषीक + ईश = इंद्रियों का मार्शलक) ही इंद्रिय-संभव दुख दूर कर सकता है और उरग रिपुगामी (गरुड़ पर सवार होनेवाला) ही 'भवब्याल' से रक्षा कर सकता है ।

सूचना—इस अलंकार को भी फारसी तथा उर्दू में 'अनअत इश्ल-क़रक़' कह सकते हैं ।

(३२) श्लेष

दो०—दोय तीन अरु भाँति बहु, आवत जामें अर्थ ।

श्लेष नाम ताको कहत, जिनकी बुद्धि समर्थ ॥

सूचना—इस अलंकार के कुछ उदाहरण और विवरण शब्दालंकार वाले वर्णन में देखो । कुछ उदाहरण नीचे लिखते हैं ।

१—दो०—द्विजतिय-तारक^१ पूतना मारन में^२ अति धीर ।

काकोदर^३ को दरपहर, जय यदुपति रघुबीर ॥

२—दो०—सगुन^४ सभूषन^५ सुभ सरस^६, सुवरन^७ सुपद^८ सराय ।

इमि कबिता अरु कामिनी, लहै जु सो बड़ भाग ॥

१ ब्राह्मण की स्त्री को तारनेवाले । २ पूतना के मारने में, पूतनामय (पवित्र नामवाले) + रण में । ३ एक राक्षस, जयंत । ४ गुण, माधुर्य आदि गुण । ५ गहना, अलंकार । ६ आनंद देनेवाली (रसों से युक्त) ।

७ अक्षर, रंग । ८ पैर, शब्द ।

३—सवैया

सुंदर सोहै सुगंधित अंग अभंग अनंग कला ललिता है ।
 तैसी 'किसोर' सोहात सुधोनित^१ भोगिनहूँ^२ को मनोहरता है ॥
 संग अली^३ अवली रव राजत अंग रसीलो बसीकरता है ।
 कोमलता युत बीर^४ बसंत की बैहर^५ की बानता^६ कि लता है ॥

४—कविच—ढरै मधुमाधुरी पराग^१ सुबरनसनी^२,

सरस सलोनी पाप-तापन के अंत की ।

कामना जुगति की उकुति सरसावत सी,

छावै मधुराई कल कांकिल के भंत की ॥

'गोकुल' कहत भरी गुनन^३ गंभीर सीरी,

कानन^४ लौं आवति पियूष ऐसे यात^५ की ।

ऐसी सुखदानो है न जानी जगती में,

और कविन की बानी बर बैहर बसंत की ॥

५—कवित्त—पापिन^१ के आगर सराहैं सब नागर,

कहत 'दास' कोस^२ में लख्यो प्रकासमान में ।

रज^३ के संयोग तैं अमल होत जब तब,

हरि हितकारी वास जाहिर जहान में ॥

श्री^४ को भाय सहजै करत मनकाम,

थकै बरनत बानि जा दलन^५ के बिधान में ।

एतो गुन देखो राम साहिब सुजान में,

कि बारिज बिहान^१ में कि कीमत^२ कृपान में

१ संयोगी, योगिराज । २ संभोगी, सर्प । ३ सखी, भ्रमर । ४ संबो-
 धन में । ५ वायु । ६ स्त्री । ७ पुष्प-धूलि, सुंदर राग । ८ सुंदर अक्षर,
 सुंदर रंग । ९ मधुर्य, मधु आदि गुण । १० वन, कर्ण । ११ वायु, बचन । १२
 जल; शोभा । १३ पद्मकोश, धन, स्यान । १४ धूलि, रजपूती । १५ लक्ष्मी,
 शोभा । १६ सेना, पँखड़ी । १७ प्रातः काल का कमल । १८ बहुमूल्य ।

सूचना—स्मरण रखना चाहिए कि अर्थ-श्लेष अलंकार में बहुधा संदेशालंकार वा विकल्पालंकार से सहायता ली जाती है, परंतु मुख्यता श्लेष की होती है इसलिये वही माना जाता है, उदाहरण न०, ३, ४, ५ में देखो और समझो। बाबू हरिश्चंद्र जी ने अपने 'सत्यहरिश्चंद्र' नाटक में एक दोहा कहा है जो शिव, राजा, कवि, कृष्ण और चंद्रमा इन पाँचों पर घटित हो सकता है, और सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र पर भी लगता है। दोहा यह है—

दोहा—सत्यासक्त^१ दयाल द्विज, प्रिय^२ अथहर सुखकंद ।
जनहित^३ कमलातजन^४ जय, सिव, नृप, कवि, हरिश्चंद्र ॥
सूचना—इस अलंकार को फारसी और उर्दू में 'ईदाम' कहते हैं।

(३३) अप्रस्तुत प्रशंसा

दी०—अप्रस्तुत वर्णन विषे, प्रस्तुत बननो जाय ।
अप्रस्तुत-परसंस तेहि, कहैं कबिन के राय ॥

विवरण—जिस विषय को कहना हो, उसे स्पष्ट शब्दों में न कहकर इस ढंग से कहें कि वह असली बात लक्षित हो जाय, वहाँ यह अलंकार कहा जायगा।

सूचना—इस अलंकार को अंगरेजी में 'मेटानोमी' (Metonymy) कह सकते हैं।

ऐसा कथन पाँच प्रकार से हो सकता है ।

दी०—कारज मिस कारन कथन, कारन के मिस काज ।
कहुँ सामान्य विसेष है, होत ऐसही साज ॥

१ सती में आसक्त (शिव), सत्यभामा में आसक्त, सत्य में आसक्त । २ ब्राह्मण, गणेश, चंद्र । ३ दास; प्रजा, मनुष्य । ४ कक्षी, धन ।

कहूँ सरिस सिर डारि कै, कहै सरिस सों बात ।
अप्रस्तुत परसंस के पंच भेद अदावत ॥

(१) कारज मिस कारण कथन-कारज निबन्धना-अर्थात्
इष्ट तो है कारण का कथन, पर उसे सीधे शब्दों में न कहकर
उसके कार्य का कथन करके वह कारण जनाया जाय ।

१—दो०—मातु पितहि जनि सोचबस, करसि महीप किसोर ।

यहाँ परशुरामजी का असल मतलब तो यह कहने का
कि 'मैं तुम्हें मार डालूँगा' पर ऐसा न कहकर कहते हैं कि हे
राजकुमार ! 'तू अपने माता-पिता को सोचबस मत कर' ।
'किसी का मारा जाना' यह कारण है, और उसके 'माता
पिता का सोचबस होना' यह कार्य है । सो कार्य कहकर
कारण जताते हैं ।

२—सवैया

राधिका के अँसुवान को सागर बाढ़त जात मनो नभ छँवैहो ।
बात कहा कहिए ब्रज की अब बूड़ोई छैहै कि बूड़त छैहै ॥

इसमें अधु-सागर का बढ़ना और ब्रज का बूड़ना जो कार्य
रूप है सो कहा, पर असल कारण 'बिरह की अधिकता' साफ
शब्दों में न कही । इससे यहाँ भी 'कारज मिस कारण का
कथन' है ।

३—दो०—गोपिन के अँसुवन भरी, सदा असोष' अपार ।

डगर डगर नै'है रही, बगर-बगर'के बर ॥

४—क०—राधे को बनाय बिधि धोयो हाथ ताको,

रंग जनि' भयो चंद हाथ भारे भए तारे हैं ।

यहाँ भी धोवन से चंद और तारों का होना जो कार्यरूप

१ जो सूख न सके । २ नदी । ३ घर । ४ दरवाजा । ५ उत्पन्न होकर ।

है कहकर राधिकाजी की 'अत्यंत सुंदरता, जो कारण है जताई गई है।

५—दो०—तब पद-नख की दुति कलुक धोय गई जल साथ।

तेहि कारन मिलि दधि^१ मथत चंद्र भयो है नाथ ॥

यहाँ भी धोवन से चंद्रमा का होना जो कारण रूप है वर्णन करके श्रीकृष्ण के पदनख की 'महान् छटा' जो कारण-रूप है सूचित की गई है।

(२) कारण के मिस काज-कारण निबयना—अर्थात् जहाँ कार्य का कहना हो, पर कहा जाय कारण। जैसे—

१—चौपाई

कोउकहजबविधि^२ रतिमुख कीन्हो। सारभागससि करहरिलीन्हो ॥

छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं। तेहि मग देखिय नभ-परिछाहीं ॥

यहाँ रतिमुख की अत्यंत सुंदरता जो कार्यरूप है—न कहकर उसका कारण (चंद्रमा का सारभाग) कथन किया गया है। यही कारण मिस कार्य का कथन है।

२—दो०—लीन्हो राधा मुख-रचन, बिधि ने सार तमाम।

तेहि मग होय अकास यह, ससि में दीखत स्याम ॥

३—सवैया

जोति के गंज में आधो बराय बिरचि रचो वृषभानु-दुलारी।

आधो रह्यो फिर ताहू में आधो लै सूरज-चंद्र-प्रभान में डारी ॥

“दास” द्वै भाग किए उबरे के तरैयन में छाब एक की सारी^३।

एक ही भाग ते तीनहुँ लोक की रूपवती युवतोन सँवारो ॥

४—सवैया

राधे के अंग सोराई सो और सोराई बिरचि बनावन लीनी ॥

कै सत बुद्धि बिबेक सों एक अनेक बिचारन में मति दीनी ॥

बानिक तैसी बनी न बनावत 'केसव' प्रस्तुत हूँ गई हीनी ।
लै तब केसरि, केतकि, कंचन, चंपक, केदलि, दामिनि कीनी ॥

इन सब कथनों से, जो कारणरूप हैं, 'राधा के मुख की अत्यंत छवि' जो कार्य रूप है प्रगट होता है । इसलिये यह सब कारण मिस कार्य का कथन है ।

५—दो०—गर्भन के अर्भक^१ दलन, परसु मोर अति घोर ।

यहाँ भी परसुराम ने कारणरूप परशु का वर्णन करके मारणरूप कार्य को सूचित किया है । ऐसा ही यह भी है—

६—दो०—तदापि कठिन दसकंठ सुनु, छत्रि-जात कर रोष ।

(३) सामान्य मिस विशेष का कथन—सामान्यनिबधना—
जहाँ कोई सामान्य सी बात कह के विशेष का तात्पर्य जताया जाता है । यथा—

१—खोपाई

सूपनखा कौ गति तुम देखी । तदपि हृदय नहिं लाज बिसेषी ।

इस कथन में 'सूपनखा की दशा' सामान्य रीति से कह कर यह स्तुत जताया गया कि तुम्हें रामचंद्र के समान सबल पुरुष से बैर न करना चाहिए ।

२—दो०—धरै न मन में सोच जे, बैर प्रबल सों ठानि ।

सोचत आगि लगाय ते, सदन माँझ पट^२ तानि ॥

३—दो०—बड़े प्रबल सों बैर करि, करत न सोच-बिचार ।

ते सोचत बारूद पर, पट में दाँधि अँगार ॥

ऊपर के इन दोनों दोहों में कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति का किसी विशेष सबल पुरुष से बैर करने की मनाही करना चाहता है, पर उस विशेष पुरुष का काम न लेकर सामान्य भाष से एक साधारण बात कहता है ।

(४) विशेष मिस सामान्य का कथन—विशेष निबंयमा—

१—सवैया

‘दास’ परस्पर प्रेम लखो गुन छोर^१ को नीर मिले सरसातु^२ है ।
नीरै बेबावत आपने मोल जहाँ जहाँ जायकै छोर बिकातु है ।
पावक^३ जारन छोरै लगै तब नीर जरावत आपनो गातु है ।
नीर की पीर निवारन कारन छोर घरीही घरी उफनातु है ।

यहाँ जो छोर और नीर की प्रीति का वर्णन किया गया है सो अप्रस्तुत है अर्थात् कवि का प्रयोजन छोर-नीर की प्रीति के वर्णन से नहीं है, वरन् यह विशेष उदाहरण देकर प्रस्तुत बात यह सूचित करता है कि सब लोगों की प्रीति ऐसी ही करनी चाहिये ।

२—दो०—धन्य सेष सिर जगत हित, धारत भुवि को भार ।

बुरो बाघ अपराध बिनु, मृग को डारत मार ॥

इसमें शेष और बाघ के अप्रस्तुत वर्णन से यह प्रस्तुत जताया गया कि बड़े होकर सबका भार अपने सिर लेना अच्छा काम है और सशक्त होकर निरपराधों को सताना बुरा काम है ।

३—दा०—निज मडल मधि रखि मृग, मृगनांछन भो चंद ।

मृगपति भो मृग मारिकै, सिंह सु सदा स्वच्छद ॥

इस दाहे में चंद्रमा और सिंह के विशेष उदाहरणों से यह सूचित किया गया कि अयोग्य का साथ रखने से कलंक लगता है और उसको विनष्ट कर देने से प्रशंसा होती है ।

४—दो०—काटि लेत तरु बाढ़ई, सूधे सूधे-जोय ।

बन में बाँके^१ वृक्ष का, काटत है नहिं कोय ॥

इस दोहे के विशेष उदाहरण से सामान्यतया यह प्रस्तुत निकलता है कि सीधेपन से दुःख होता है और कुटिल लोगों को सताने की कोई इच्छा ही नहीं करता ।

(५) सखि के सिर डारि कै सरिस से बात कहना—
(इसी को सम्पन्न-निबन्धना और अन्योक्ति भी कहते हैं) ।

सचना—

दो०—औरो एक पिछान है, मानि लेहु परतीत ।

समोसोक्ति भूषण जू है, ताको यह बिपरीत ॥

१—दो०—भयां सखिपति साललपति, अरु रतनन की खानि ।

कहा बड़ाई समुद्र की, जु पै न पीजत पानि ॥

यहाँ समुद्र पर ढारकर यह बात किसी ऐसे धनी के लिये कही गई है, जो धनी तो बहुत बड़ा है, परंतु उससे किसी को कुछ सुख नहीं प्राप्त होता है । कवि की इच्छा (प्रस्तुत) यही है, समुद्र का वृत्तान्त अप्रस्तुत है ।

२—सवैया

काल कसल पड़े कितनो पै मराल^१ न लाकत तुच्छ ललैया^२ ।

यहाँ हंस पर ढारकर यह बात कही गई है कि विवेकी पुरुष दुःख पाने पर भी अनुचित कार्य करने की ओर नहीं झुकते ।

३—चौपाई

मानस-^३ सलिल-सुधा-प्रतिपल्ली । जियै किल वन-पयोधि^४ मराली नवरसाल^५ बन बिहरन सोला । सोहै कि कोकिल बिपिन करीला^६ ॥

यहाँ हसिनी और कोयल पर ढारकर यह जताया गया है कि सुकुमार और सुखभोगिनी स्त्रियाँ वनवास का कष्ट सहन नहीं कर सकतीं ।

१ हंस । २ गड़ही । ३ मानसरोवर । ४ खारा समुद्र । ५ ग्राम । ६ करील का वन ।

४—चौपाई

सुनुदसमुख खद्योत^१-प्रकासा । कबहुँ कि नलिनी^२ करहि बिकासा ॥

यहाँ सीताजी कमलिनी पर ढारकर रावण से अपना वृत्त कहती हैं ।

५—कवित्त—हारे बाटवारे जे बिचारे मंजलिन^३ मारे,
दुखित महा रे तिन को न सुख तैं दियो ।

बन के जे पंखी तिनहूँ के काम को न कछु,
साँझ समै आय बिसराम उन ना लियो ॥

आपनेहूँ तन की न छाया करि सक्यौ मूढ़,
'दयानिधि' कहै जग जन्म ही बृथा गयो ।

घाम को न आड़ भयो फूल फल को न लाड़,
परे ताड़ वृक्ष पतो बढ़िकै कहा कियो ॥

यहाँ भी अप्रस्तुत ताड़ वृक्ष के वर्णन से किसी ऐसे बड़े मनुष्य का वर्णन प्रस्तुत है जिससे किसी को कुछ लाभ नहीं पहुँचता ।

इसी अलंकार को लेकर गोसाईं 'दीनदयालगिरि' ने 'अभ्योक्तिकल्पद्रुम' नाम का एक छंटा सा ग्रंथ ही रच डाला है ।

६—दो०—नहि पावस ऋतुराज यह, सुनु तरुवर मति भूल ।
अपत^४ भए बिन पाइहै, क्यों नव दल फल फूल ॥

७—दो०—स्वारथ सुकृत न श्रम बृथा, देखु बिहंग बिचारि ।
बाज पराये पानि^५ परि तूँ पंखीन न मारि ॥

सूचना—(अप्रस्तुतप्रशंसा, समासोक्ति और पर्यायोक्ति का भेद)

(१)—अप्रस्तुतप्रशंसा में अप्रस्तुत से प्रस्तुत का ज्ञान होता है ।

१ जुगनू । २ कमलिनी । ३ रास्ते का टिकाव । ४ पत्ते से हीन, अप्रतिष्ठित । ५ हाथ ।

(२)—समासोक्ति में प्रस्तुत वर्णन से किसी अप्रस्तुत का भी भान होता है ।

(३)—पर्यायोक्ति में प्रस्तुत का कथन कुछ घुमा फिराकर किया जाता है, सीधे-सीधे नहीं, उसमें अप्रस्तुत का कोई अभास नहीं होता है ।

(३४) प्रस्तुतांकुर

दो०—प्रस्तुत में प्रस्तुत जहाँ, प्रगटत अंकुर न्याय ।

प्रस्तुत अंकुर कहैं तेहि, बुद्धिमान कबिराय ॥

विवरण—जब कोई बात इस प्रकार कही जाती है कि जिससे कही जाय और एक दूसरा व्यक्ति जिसका सुनाकर कही जाय दोनों को लाभ पहुँचै, तब यह अलंकार होता है । कहनेवाले का तात्पर्य (प्रस्तुत) दोनों से कथन करने का होता है । एक से तो प्रत्यक्ष कहता है, और दूसरे को सुनाने का तात्पर्य होता है । इस प्रकार मानो प्रस्तुत में से एक अंकुर निकलता है । प्रस्तुत बात एक के लिये होती है और वह अंकुरवत् निकली हुई (प्रस्तुत) बात दूसरे के लिये । दूसरे को सुनाकर दूसरे के प्रति जो उपालंभ या उपदेश दिया जाता है उस कथन में यह अलंकार अवश्य होता है ।

१—दो०—सोत बात^१आतप^२सही, राख तेरियै आस ।

तऊ पपीहा की जलद, तैं न बुझाई प्यास ॥

यहाँ 'जलद' से तो प्रत्यक्ष ही कथन है, परंतु कहनेवाले का तात्पर्य एक अन्य जन को सुनाने का भी है जिससे वह कुछ आशा रखता था ।

२—सो०—अलि कदंबा^३तरु पाय, सुमन^४भरो मकरंदमय^५ ।

तजि करील पै जाय, निगस^६अपत^७परसे कहा ॥

१ वायु । २ घाम । ३ पुष्प, सुंदर मन । ४ रसहीन । ५ पत्रहीन, अप्रतिष्ठित ।

यहाँ प्रत्यक्ष कथन भौरे से और सुनाना एक ऐसे व्यक्ति को है जो सर्वोत्तम सुन्दर वस्तु पाकर भी एक नीरस वस्तु पर प्रेम रखता है ।

३—सवैया

दल'देखो नहीं अस जाड़ो बड़ी अरु घाम घनो जल क्यों हरिहै ।
कहि 'केसव' बात बहै, दिन दानव दहै, धर धीरज क्यों धरिहै ।
फलहै फुलि नाहि कि तौलों तुही कहि तो पहुँ भूख सही परिहै ।
कछु छाँह नहीं सुख सोभ नहीं रहि कीर' करीर कहा करिहै ।

यहाँ कीर प्रति तो प्रगट कथन है, पर सुनाना है एक ऐसे व्यक्ति को जो एक धनधाम्यसंपन्न पुरुष को छोड़कर (करीलवृक्ष समान पत्ररहित) एक निर्धन मनुष्य का आश्रय लेना चाहता है ।

४—कवित्त—निपट कठोर धार कंटकन पूरघां तम

मूढ मन महा कहा गूढ गुन गावैगो ।

कहै 'रघुनाथ' ताते आपनो अमारो' चेन,

हेन मत करै जानि ही में सोच छावैगो ॥

गंध को न लेस मकरद की न बुंद यामें,

छायाहू न सुखद सँताप तन तावैगो ।

साहेब सुजान अलि मेरी कही मान,

पर अपत करील सेये तू न सुख पावैगो ॥

सूचना—यह अलंकार गूढोक्ति से मिलता-जुलता है । दोनों का भेद 'गूढोक्ति' की सूचना में दिखलाया गया है ।

(३५) पर्यायोक्ति

दो०—पर्यायोक्ति प्रकार है, कछु रचना सों बात ।

मिस करि कारज साधिए, जो हित चितहि सोहात ॥

सूचना—इस अलंकार को अंगरेजी में पेरीफ्रेसिस (Periphrasis) कहते हैं ।

(१) 'कछु रचना सौ बात'—जो बात कहनी हो उसे सीधे शब्दों में न कहकर कुछ घुमा फिराकर कहना । (कोई-कोई इस अलंकार में व्यंग्य मुख्य मानते हैं, परंतु हम ऐसा नहीं मानते) जैसे—कहना हो कि 'अमुक व्यक्ति मर गया' । इस बात को इन्हीं शब्दों में न कहकर यों कहें कि 'अमुक व्यक्ति को सुरराज ने अपने पास बुला लिया' यह पर्यायोक्ति है ।

१—दो०—जाके लोचन^१ करत हैं, कुबलय^२ कंज^३ प्रकास ।

सो भाऊ भूपाल के, करत हिए में बास ॥

२—दो०—कत भटकत गावत न क्यों, वाही के गुन गाथ ।

जाके लोचन ही किये, बिन बलयनि^४ रति-हाथ ॥

यहाँ स्पष्ट शब्दों में यह न कहकर कि 'शंकर का भजन कर' यों कहा कि क्यों भटकता फिरता है, उसी के गुणगाथ क्यों नहीं गाता, जिसके नेत्रों ने रति के हाथों को बिना कंकण के कर दिया (अर्थात् काम को जलाकर रति को विधवा कर दिया था) ।

३—दो०—सीताहरन तात जनि, कहेहु पिता सन जाय ।

जो मैं राम तो कुलसहित, कहहि दसानन आय ॥

इसमें रामजी ने सीधे शब्दों में यह न कहकर कि 'मैं रावण को मारूँगा' इस प्रकार कहा जैसा कि दोहे के उत्तरार्ध से प्रगट है ।

(२) 'मिस करि कारज साधिय'—जहाँ किसी बहाने से इच्छित कार्य के साधन का वर्णन हो, वहाँ दूसरी पर्यायोक्ति होगी । यथा—

१—चौपाई

नाथ ! लखनपुर देखन चाहहीं । प्रभु-सँकोच डर प्रगट न कहहीं ।
जो राउर अनुसासन^१ पाऊँ । नगर दिखाय तुरत लै आऊँ ॥

यहाँ स्वयं रामजी को जनकपुर देखने की इच्छा थी, पर लक्ष्मण की इच्छा का बहाना करके आका मँगाते हैं ।

२—दो०—देखन मिस मृग बिहँग-तरु, फिरहि बहोरि-बहोरि^२ ।
निरखि-निरखि रघुबीर-छवि, बाढ़ै प्रीति न थोरि ॥

३—चौपाई

पुर-बालक कहि-कहि मृदु-बचना । सादर प्रभुहि दिखावहि-रचना

४—दो०—सब सिसु यहि मिस प्रेम-बस, परसि मनोहर गात ।

तनु पुलकहि अति हर्ष हिय, देखि-देखि दोउ भ्रात ॥

५—दो०—बसमास सुनि साखन सन, साईं^३ चलत-सवार^४ ।

लै कर बीन प्रबीन तिय, गायो राग मलार ॥

यहाँ मलार राग आकर पानी बरसा देने से स्वामी का विदेश-गमन रोक दिया । इसके बहाने से इच्छित कार्य साधन किया ।

सूचना—इस अलंकार में मिस, व्याजदि शब्दों का कथन अनिवार्य नहीं है । चाहे कथन न रहे, चाहे और प्रकार से कहे । कैववापन्हुति में एक वस्तु के छिपाने के हेतु से मिस या व्याज से दूसरी वस्तु प्रगट की जाती है, और इस अलंकार में किसी विशेष इच्छित कार्य साधन के लिए कोई युक्तियुक्त क्रिया की जाती है, जिसे केवल मिस वा छठ कहा जा सकता है ।

(३६) व्याजस्तुति (द्विधा)

(प्रथम)

दो०—देखत तो निंदा लगै, समुझे अस्तुति होय ।

व्याजस्तुति भूषन सबै, ताहि कहैं कबि लोय ॥

सूचना—इस अलंकार को अंगरेजी में पेरीफ्रेसिस (Periphrasis) कहते हैं ।

(१) 'कछु रचना सों बात'—जो बात कहनी हो उसे सीधे शब्दों में न कहकर कुछ घुमा फिराकर कहना । (कोई-कोई इस अलंकार में व्यंग्य मुख्य मानते हैं, परंतु हम ऐसा नहीं मानते) जैसे—कहना हो कि 'अमुक व्यक्ति मर गया' । इस बात को इन्हीं शब्दों में न कहकर यों कहें कि 'अमुक व्यक्ति को सुरराज ने अपने पास बुला लिया' यह पर्यायोक्ति है ।

१—दो०—जाके लोचन^१ करत हैं, कुबलथ^२ कंज^३ प्रकास ।

सो भाऊ भूपाल के, करत हिए में बास ॥

२—दो०—कत भटकत गावत न क्यों, वाही के गुन गाथ ।

जाके लोचन ही किये, बिन बलयनि^४ रति-हाथ ॥

यहाँ स्पष्ट शब्दों में यह न कहकर कि 'शंकर का भजन कर' यों कहा कि क्यों भटकता फिरता है, उसी के गुणगाथ क्यों नहीं गाता, जिसके नेत्रों ने रति^५ के हाथों को बिना कंकण के कर दिया (अर्थात् काम को जलाकर रति को विधवा कर दिया था) ।

३—दो०—सीताहरन तात जनि, कहेहु पिता सन जाय ।

जो मैं राम तो कुलसहित, कहहि दसानन आय ॥

इसमें रामजी ने सीधे शब्दों में यह न कहकर कि 'मैं रावण को मारूँगा' इस प्रकार कहा जैसा कि दोहे के उत्तरार्ध से प्रगट है ।

(२) 'मिस करि कारज साधिय'—जहाँ किसी बहाने से इच्छित कार्य के साधन का वर्णन हो, वहाँ दूसरी पर्यायोक्ति होगी । यथा—

१—चौपाई

नाथ ! लखनपुर देखन चाहहीं । प्रभु-सँकोच डर प्रगट न कहहीं ।
जो राउर अनुसासन^१ पाऊँ । नगर दिखाय तुरत लै आऊँ ॥

यहाँ स्वयं रामजी को जनकपुर देखने की इच्छा थी, पर लक्ष्मण की इच्छा का बहाना करके आजा मँगते हैं ।

२—दो०—देखन मिस मृग बिहँग-तरु, फिरहि बहोरि-बहोरि^२ ।
निरखि-निरखि रघुबीर-छवि, बाढ़ै प्रीति न थोरि ॥

३—चौपाई

पुर-बालक कहि-कहि मृदु बचना । सादर प्रभुहि दिखावहि रचना

४—दो०—सब सिसु यहि मिस प्रेम-बस, परसि मनोहर गात ।

तनु पुलकहि अति हर्ष हिय, देखि-देखि दोउ भ्रात ॥

५—दो०—पूसमास सुनि साखन सन, साईं^३ चलत सवार^४ ।

लै कर बीन प्रबीन तिय, गायो राग मलार ॥

यहाँ मलार राग आकर पानी बरसा देने से स्वामी का बिदेश-गमन रोक दिया । इसके बहाने से इच्छित कार्य साधन किया ।

सूचना—इस अलंकार में मिस, व्याजदिशब्दों का कथन अनिवार्य नहीं है । चाहे कथन करे, चाहे और प्रकार से कहे । कैवलापन्हुति में एक वस्तु के छिपाने के हेतु से मिस या व्याज से दूसरी वस्तु प्रगट की जाती है, और इस अलंकार में किसी विशेष इच्छित कार्य साधन के लिए कोई युक्तियुक्त क्रिया की जाती है, जिसे केवल मिस वा छठ कहा जा सकता है ।

(३६) व्याजस्तुति (द्विधा)

(प्रथम)

दो०—देखत तो निंदा लगै, समुझे अस्तुति होय ।

व्याजस्तुति भूषन सबै, ताहि कहैं कबि लोय ॥

१—दो०—कहा कहौं कहत न बनत, सुरसरि नेरी रीति ।

ताके तू मूँड़े^१ चढ़ै, जो आवै करि प्रीति ॥

इसे देखने में ता गंगा की निंदा-सी जान पड़ती है, समझने से यों स्तुति होती है कि जो प्रेम सहित तेरे पास आता है उसे तू महादेव बना देती है और फिर उसकी जटा में बैठ जातो है ।

२—दो०—भसम जटा बिष अहि-सहित, गंग कियो तैं मोहि ।

भोगी तैं जोगी कियो, कहा कहौं अब ताहि ॥

३—दो०—जमुना तुम अविवेकिनी, कौन लिया यह ढंग ।

पापिन सों निज बंधु^२ को, मान करावति भग ॥

—(पद्माकरकृत गंगालहरी सं)

४—कवित्त—जोग जय जागै^३ छाँड़ि जाहु ना परागै^४ भैया,

मेरी कही आँखिन के आगे सु तो आवैगी ।

कहै 'पद्माकर' न ऐहै काम सरसुनी,

साँचह कलिंदी^५ कान करन न पावैगी ॥

लैहै छीनि अंबर^६ दिगंबर कै जोरावरी^७,

बैल पै चढ़ाय फेरि सैल पै चढ़ावैगी ।

मुंडन के माल की भुजंगन के जाल की,

सुगंगा गजखाल को खिलत^८ पहिरावैगी ॥

५—कवित्त—एक महापातकी स्वगात की दसा बिलोकि,

देत यों उराहनो सु आठहूँ पहर है ।

मीच समै तेरो उत आप^९ गया कंठ इत,

व्यापि गयो कंठ कालकूट^{१०} सा जहर है ॥

आप चढ़ो सीस मोहि दीन्ही बकसीस,

१ सिर । २ आई (बस) । ३ यज्ञ । ४ प्रयाग । ५ यमुना । ६ वस्त्र ।

७ बरखस । ८ पोशाक । ९ जड़ । १० हालाहक ।

औ हजार सोसवारे की लगाई अटहर है।

मोहि करि गंगा अंग-अंगन भुजंगा बाँधो,

परी मेरी गंगा तेरी अद्भुत लहर है ॥

६—वरदा—कुजनपाल^१ गुनवर्जित^२, अकुल^३ अनाथ^४ ।

कहहु कृपानिधि राउर, कस गुननाथ ॥

सूचना—पदमाकर कृत 'गंगालहरी' में इस अलंकार के बहुत उत्तम उदाहरण हैं। वितयपत्रिका में 'बावरो रावरो नाह भवानी' वाला पद इसी अलंकार में कहा गया है।

(दूसरी)

दो०—कीन्हे पर-अस्तुति जहाँ, पर-अस्तुति दरसाय।

ताहू को व्याजस्तुतै, कहैं कबिन के राय ॥

१—चौपाई

जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आप पुर कौनि भलाई ॥

यहाँ दूत की बड़ाई से दूत के मालिक (रामचंद्रजी) की बड़ाई भलकती है।

२—दा०—या वृंदावन-बिपिन में, बड़भागी मम कान।

जिन मुरली की तान सुनि, किय हर्षित अंग आन^१ ॥

यहाँ कानों की बड़ाई से मुरली की अत्यंत बड़ाई प्रगट होती है।

(३७) व्याजनिंदा (द्विधा)

(प्रथम)

दो०—अस्तुति कीन्हेहू जहाँ, निंदा ही दरसाय।

ताहि व्याजनिंदा कहैं, कबि कोबिद हरषाय ॥

१ जटा। २ बुरे लोगों को पालनेवाले, पृथ्वी के लोगों को पालने-
वाले। ३ गुणहीन, निर्गुण। ४ कुलहीन, जिसका कोई कुल न हो।
५ दीन, जिसके ऊपर कोई स्वामी न हो। ६ अन्य।

१—दो०—सेमर तू बड़ भाग है, कहा सराह्यो जाय ।

पंछी करि फल आस तोहि, निस-दिन-सेवहि आय ।

२—चौपाई

राम साधु तुम साधु सुजाना । राम मानु तुम भलि पहिचाना ॥

३—चौपाई

धन्य कीस^१ जो निज प्रभु काजा । जहँ तहँ नाचहि परिहरि लाजा ॥

नाचि कूदि करि लोष रिभाई । पति-हित करत कर्म निपुनाई ॥

४—चौपाई—अहो मुनीस महाभट-मानी ।

५—चौपाई

नाककान-बिनु भगिनि निहारी । छमा कीन्ह तुम धर्म बिचारी ॥

साजवंत तुम सहज सुभाऊ । निजगुन निजमुख कहसि न काऊ^२ ॥

(दूसरी)

दो०—औरै की निंदा किए, पर की निंदा होय ।

निंदा-व्याज तहाँ कहैं, कबि कोभिद सब कोय ॥

१—दो०—दई^३ निरदई सो भई, 'दास' बड़ाये भूल ।

कमलमुखी के जिन कियो, हिय कठिनई अतूल^४ ॥

यहाँ दई की निंदा से कमलमुखी (नायिका) की निंदा
फलकती है ।

२—दो०—जु हरि हमारे जीव निजु^५ ताहि चलयो लै दूर ।

को सो जो यहि कूर^६ को, धरयो नाम अकूर ॥

यहाँ अकूर की निंदा से नामकरण करनेवाले की भारी
निंदा प्रगट होती है ।

सूचना—इस अलंकार को अँगरेजी में आयरनी (Irony) और
फारसी तथा उर्दू में 'हजो मलोह' कहते हैं ।

(३८) आक्षेप

दो०—कारज के आरंभ ही, जहाँ कीजे प्रतिषेध ।
 आक्षेप तासों कहत, तासु तीन हैं भेद ॥
 उक्ताक्षेप सु प्रथम है दुतिथ निषेधाक्षेप ।
 तीजो सब कबिजन कहैं सुंदर व्यक्ताक्षेप ॥

विवरण—आक्षेप का अर्थ है 'बाधा' वा 'मुमानियत' अतः
 आक्षेपालकार से मतलब है ऐसी क्रिया वा ऐसा कथन करना
 जिससे कार्य में बाधा डालने का तात्पर्य सिद्ध हो । इसके
 तीन भेद हैं ।

(१)—उक्ताक्षेप

दोहा

जहाँ कथित निज बात को, समुक्ति करिय प्रतिषेध ।
 उक्ताक्षेप तहाँ कहैं, कबिजन मति-उत्पेध ॥

जहाँ अपनो ही कहीं हुई प्रथम बात का निषेध करके
 दूसरी बात कही जाय ।

१—दो०—तुव मुख बिमल प्रसन्न अति, रहो कमल-सो फूलि ।
 नहि नहि, पूरन चंद सो, कमल कथा मैं भूलि ॥

२—दो०—प्रभु प्रसन्न है दीजिए, स्वर्ग-धाम को बास ।
 अथवा याते भल कहा, करहु आपनो दास ॥

३—दो०—सानुज पठइय मोहि बन, कीजिय सर्वाह सनाथ ।
 नतरु फेरिए बंधु दोउ, नाथ चलौ मैं साथ ॥

सूचना—स्मरण रखना चाहिए कि इसमें निज कथित प्रथम बात का
 निषेध इसलिए किया जाता है कि दोबारा उससे बढ़कर बात कही जाय ।

१ श्रेष्ठ बुद्धिवाले । २ नहीं तो ।

(२) निषेधाक्षेप

दो०-पहले करै निषेध जो, फिर ठहरावै ताहि ।

कहत निषेधाक्षेप तेहि, कबिजन सकल सराहि ॥

विवरण-पहले किसी बात से इनकार किया जाय फिर अन्य प्रकार से उसका स्थापना की जाय । यथा—

१—चौपाई

कबि न होउँ नहिं चतुर कहाऊँ । मति-अनुरूप रामगुन गाऊँ ।

२—चौपाई

दुसरेमुख मैं न बसीठी आयो । अस बिचारि रघुनाथ पठायो ।

३—दो०—मैं न मान मेरो चहति कहति यहै उर धारि ।

४—कबित्त—सरजा सिवा पर पठावत मुहीम^१ काज,

हजरत हम मरिबे ते नाहिं डरते ।

चाकर हैं उजुर कियो न जाय नेक पै,

कछू दिन उवरते तो घने काज करते ॥

५—सषैया

मोहि तू जानत है कपि हौं यह मैं कपि हौं नहीं, काल हौं तेरो ।

(३) व्यक्ताक्षेप

दो०-करिबे की आज्ञा प्रगट, छिप्यो निषेध जु होय ।

व्यक्ताक्षेप कहैं तहाँ, कबिकोबिद सब कोय ॥

१—दो०—राज देन कहि दीन बन, मोहि न साच लवलेस ।

तुम बिन भरतहि भूपतिहि, प्रजहि प्रचंड कतिस ॥

२—दो०—सुख सों पीय सिधारण, पग-पग हाय कल्याण ।

हौं हूँ जनमौंगो तहाँ, तुव जेहि देस पयान^१ ॥

३—कविस्त—जो हों कहीं रहिए तो प्रभुता प्रगट होती,
चलन कहीं तो हित-हानि नाहि सहनो ।
भावै सो करहु तो उदास-भाव प्राननाथ,
साथ लै चलहु कैसे लोकसाज बहनो^१ ॥
'केसौराय' की सौं^२ तुम सुनहु छबीले लाल,
चले ही बनत जायै नाहि राज^३ रहनो ।
तैसिए सिखाओ सीख तुमही सुजान पिय,
तुमहि चलत मोहिं जैसो कछु कहनो ॥

(३१) विरोधाभास

दो०—द्रव्य क्रिया गुण जाति में, भासत जहाँ विरोध।
कहत विरोधाभास तेहि, बुधजन सहित सुबोध।

विवरण—जहाँ विरोधी पदार्थों का वर्णन किया जाय वह विरोधाभास अलंकार है । ऐसा वर्णन वर्णनीय की विशेषता वा उत्कृष्टता जताने के लिए होता है । प्रस्तार करने से इसके दस भेद हो जाते हैं । जैसे—

जाति का विरोध—(१) जाति से (२) गुण से (३) क्रिया से (४) द्रव्य से ।

गुण का विरोध—(१) गुण से (२) क्रिया से (३) द्रव्य से ।

क्रिया का विरोध—(१) क्रिया से (२) द्रव्य से ।

सूचना—कुछ उदाहरण लिख देते हैं । पाठक स्वयं बिचार कर लें कि किसका किससे विरोध है ।

(सूरसागर से)

१—पद—चरन कमल बदी हरि-राई^१ ।

जाकी कृपा पंगु गिरि लघै अथे को सब कुछ दिखराई ।

१ लोक साज की रक्षा । २ गप्य । ३ हे प्रियतम । ४ भोक्तृत्व ।

बहिरो सुनै झूक^१ पुनि बोलै रंक^२ चलै सिर छत्र धराई ।
 'सूरदास' स्वामी करुनामय बार-बार बंदों तेहि पाई^३ ।

(रामायण से)

२—दो०—भरखाज सुनु जाहि जब, होत बिघाता, बाम ।
 धूरि मेरु सम जनक^४ जम, ताहि व्याल सम दाम^५ ॥

३—चौपाई—तन से कुलिस कुलिस तन करई ।

४—चौपाई

गरल^६ सुधम, रिपु करै मिलाई । गमेपद^७ सिंधु, अनल^८ सितलाई ॥

गरुड सुमेर रेनु^९—सम लाही । राम-कृपा करि चितवहि जाही ॥

५—दां०—पवन अचल गिरि रेनु पुनि, जलधि नहीं गंभीर ।

धरा आतिहि लघु हांति है, कृपादृष्टि रघुवीर ॥

६—कवित्त—आँको रघुवीर की बिलांक के अचेतन भ,
 चेतन, अचेतनहू चेतन मे देख्यौ आज ।

७—दो०—सो अज^{१०} प्रेम भगति बस कौसल्या की गोद ।

८—कवित्त—कुलिस कठोर कूर्म-पीठ से कठिन अति,
 हठि न पिनाक काहू चपरि^{११} चढ़ायो है ।

'तुलसी' सो राम के सरोजपानि^{१२} पसंत ही,
 दूटो मानो बारो ते^{१३} पुरारि^{१४} ही पढ़ायो है ॥

९—सवैया

आ मुख की मधुरई कहा कहौ मीठी लगै अखियान लुनाई^{१५} ।

१०—दो०—लाल तिहारे दृगन की, कहौ रीति यह कौन ।

आसों लागै पलक^{१६} दृग, लागै पलक पलौ न ॥

१ गुँगा । २ दरिद्र । ३ पैर । ४ ब्रह्मा । ५ पिता । ६ रस्ती । ७
 विष । ८ गो खुर से बने गड्ढे में अँटनेवाला जल । ९ अग्नि । १० धूल ।
 ११ अजन्मा । १२ शीघ्रता से । १३ कर-कमल । १४ लड़कपनसे । १५ महादेव ।
 १६ काचपय । १७ क्षणभर के लिये ।

११—दो०—तन्त्री-नाद^१ कवित्त-रस, सरस राग रति रंग ।

अनबूड़े बूड़े तिर्रे, जे बूड़े सब अंग ॥

१२—दो०—किता मिठास दयो दई इते सलाने रूप ।

सूचना—(१) यह अलंकार अद्भुत रस की कविता के लिये बड़े काम का है । (२) इससे मिलता जुलता विषमालंकार का दूसरा भेद है । दोनों की पहचान भली भाँति कर लेनी चाहिये । दोनों में भेद यह है कि इस विरोधामास में जो विरोध कथन किया जाता है वह केवल आभासमात्र (नितांत झूठा) है । विषमालंकार के दूसरे भेद में जो विरोध कहा जाता है वह सत्य होता है और केवल कारणाकरण के संबंध ही में कहा जाता है । (३) इस अलंकार को फारसी तथा उर्दू में मुहतमिलुलु 'जिहैन' कहते हैं ।

(४०) विभावना

किसी घटना के कारण के संबंध में कोई विलक्षण कदरता को जाय, उसे 'विभावना' कहते हैं । इसके छः भेद हैं—

(पहली)

दो०—कारण बिनही होत है, कारज कौनो सिद्ध ॥

१—चौपाई

बिनु पद चलै सुनै बिनु काना ॥ कर बिनु कर्म करै बिधि नाना ॥

आननरहित^१ सकल रस-भांगी । बिन बानी बकता^२ बड़ जोगी ॥

२—पद—केसव ! कहि न जाइ का कहिये ।

देखत तब रचना बिचित्र अति समुक्ति मनहि मन रहिये ।

सून्य भीति^३ पर चित्र रंग नहि तनु-बिनु लिखा चितेरे ॥

... ..

बदन हीन सो प्रसै चराचर पान करन^४ जे जाहि ।

१ बाजे का शब्द । २ अनेक प्रकार से । ३ मुख के बिना । ४ होकें-
वाला । ५ द्वीवार । ६ पीने के लिये ।

३—दो०—सुनत लखन श्रुति नैन बिनु, रसना^१ बिनु रस लेत ।
बास नासिका बिनु लहै, परसै बिता निकेत^२ ॥

(दूसरी)

दो०—हेतु अपूरन ते जहाँ कोरज पूरन होय ।

१—चौपाई

काम कुसुम-धनु-सायक^३ लीन्हें । सकल भुवन अपने बस कीन्हें ।

२—कवित्त—तासों को सिवाजी जेहि दा सौ आदमी सों,
जीत्यों जंग सरदार सौ हजार असवार को ।

३—सवैया

राजकुमार सरोज से हाथन सों गहि संभु-सरासन^४ तोरघो ।

४—सवैया

संकर-पायन में लगु रे मन धोर ही बातन सिद्ध महाई ।

५—दो०—मंत्र परम लघु जासुबस, बिधि हरिहर सुर सर्व ।
महामत्त गजराज कहँ, बस कह अंकुस खर्व^५ ॥

(तीसरी)

दो०—प्रतिबंधक के होत हू होय काज जेहि ठौर ।

१—दो०—अति बिचित्र गाँत रावरी, जग जाहिर जसवंत ।
तेज छत्रधारीनहूँ^६, असहन ताप करंत ॥

२—चौपाई

रखवारे हति बिपिन उजारा । देखत तोहि अछय^७ जेइ मारा ।

३—दो०—नैना नेक न मानहीं, किता कहौ समुभाय ।
ये मुहजोर तुरंग लौं^८, पैचत हू चलि जाँय ॥

जीम। २ स्थान। ३ फूल के धनुष बाण। ४ धनुष। ५ छोटा। ६ राजा
(छाता लगाए हुए)। ७ अक्षय कुमार। ८ थोड़े की तरह।

४—दो०—तुव बेनी नागिन रहै, बाँधी गुनन^१ बनाय ।

तऊ बाम^२ ब्रजचंद को, बदाबदी^३ डसि जाय ॥

सूचना—तऊ, तौभी, इस अलंकार के वाचक हैं ।

(चौथी)

दो०—जाको कारन जो नहीं उपजत ताते तौन ।

१—सवैया

चंपक की लतिका तें सुवास सुमालती की पसरै सुखदै न री ।

कौल^४ के कोस तें गंध गुलाब की आवत है लखि^५ दायक चै न री ॥

‘गोकुलनाथ’ कुहू^६ निसि में यहराका^७ की रातिकी दाह^८ बहै न री ।

देखु कपोत के कंठ ते आली कदै कल कोकिल का बर बैन री ॥

२—दो०—भयो कबु^९ ते कंज^{१०} इक, सोहत सहित विकास ।

देखहु चंपक की लता, देत गुलाब सुवास ॥

३—दो०—बन बिहार थाकी तरुनि, खरे थकाये नैन ।

४—चौपाई—भयो तात निसिचर-कुल-भूषन ।

५—दो०—बोना नाद जु संख सों, होत सुनौ दै ध्यान ॥

(पाँचवी)

दो०—बनरत हेतु बिरुद्ध तें, उपजत है जहँ काज ।

१—दो०—सिय हिय सीतल भो लगे, जरत लंक की भार^{११} ।

२—सवैया

आनन पेन^{१२}-सुधा को हहा तेहि ते इतना बिषवै न बकै तू ।

३—दो०—तुव मुख रबि बालातप^{१३} जु, मरुनायक जसवत ।

अन्य नृपन के कर-कमल, युत-संकाच करंत ॥

१ डोर । २ टेढ़ी । ३ शत बाँधकर, अवश्य । ४ कमल । ५ देखो ।

६ अमावस्या । ७ पूर्णिमा । ८ बंध (गर्दन) । ९ कमल (मुख) ।

१० झाला, लपट । ११ ठीक । १२ बाल सूर्य की धूप ।

४—कवित्त—क्यों न उतपात होइ बैरिन के भुंडन में,
कारे घन उमड़ि अंगारे बरसत हैं^१ ॥

(छठ्ठी)

दो०—कारज सों जहँ होति हैं, कारनकी उतपत्ति ॥

१—दो०—तुव कृपान धुव^२-धूम तें, भयो प्रताप-कृमानु^३ ॥

२—कवित्त—और नदी नदन तें कोकनद^४ होत तेरो,
कर-कोकनद नदी नदी प्रगटत है^५ ॥

३—दो०—कल-कलपद्म सों करघो, जस-समुद्र उतपन्न ॥

४—सवैया

हाय उपाय न जाय कियो ब्रज बृद्धत है बिनु पावस पानी ॥
धारन तें असुत्रान की है चखमोनन^६ तें सरिता सरसानी ॥

(४१) विशेषोक्ति

दो०—विद्यमान कारन बन्यो, तऊ न फल जहँ होय ॥

ताहि बिसेषोक्ति कहैं, कबि कोबिद सब होय ॥

१—सवैया

हाथी हजारन के बल 'केसव' खैंचि थके पट को डर डारे ॥
द्रौपदी का दुहसासन पै तिल अंग तऊ उधरयो न उधारे ॥

२—दो०—त्यौं-त्यौं प्यासेई रहत ज्यों पियत अघाय^७ ॥

सगुन सलोनेरूप की, जु न चख-तृषा^८ बुझाय ॥

३—दो०—लिखन बैठ जाकी साबहि^९, गांह गांह गरुब गरुर^{१०} ॥
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर^{११} ॥

१ काले केशों में बँधे लाल गिरे पड़ते हैं ॥ २ निश्चय ॥ ३ अग्नि
४ कमल ॥ ५ दान के जल से ॥ ६ नेत्र रूरी मछली ॥ ७ छककर ॥ ८ नेत्र
की प्यास (दर्शन की इच्छा) ॥ ९ छबि दिश ॥ १० अभिमान ॥ ११ मूर्ख

४—सवैया

दौलति इंद्र समान बढ़ी पै खुमान को नेक गुमान न आयो ।

५—सा०—लाग न उर उपदेश, जदपि कह्यो सिव बार बहु ।

(४२) असंभव

दो०—अनहोनी सी बात कछु होय असंभव सोय ।

१—सवैया

जोग सिखावन को हमको बहुरथां तुम से उठि धावन^१ ऐहैं ।

ऊधो नहीं हम जानती तीं मनमोहन कूवरी हाथ बिकैहैं ॥

२—कवित्त—पेसो कौन जानत हो ए हो कवि 'रघुनाथ',

बूड़ि घरी छै लौ^२ तरे पानी ही के लरिहैं ।

सीस पर चढ़ि आपु ताली दै करत नृत्य,

नाथ ब्याल-काली^३ कालीदह ते निकरिहैं ॥

३—दो०—को जानै था गोपसुत, गिर धारैगो आज ।

४—दा०—यह को जानत हो जु कपि, जैहैं लका जा रि ॥

५—कवित्त—जासों बैर करि भूप बचै न दिगंत ताके,

दत तोरि तखत तरे तैं^४ आयो सरजा^५ ।

सूचना—'कौन जानता था कि' या इसी भाव के अन्य शब्द इस अलंकार के सूचक हैं ।

(४३) असंगति

दो०—कारन कारज को जहाँ लखौ बिरोधाभास ।

ताहि असंगति जानिये कबि जन सहित हुलास ॥

(असंगति अलंकार के तीन भेद हैं ।)

१—दो०—मैं कै बा^१बिनती करी, मान ठानि दुख दैन ।
कहाँ मधुर मृदु मुख कहाँ, कठिन काठ^२से बैन ॥

२—सवैया

जोग कहाँ मुनि लोगन जोग कहाँ अबला गति है चपला सी ।
स्याम कहाँ अभिराम सुरूप कुरूप कहाँ वह कूबरी दासी ॥

३—चौपाई—कहँ कुंभज^३ कहँ सिधु अपारा ।

४—सवैया

राजकुमार के कंज से पानि^४ कहाँ कहँ संभुसरासन बज्र सो ॥

५—दा०—कहाँ सीप मुक्ता कहाँ, कहाँ कमल कहँ पंक ।

कहँ कस्तूरी मृग कहाँ, बिधि बुधि है सकलंक ॥

६—दा०—को कहि सकै बड़ैन की, लखे बड़ीद्व भूल ।

दोन्हें दर्ई^५ गुलाब के, इन डारन ये फूल ॥

७—चौपाई

जेइ बिधि तुमहि रूप^६ असदीन्हा । तेइ जड़वर^७ बाउर^८ कस कीन्ह^९

८—हरि०—कस कीन्ह वर वीराह जेइ बिधि तुमहि सुदरता दर्ई ।

जो फल चाहिय सुरतरुहि^{१०} सो बरबस बबूरहि लागई ॥

९—सवैया

खारोकियो है पयोनिधि^{११} कोपयकारो^{१२} कियोपिक^{१३} सो अनुमानो ॥

कटक पेड़ गुलाब किए अरु चातक बारहु मास तृपानो^{१४} ।

पंक को अंक^{१५} कियो है मयक में आग कियो है चकार को खानो ।

'सागर मित' सवै परखा^{१६} कर हंसपती^{१७} हर-बाहन^{१८} जानो ॥

१ कितनी ही बार । २ काठ से कड़े । ३ अगस्त्य । ४ हाथ । ५ दैव, ब्रह्मा । ६ सौंदर्य । ७ दूल्हा । ८ पागल । ९ कल वृक्ष । १० समुद्र । ११ जल । १२ कोयल । १३ प्यासा । १४ चिन्ह । १५ देख लिया । १६ ब्रह्मा । १७ वैल ।

(दूसरी)

दो०—कारन औरै रूप को, कारज औरै रूप ।

विषम अलंकृत दूसरो, बरनत है कबिभूष ॥

१—दो०—खड्ग-असित^१ जसवंत को, प्रगट करबो जस सेत ॥

२—बरवै—स्याम गौर दोउ मूरति, लक्ष्मिन-राम ।

इनते भइ सित^२ कीरति, अति अभिराम ॥

३—दो०—उपजे जदपि पुलस्ति-कुल, पावन अमल अनूप ।

तदपि महीसुर^३ साप बस, भये सकल अघरूप^४ ॥

४—दो०—या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहि काय ।

ज्यों ज्यों बूड़ै स्याम^५ रंग, त्यों त्यों उज्ज्वल होय ॥

५—सवैया

श्री सरजा सिव तो जस सेत साँ होत हैं बैरिन के मुंह कारे ।

भूषन तेरे अरुन प्रताप सपेद लखे कुनबा^६ नृप सारे ॥

६—कवित्त—‘भूषन’ भनत महावीर बलकन लाग्यो,

सारी पातसाही^७ के उडाय गये जियरे^८ ।

तमक ते लाल मुख सिवाको निरखि भये,

स्याह मुख नौरग सिपाह मुख पियरे ॥

सूचना—विषमालंकार के इस भेदो को फारसी तथा उर्दू में ‘सनअल तजाद’ कह सकते हैं ।

(तीसरी)

दो०—और भलो उद्यम कियो होत बुरो फल आय ॥

ताहि विषम तीजो कहत बुद्धिवंत कबिराय ॥

१ काला । २ सफेद । ३ ब्राह्मण । ४ काले । ५ काला, श्रीकृष्ण ।
६ वंश । ७ बादशाहत । ८ हृदय ।

१—चौपाई

सीतलसिख^१ दाहक भइ कैसे । चकईहि सरद चाँदनी जैसे ॥

२—चौ०—भलो कहत दुख रउरेहु लागा ।

३—दो०—लोने मुख दीठि न लगै, यों कहि दान्हों ईठ^२ ।

दूनी हूँ लागन लगी, दिये दिठौना दीठ^३ ॥

४—कवित्त—काप बस हूँ कै हिरनाकुस उदित^४,

प्रहलादै मारिवे को भया आपु ही हनो गयो^५ ।

५—कवित्त—जारिवे को चाहन लंगूर जातुधान देखो,

बीर हनुमान जू जराय दई लंका को ।

६—कवित्त—जीतिवे को आये भृगुनंद रघुनंदन को,

जीते गये आपु भये रीते^६ बीरताई सों ॥

सूचना—कई एक कवियों ने 'विषम' अलंकार के ६ भेद लिखे हैं । परंतु विचार करने से जान पड़ता है कि आगे के तीन भेद इसी तीसरे भेद के अन्तर्गत आ जाते हैं ।

(४५) सम

यह विषमालंकार का ठोक विराधी, इसके भी तीन भेद हैं,

(पहला)

दो०—बरनत जहाँ बिसुद्ध मति यथा योग्य को संग ।

प्रथम समालंकार तैहि भाषत बुद्धि उत्तंग ॥

१—सा०—जेइ बिधि रच्यो गांपाल, तेइ ठकुराइन^१ राधिका ।

लखि चखि होत निहाल^२, समसरि जुगुल किसोर की॥

२—दो०—चिरजीवो जारी जुरै, क्यों न सनेह गँभीर ।

को घटि ए वृषभानुजा^३ वे हलधर के बीर^४ ॥

१ शिक्षा । २ इष्ट, सखी । ३ दृष्ट । ४ उद्यत । ५ मार गया । ६ रहित ।
७ स्वामिनी । ८ आनदित । ९ वृषभानु की पुत्री, (वृषभ = बैल + अनुजा = बहन, गाय) । १० बलदेव के भाई, (हलधर = बैल, वीर = भाई) ।

३—चौपाई

जेइ विरंनि^१रनि सीय सँवारी । तेइ स्यामल बर रच्यो बिचारी॥

४—कवित्त—देखे हैं अनेक व्याह सुने हैं पुरान बेद,

बूझें हैं सुजान साधु नरनारि पारखी^२।

ऐसे सम समधी समाज न विराजमान,

राम से न बर दूलहीन सीय सारखी ॥

५—चौपाई

जस दूलह तस बनी बराता । कौतुक^३बिबिध होहिं मगुजाता॥

६—दा०—कुवजा को कूबर मधुप, अहै त्रिभंगिहि^४ जाग ।

(विनय पत्रिका से)

७—पद—देव ! तू दयाल, दीन हौं तू दानि, हौं भिखारी ।

हौं प्रसिद्ध पातकी^५ तू पाप-पुंजहारी ॥ १ ॥

नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो ।

मो समान आरत^६नहिं आरतिहर^७तोसो ॥ २ ॥

ब्रह्म तू, हौं, जीव हौं, तू ठाकुर^८, हौं चेतो^९।

... .. ॥ ३ ॥

तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै ।

ज्यों त्यों 'तुलसी' कृपालु चरन-सरन पावै ॥ ४ ॥

८—दो०—मां सम दीन न दीन हितु, तुम समान-रघुबीर ।

अस बिचारि रघुवंसमनि, हरहु बिषम भव-भार^{१०}॥

(दूसरा)

दो०—कारन के सम बरनिये कारज को जेहि ठौर ।

देखि सरिस गुन रूप तहँ, बरनत हैं 'सम' और॥

१ अह्मा । २ परखने वाले । ३ खेल । ४ तीन जगह (ग्रीवा, कमर, पैर)
से टेढ़े, श्रीकृष्ण । ५ पापी । ६ दुःखी । ७ दुःख हरने वाला । ८ स्वामी ।

९ दास । १० सांसारिक पीड़ा ।

१—दो०—सिय जु दुसह दुख सहि लियो सुता^१ भूमि की होश ।

२—सो०—जग जीवन का दंद^२, उदय हांत ही तम है ।

छीर-सिधु को नद^३, क्यों न उजेरो हांय ससि ॥

३—दो०—मधुप ! बालपन हो पियां, दूध पूतना कर ।

ताही ते दासी रुची, यामं कछु न फेर ॥

(तीसरा)

दो०—ताकी सिद्धि अमिष्ट बिनु, उद्यम जाके अर्थ ।

ताको सम तीजो कहैं, जिनकी बुद्धि समर्थ ॥

१—चौपाई

दुंदुभि अस्थि^४ ताल^५ दिखराये । बिनु प्रयास^६ रघुबीर ढहाये ॥

सुग्रीव ने राम की परीक्षा लेनी चाही । राम ने तुरंत परीक्षा दी और परीक्षा में उत्तीर्ण हुए ।

२—दो०—हरि दूंदन ब्रज में गई, पाये गिरधर लाल ।

३—चौ०—छुवताहि दूट पिनाक^७ पुराना ।

४—चौ०—छुवत दूट रघुपतिहि न दापू ।

५—दो०—आत उतंग^८ गरि पादक^९ लीलहि^{१०} लेहि उठाय ।

आनि^{११} देहि नल नीलहि, रचहि ते सेतु^{१२} बनाय ॥

६—चौपाई

सैल बिसाल आनि कपि देहीं । कटुक^{१३} श्व नलनील सो लेहीं ।

७—चौपाई

तुरत बैद्य तब कीन्ह उपाई । उठि बैठे लछिमन हरपाई ॥

(४६) विचित्र

दो०—जहाँ करत उद्यम कछु, फल चाहत बिपरीत ।

बरनत तहाँ विचित्र कहि, जे कबिता के मीत ॥

१ पुत्र । २ दुःख । ३ पुत्र । ४ हड्डा । ५ ताड़ । ६ प्रयत्न । ७ शिव का अनुष । ८ ऊँचा । ९ वृक्ष । १० खेल में । ११ लाकर । १२ फल ।

- १—दो०—जीवन हित प्रानहि तजत, नवत उँचाई हेत ।
 सुख कारन दुख सग्रहैं, बहुधा पुरुष सचेत ॥
- २—दो०—क्यों नहि गगा को सुमिरि, दरस परस सुख लेत ।
 जाके तट में मरत नर, अमर होन के हेत ॥
- ३—कवित्त—करिबे को उज्जल सुधा सो अभिराम देखो,
 मन ब्रजवाम रंगती है स्यामरग^१ में ।
 ४—सवैया
- भवसागर के तरिबे के लिए बहु डूबत तीरथ नीर मँभारे ।
 ५—दो०—इक सौ इक निजु पूरवज, तृप्त करन के हेत ।
 अनछाने जव-चून^२ को, पिड गया में देत ॥
- ६—दो०—अमर होन हित समर महँ जूझत पुरुष पुनात ॥

(४७) अधिक

इस अलंकार में आधार और आधेय का उत्कर्ष कहा जाता है। इसके दो भेद हैं।

(प्रथम)

दो०—जहाँ बड़े आधार ते, अधिक होय आधेय ।

अर्थात् बड़े आधार से भी आधेय का बड़ा कहना। जैसे:—

१—दो०—जामे भारी भुवन सब, गँवई से दरसात ।

तौह अखड ब्रह्मंड में, तेरो जस न अमात^३ ॥

२—सवैया

सातौ समुद्र धरी बसुधा यह सातो गिरीस धरे सब आरे ।

सात ही दीप सबै दरम्यान में होहिगे खंड किते तेहि ठारे ।

‘दास’ चतुर्दस लोक प्रकासित हैं ब्रह्मंड इकीसहि जारे ।

एते ही में भजि जैहै कहाँ खल श्रीगुनाथ सों बैर बिधारे^४ ।

१ कालारंग, श्रीकृष्ण का प्रेम । २ नून, आँटा । ३ अँदता, उँट और करके ।

इसमें व्यंग से यह बात निकलती है कि श्रीराम जी का अमल देखल इससे भी अधिक स्थानों में है, अर्थात् इतने आधार से बहुत बड़ा है ।

(दूसरा)

दो०—जहँ अति लघु आधार महँ, धरै बड़ो आधेय।

अर्थात् बड़े आधेय का छोटे आधार में रखना । जैसे—

१—दो०—जो यदुपति के उदर में, सिगरो बसत जहान ।

सुख सों राखति ताहि नू, हियरे हार-समान ॥

२—दो०—बिस्वामित्र मुनीस की, महिमा अपरपार ।

करतलगत आमलक^१-सम, जिनको सब संसार ॥

३—चवपैया

ब्रह्मांड-निकाया^२ निर्मित माया रोम-रोम प्रति वेद कहै ।

ममउदर सा बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै ।

४—दो०—व्यापक ब्रह्म निरंजन, निगुन विगत-विनाद ।

सा अज प्रेम-भगति-बस, कौसल्या की गोद ॥

५—दो०—तुम जां गिरिवर कर धरयो, सां है हलकी बात ।

गिरि-समेत मैं उर धरयो, नेकौ ना गरुआत ॥

(४८) अल्प

दो०—अति छोटे आधेय ते, अति छोटी आधार ।

ताहि अल्प भूषन कहैं, जे सुबुद्धि-आगार ॥

अर्थात् अत्यंत सूक्ष्म आधेय की अपेक्षा आधार का अति सूक्ष्म वर्णन करना इस अलंकार का मुख्य उद्देश्य है । यथाः—

१—वरवा—अव जीवन की हे कपि, आस न मोहि ।

कन गुगिया की मुंदरी, कँवना होहि ॥

जानकीजी हनुमानजी से कहती हैं कि छिगुनी का छल्ला (अति छोटा छल्ला) हाथ में कंकण की तरह होता है (अर्थात् इतनी दुबली हो गई है)।

यहाँ छल्ला आधेय और कर आधार है। अति छोटे आधेय से आधार का और भी सूक्ष्म कहा गया है।

२—दो०—राम-राम-प्रति राजहीं, कांठि-कांठि ब्रह्मांड।

३—दो०—भुजा भई अति दूबरी, कंकन कीन्हों छाप।

(मुगारिदान की संमति)

चौपाई—रम्य होय जेहि ठाँ अलपाई।

अल्प अलंकृत सो सुखदाई ॥

इस परिभाषा से आधार और आधेय का भगड़ा मिट जाता है। हमारी भी यही संमति है कि इस अलंकार के लिये आधार और आधेय का भगड़ा न लगाना चाहिए। मनोरंजक अल्पता के वर्णन में इसे स्वच्छंद विचरने देना चाहिए।

(४६) अन्योन्य

दो०—जो जासों जैसो करै, सो तासों तस कीन।

अन्योन्यालंकार तेहि, भाषैं सब मति-पीन ॥

१—चौपाई

मुनि रघुबीर परस्पर नवहीं। वचन-अगोचर^१ सुख अनुभवहीं।

२—दो०—सर की सोभा हंस है, राजहंस की ताल।

३—सवैया

वे उनको अपराध करैं नहिं, वे उनको न उदास करैं चित।
वे मित^२ राखे रहैं उनकी 'रघुनाथ' वे राखे रहैं उनकी मित ॥

१ जो वचनों द्वारा न कहा जा सके, अनिर्वचनीय। २ प्रेम-भाव की मर्यादा।

प्रेम पगे दोउ आपुस में यहि भांति बरोबर क्यों न बड़े हित ।
वे सुख देत रहैं उनको नित वे सुख देत रहैं उनको नित ॥

४—दो०—सब्द सु सोभा अर्थ की देत बढाय निहार ।

त्योही सोभा सब्द की बढ़वत अर्थ 'मुरार' ॥

५—चौ०—ससि सों निसा निसा सों ससि भल ।

६—चौ०—कबि सों सभा सभा सों कबिवर ।

७—दो०—रामचंद्र बिनु सिय दुखी, सिय बिनु उत रघुराय ।

८—सो०—मनमोहन तन घन, घन सु रमनि-राधिका-मार ।

भीराध-मुखचंद को गोकुलचंद चकोर ॥

(५०) विशेष

इस अलंकार के तीन भेद हैं ।

(पहला)

दो०—जहँ जाहिर आधार बिनु, है आधेय सुरंज ।

१—दो०—सुभदाता, सूरों, सुकबि, सेंट करै आचार ।

बिना देहह 'दास' ये जीवित हैं संसार ।

२—दो०—बंदनीय केहिके नहीं, वे कविद मतिमान ।

स्वरग गयेह काव्यरस, जिनको जगत^१ जहान ।

३—सर्वैया

सैनप^२केते लपेटि लंगूर सों दीन्हे उडाय फटे कहरात हैं ।

सागर व्योम के बीच लटे^३उलटे दल ऊपर ते मँडरात हैं ॥

४—दो०—बिनु बारिद बिजुरी बिना, बारिलसत जुगमीन ।

बिधु ऊपर तम-तोम^४ है निरखी रीति नवीन ॥

५—कवित्त—मार के करैया अरि अमरपुरै^५ गे तऊ,

अजौं मारु-मारु सोर होत है समर में ।

१ जगमगाता है । २ सेनापति । ३ लटके हुए । ४ समूह । ५ स्वर्ग ।

(दूसरा)

दो०—धोरे ही आरंभ में, लाभ अलभ्य बलान ।

१—दो०—पाइ चुके फन चारहु करि गंगाजल पान ।

२—सवैया

आज की या छबि देखि सखी अब देखिवे को न रहो कुछ बाका ।

३—चौपाई

कपि तव दरस सकल दुख बीते । मिले आजु मोहि राम पिरिते ।

(तीसरा)

दो०—वस्तु एक जहँ युक्ति तें, बहु थल बरनी जाय ।

१—दो०—घर बाहर अव^३ ऊ^४धो सब ठाँ राम लखाय ।

२—दो०—सावत जागत दिसि-विदिसि, देखि परें घनस्थाम ।

कंस-हृदय आठहु पहर, कृष्ण करें विश्राम ॥

२—चौपाई

सती दीख कौतुक^३ दग जाना । आगे राम सहित सिय भ्राता ।

फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा । सहित बंधु सिय सुंदर भैया ।

जहँ चितवै तहँ प्रभु आसीना^४ । सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना ।

५—चौपाई

सीयराम मय सब जग जानी । करौं प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

५—दो०—निज प्रभुमय देखहिं जगत, का सौं करैं बिरोध ।

६—दो०—गोपिन संग निसि सरद की रमत रसिक रस रास ।

लहाछेह^४ अति गतिन को, सवन लखे मिज पास ॥

७—दो०—जल में थल में गगन में, जड़ चेतन में 'दास' ।

चर अचरन में एक है, परमात्म-प्रकास ॥

सूचना—यह अलंकार पर्याय अलंकार से मिलता-जुलता है। भेद यह है कि इसमें एक वस्तु का 'एक ही समय' में 'बहु थलों' में होना कहा जाता है और पर्याय में एक ही वस्तु का बहु थलों में क्रमशः आश्रय लेना वर्णन किया जाता है।

(५१) व्याघात

व्याघात = धक्का—इसके दो भेद हैं।

(प्रथम)

दो०—एकहि वस्तु जहाँ कहूँ, करै सुकाज बिरुद्ध ।

प्रथम तहाँ व्याघात कहि, बरनै कवि मतिमुद्ध ॥

१—दो०—जासो काहत जगत के बंधन दीनदयाल ।

ता चितवनि सों तियन के, मन बाँधे गोपाल ॥

२—सवैया

जान उतारत हो तन-ताप^१ सो जारत आहु सुधाधर सोई ।

३—सवैया

तू सबको प्रतिपालनहार विचारे भतार^२ न मास हमारे ५

४—दो०—बरसत जु सर्प पियूष सो, विष बरसत मोहि जाय^३ ।

५—चौपाई

नाम-प्रभाव जान सिव नीके । कालकूट फल दीन अमी^४ के

(दूसरा)

दो०—एकै कारज साधनो, करिकै क्रिया बिरुद्ध ।

सो दूजो व्याघात है, बरनत सुकवि सुबुद्ध ॥

१—दो०—लोभी धन संचय करै, दारिद्र^५ को डर मानि ।

'दास' यहै डर मानिकै, दान देत है दानि ॥

२—दो०—रन ते हूवे को अमर, भागन कायर कूर ।

यहै चाह चित करि, नहीं बिचलन साँच सूर ॥

३—दा०—दुख दारिद की संक सों, लोभा स्वधन न देत ।

दातहु ताही संक सों, सरवस देत सहेत ॥

४—चौपाई

मिलत एक दारुन दुख देहीं । बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं ।

(५२) कारणमाला (गुंफ)

(प्रथम)

दो—कारन ते कारज प्रगटि, कारन है है जात ।

तेहि कारनमाला कहैं, जे कबिबिर बिरुपात ॥

१—दा०—बिद्या देती बिनय को, बिनय पात्रता मित्त^१ ।

पात्रत्वै^२ धन, धन धरम, धरम देत सुख नित्त ॥

२—सो०—होत लोभ ते मोह, मोहहि ते उपजै गरब ।

गरब बढ़ावे कोह^३, कोह कलह, कलहहु व्यथा ॥

३—दो०—होत पाप ते जड नृति, जड नृ ते अविवेकु ।

फौज दुखित अविवेक तें, ता दुख जीति^४ न नेकु ॥

४—दो०—बिनु सतसंग न हरि-कथा, तेहि बिनु माह न भागु ।

मोह गए बिनु राम-पद, होय न दृढ़ अनुरागु ॥

दो०—सतसंग तें वैराग है, ताते मन-संतोष ।

सतोषहि तें ज्ञान है, हांत ज्ञान तें मोष^५ ॥

(दूसरी)

दो०—कारज को कारन जु सो, कारज है है जाय ।

कारनमाला ताहु को, कहैं सकल कबिराय ॥

१—दो०—राम कृपा ते परमपद, कहत पुराने लोच ॥

रामकृपा है भक्ति तें, भक्ति भाग्य तें हांय ।

२—दो०—अन्न-मूल धन*, धनन को मूल जज्ञ अभिराम ।

ताको धन, धन को धरम, धर्ममूल हरिनाम ।

३—सवैया

दुख पाप तें, पाप सु दारिदरें, पुनि दारिदर तुच्छ किए मन के ।

(५३) एकावली (शृंखला)

दो०—किए जँजीरा जोर पद, एकावली प्रमान ।

विवरण—जहाँ पदों का ग्रहण और त्याग, पुनः ग्रहण और त्याग के ढंग से सब पद जंजीर को कड़ियों की तरह परस्पर जुड़े हों वहाँ एकावली समझना चाहिए । कारणमाला में कारण और कार्य का शृंखलाबद्ध संबंध जैसा दिखलाया गया है वैसा ही इसमें भी हाता है, भेद केवल इतना है कि कारणमाला में केवल कारण और कार्य की शृंखला बनाई जाती है, और इसमें सब ही वस्तुओं की । 'कारणमाला' को एकावली कह सकते हैं, पर 'एकावली' को सदा कारणमाला नहीं कह सकते । यथा—

१—दो०—गिरि पै वृष*, वृष पै जु सिव, सिव पै सुरसस्त्रिनीर ।

२—चौ०—सो नहिं सर जित* सरजित नाहीं ।

सरसिज नहिं जेहि अलि न लोभाहीं ।

अलि नहिं जो कल गुंजन हीना ।

गुंजन नहिं जु मन न हरि लीना ।

३—सवैया

सोभति सो न सभा जहँ वृद्ध न वृद्ध न ले जु पढ़े कलु नाहीं ।

ने न पढ़े जिन साधु न साधित* दीह दया न दिपे जिन माहीं ।

१ घोड़ा । २ बादल । ३ बैल । ४ जहाँ । ५ साधुओं का सत्संग नहीं किया ।

सो न दया जु न धर्म धरै धर धर्म न सो जहँ दान बृथाहीं ।
दान न सो जहँ साँच न 'केसव' साँच न सो जु बसै छल छाहीं ।

४—कवित्त—कूरम पै कोल^१ कोलहू पै सेष-कुंडली^२ है,
कुंडली पै फबी फैल सुफन हजार की ।
कहै 'पद्माकर' त्यों फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है धिति रजत-पहार^३ की ।
रजत-पहार पर सभु सुरनायक हैं,
संभु पर जोति जटाजूट है अपार की ।
संभु जटाजूटन पै चंद्र की छुटी है छटा,
चंद्र की छटान पै छटा है गगधार की ।

(५४) सार

दो०—अर्थन को उत्कर्ष जहँ, आगे आगे होत ।

विवरण—जहाँ वर्णित वस्तुओं का उत्तरात्तर उत्कर्ष वा
अपकर्ष वर्णन किया जाय, उस 'सार' कहते हैं । इसका
दूसरा नाम 'उदार' भी है । जैसे—

(उत्कर्ष)

१—चौपाई

सबमम प्रिय सबमम उपजाये । सबते अधिक मनुज मोहिं भाये ।
तिनमहँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी^१ । तिनमहँ निगम^२ नोति अनुसारी
तिन महँ पुनि विरक्त पुनि ज्ञानी । ज्ञानिहु ते अति प्रिय बिज्ञानी ।
तिनतैं मोहि अतिप्रिय निज दासा । जेहि गनि^३ मोरि न दूसरि आसा
२—दो०—मखमल ते कोमल महा, कदलि-गरम को पात^४ ।
ताहु ते कोमल अधिक, राम तुम्हारे गात^५ ॥

१ शूकर । २ शेषनाग । ३ कैलास । ४ वेदज्ञ । ५ वेद । ६ आसरा ।
७ पक्षा । ८ शरीर ।

३—दो०—उन्नत अति गिरि गिरिन तें, हरिपद हैं बिख्यात ।
तिनहूँ ते ऊँचो घनो, संत हृदय दरसात ॥

४—सवैया

हे करतार बिनै सुनो 'दास' की, लोकनि को अवतार करयो जनि ।
लोकनि को अवतारकरया तो मनुष्यन को ता सँवार करया जनि ।
मानुषहूँ को सँवार करयो तो तिनहूँ बिच प्रेम-पसार करया जनि ।
प्रेम-पसार करया तो दयानिधि केहूँ बियाग बिचार करया जनि ।

(अपकर्ष)

१—चौपाई

अधम ते अधम अधम अति नारी । तिन महुँ मैं मतिमंद गँवारी ॥

२—दो०—सिला कठोरी काठ तें, तातें लाह कठार ।

ताहूँ तें कीन्हों कठिन, मन तुव नंदकिसार ॥

३—दो०—तृन ते लघु है तूल^१, तूलहु ने लघु माँगनो ।

सूचना—इस अलंकार को अंग्रेजी में 'क्लाइमेक्स' (Climax) कहेंगे।

(५५) क्रम

दो०—क्रम सों कहि पहले कछू, क्रम ते अर्थ मिलाय ।

यों ही ओर निबाहिए, क्रम भूषन सु कहाय ॥

विवरण—दो चार अथवा और भी अधिक चीजों का जिस क्रम से पहले वर्णन करें उसी क्रम से उनका वर्णन अंत तक निबाहें, उसे 'क्रम' अलंकार कहते हैं। 'यथासंख्य' भी इसी का नाम है। इस अलंकार के मुख्य ३ भेद हैं—

(१) यथाक्रम, (२) भंगक्रम, (३) विपरीत क्रम ।

(१) यथाक्रम

१—दो०—रंक, लोह, तरु, कीट^१ ए, परसि न पलटें अंग ।

कहा नृपति, पारस कहा, कह चंदन कह भृंग ॥

यहाँ पहले चार वस्तुओं का उल्लेख किया—रंक, लोह, तरु और कीट । फिर कहा कि ये चार सत्संग पाकर अपना रूप न पलट दें तो राजा, पारस, चंदन और भृंग व्यर्थ ही हैं । यहाँ जिस क्रम से पूर्वार्द्ध में चार वस्तुओं के नाम आये हैं उत्तरार्द्ध में ठीक उसी क्रम से उनको पछटानेवाली वस्तुओं के नाम भी आये हैं अर्थात् रंक के लिये नृपति, लोह के लिये पारस, तरु के लिये चंदन और कीट के लिये भृंग । ऐसी ही वर्णन-प्रणाली में 'क्रम' अलंकार माना जाता है ।

२—दो०—गिरे अरिन के तक्त तुव, रूप रोप बिकरार^२ ।

तन तें, मन तें, करन तें, स्वेद, गरब, हथियार ॥

अर्थात् तेरा रोपपूर्ण रूप देखकर शत्रुओं के तन से, मन से और हाथों से गिर पड़े—पसीना, गर्व और हथियार अर्थात् तन से पसीना, मन से गर्व और हाथों से हथियार । यहाँ भी यथा-क्रम वर्णन है । इसी प्रकार और भी समझ लेना ।

३—चौपाई

बंदों राम-नाम रघुवर को । हेतु कृसानु भानु हिमकर को ॥

'राम' शब्द के तीन अक्षर र, अ, म क्रम से अग्नि, सूर्य और चंद्रमा के हेतु कहे गये ।

४—कवित्त—सत्रुन को मित्रन को परम पवित्रन को,
घालियत पालियत पूजियत पाए ते ।

५—दो०—अमी हलाहल मद-भरे, संत स्याम रतनार^३ ।

जियत मरत भुकि-भुकि परत, जेहि चितवत इक बार ।

६—दो०—भौं चितवनि डोरे बरुनि, असि^१कटार फँद^२तीर ।
कटत फटत बंधन बिधत, जिय हिय मन तन बीर ॥

७—हरिगीतिका

जनि जलना^३ करि सुजस नासहि नीति सुनहि करहि छुमा ।
संसार महँ पुरुष त्रिविध पाटल^४, रसाल^५, पनस^६-समा ।
इक सुमनप्रद, इक सुमनफल, इक फलहि, केवल लागहीं ।
इक कहहि, कहहि करहि अपर, इक करहि कहत न बागहीं ।

सूचना—इस अलंकार को फारसी, उर्दू तथा अरबी-साहित्य में 'लफोनशर मुरत्तब' कहते हैं । इस अलंकार का एक अति उत्तम उदाहरण फिरदौसी ने अपने शाहनमा में लिखा है । फारसीदां पाठकों के लिये उसे हम यहां लिखे देते हैं और हिंदीवालों के समझने के लिए उसका भावानुवाद भी लिख देते हैं । रस्तम की तारीफ में फिरदौसी लिखता है—

८—शेर

बरोजे नबद् आं यले अर्जुमंद । बशमशीरो, खजर, बगु तों, कमंद ।
बुरीदो, दरीदो, शिकस्तां, बिबस्ता । यलारासरां, सीनआ, पायोदस्ता ।

(भावानुवाद)

(सवैया)

संगर में जब रस्तम ने अपने विजयी हथियार उठाये ।
खड्ग, कटार, गदा, अरु पास^७के अद्भुत, यों करतव्य दिखाये ।
काटि गिरावल फारत तोरत बांधत चारि खनों^८न लगाये ।
शत्रुन के सिर और उरस्थल, पाद, भुजा नहि जायें गनाये ।

१ तलवार । २ फँदा, डोर । ३ बकवाद । ४ गुलाब । ५ आम ।
६ कटहल । ७ जाल, फँदा । ८ क्षण ।

इसमें यथाक्रम वर्णन किया है—चक्र देखो।

खड्ग	कटार	गदा	पास
काटि गिराकल	फारत	तोरत	बाँधत
सिर	उरस्थल	पाद	भुजा

‘यथाक्रम’ का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण जो हमें मिला है वह यह है।

१—छप्पय—आनन^१, बेनी, नैन, बैन, पुनि दसन, सुकटि^२ गति।

ससि सपिन, मृग, पिक, अनार, केहरि^३ करनिन-पति^४ ॥

पुरन^५, खिभित, जक^६, तरुन, पक्व, वरपंच^७, पुष्टवल ।

सरद, पताल, बिछाह, बाग, तरु, गिरि, बनकज्जल ॥

निसि, सन्निवेश^८, सावक^९, चुवन^{१०}, बिगम प्रसूती^{११}, मदभरत।

‘पृथिराज’ भनत बेसी बजन अस वनिता^{१२} बन-बन फिरत ॥

इसमें प्रथम चरण में ७ वस्तुओं के नाम लिपे, पुनः दूसरे चरण में यथाक्रम उनके उपमान कहे। पुनः तीसरे, चौथे और पाँचवें चरण में यथाक्रम उन्हीं के उपमानों के विशेषण कहते चले गए।

इस अलंकार का इससे बड़ा हर हमें कोई उदाहरण नहीं मिला।

१ मुख। २ कमर। ३ शेर। ४ हार्थी। ५ पूर्ण। ६ चकपकाई हुई।

७ मंडली में श्रेष्ठ। ८ बिल में घुसते समय की। ९ बच्चा। १० मदमस्त।

११ बच्चा होने के बाद की। १२ स्त्री।

(२) भंगक्रम

जिनमें कथित वस्तुओं का क्रम भंग हो जाय—

१—दो०—सच्चिव वैद्य गुरु तीन जो, प्रिय बोलहिं भय-आस ।

राज्य धर्म तन तीन कर, होइ बेगिही नास ॥

यहां सच्चिव, वैद्य और गुरु के क्रम से राज्य, तनु और धर्म कहना चाहिए था, सो क्रम भंग है ।

सूचना—इसको फारसी तथा उर्दू में 'लफोनशर गैर मुस्तत्र' कहते हैं ।

(३) विपरीत क्रम

जिसमें पूर्वोक्त वस्तुओं के वर्णन का क्रम उलट दिया गया हो । जैसे—

१—चौपाई

राज्य नीति विनु धन विनु धर्मा । हर्हि सभर्षे विनु सत्कर्मा
बिद्या विनु विवेक उपजाये । श्रम फल पढ़े, किये अरु पाये ।

यहाँ चार वस्तुएँ कहो गईं—राज्य, धन, सत्कर्म और विद्या । फिर कहा गया है कि इन चारों के साथ अगर ये चार गुण न हो तो विद्या का पढ़ना सत्कर्म का करना और धन तथा राज्य का पाना केवल श्रम मात्र है । यहाँ स्पष्ट देख पड़ता है कि जो क्रम वर्ण्य वस्तुओं का है ठीक उसके विपरीत उनके वर्णन का है ।

(५६) पर्याय

(प्रथम)

दो०—एक वस्तु क्रम सोंजहाँ, आश्रय लेय अनेक ।

ताहि प्रथम पर्याय कधि, बरनै सहित विवेका

विवरण—एक वस्तु का क्रमशः बहुत स्थानों में आश्रय लेना वर्णन किया जाय वहाँ प्रथम पर्याय जाना ॥ जैसे—

१—चौपाई—मबि मानिक^१ मुकता छबि जैसी ।

अहि^२ गिरि गज-सिर साहन तैसी ॥

नृप-किरीट तरुनी-तनु षाई ।

लहै सकल सांभा अधिकारी ॥

इसमें माणिकादि का पहला स्थान अहि, गिरि, गजसिर वर्णन किया, फिर नृप-किरीट और तरुणी-तन कहा गया ।

२—दो०—अंसुवन ने वह नद किया, नद ते किया समुद्र ।

अब सिंगरी जग जलमाई, करनि चहति बनि रुद्र^३ ॥

यहां आंसुओं का आश्रय पहले नद, पुनः समुद्र, पुनः सारा जग कहा गया है ।

३—दो०—हालाहल ! तोहि नित नये, किन बतराये ऐन^४ ।

अंबुधि^५ हिय पुनि संभुगर, अब निवसत खलवैन ॥

४—दो०—जीति रही औरंग में, सबै छत्रपति छाँड़ि ।

तजि ताहू को अब रही, सिव सरजा कर माँड़ि ॥

सूचना—स्मरण रखना चाहिए कि पर्याय अलंकार में एक आश्रय के त्याग के अनन्तर दूसरे आश्रय को ग्रहण करना कहा जाता है । जहां ऐसा न हो, वरन् प्रथम आश्रय में रहते हुए ही उस वस्तु का अन्य आश्रयों में भी जाना वर्णन किया जाय वहां कई एक कवियों ने 'विकास' नामके एक पृथक ही अलंकार माना है । जैसे—

१—दो०—सर सरिता गिरि सिंधु सों, रुकत नहीं दिन रात ।

जस तेरो जसवंत नृप, जग में पसरत जाय ॥

२—दो०—तुव अधरहि में हे सखी हुता जो पूरब राग ।

अब तुव हिय में भी वहै, लख्यो परत बड़ भाग ॥

३—सघैया

गोपिन के अँसुवान के नोर, पनारे^१ भये फिर हूँ गये नारे ।
नारे भये नदियाँ बढ़िकै नदियाँ नद हूँ गई काटि करारें^२ ॥
बेगि चलो तो चलो ब्रज में कवि 'तोष' कहैं ब्रजराज हमारे ।
चे नद चाहत सिधु भये पुनि सिधु ते हूँ जलाहल^३ सारे ॥

सूचना—विकास के बिगरीत भाव में कोई कोई कवि 'संकोच'
अलंकार भी कहते हैं:—

१—दो०—तेज-तरनि^४ जसवंत तुव होत जगत-विख्यात ।

कुबलय^५ इव अरि-कुबलय^६ जु, सने सने सकुचात ॥

इस दोहे में पूर्वार्द्ध में 'विकास' अलंकार और उत्तरार्द्ध में 'संकोच' है ।

(दूसरा पर्याय)

दो०—क्रम ही तें जहँ एक में, आवैं वस्तु अनेक ।

सो दूजो पर्याय है बरनत कवि सविवेक ॥

१—दो०—जाँ हिय में अविबेक हो, छाया तहाँ विवेक ।

यहाँ एक ही हृदय में पहले अविबेक का रहना पुनः
विवेक का आना कहा गया ।

२—दो०—ऋषिहि देखि हरपै हियो, राम देखि कुम्हलाय ।

धनुष देखि डरपै महा, चिंता चित्त डालाय ॥

३—चौ०—जनक लह्यौ सुख सोच बिहाई ।

यहाँ जनक के हृदय में पहले सोच था, पुनः सुख आया ।
आधार एक है, आश्रय लेनेवाले भिन्न-भिन्न हैं ।

४—दो०—हुती देह में लरिकई, पुनि तरुनाई जोर ।

विरध्नाई^७ आई अजहुँ, भजि ले नंदकिंसोर ॥

१ छोटी नाली । २ किनारा । ३ जलमय । ४ सूय । ५ कुमुदिनी । ६ पृथ्वी-मंडल । ७ बुढ़ापा ।

(५७) परिवृत्ति

दो०—जहाँ अधिक अरु न्यून को, लीबो दीबो होय ।

विवरण—परिवृत्ति का अर्थ है 'अदला-बदला' वा लेना-देना । इसके तीन भेद हो सकते हैं—(१) बहुत देकर थोड़ा लेना, (२) थोड़ा देकर बहुत लेना, (३) सम देकर सम लेना ।

जिसमें से तीसरे में हमारे मत से कोई अलंकारता नहीं आती इससे हम केवल प्रथम दो के ही उदाहरण लिखेंगे ।

(१) बहुत देकर थोड़ा लेना

१—दो०—कासों कहिये आपनो, यह अजान जदुराय ।

मन-मानिक दीन्हों तुम्हें, लीन्हों बिरह बलाय^१ ॥

२—चोपाई

तारा बिकल देखि रघुराया, दीन्ह ज्ञान हरि लीन्हों माया ।

३—दा०—तन मन धन दै प्रेम सों, लाये राग बिसाहि^२ ।

४—सवैया

तुम कौन धौं पाटी पढ़े^३ हो लला, मन^४ लेत पै देत छटाँक नहीं ।

(२) थोड़ा देकर बहुत लेना

१—कवित्त—चारों फल देत चार चाउर चढ़ाये ते ।

२—पद—सेवा सुमिरन पूजिबो पात आखत^५ थोरे ।

(दिये सबै जहँ लौं जगत सुख गज रथ घोरे ॥

३—दो०—इक धतूर फल दै सिवहि, लिये अमोघ^६ फल चारि ।

४—कवित्त—तीन मूठी भर आज देकर अनाज आपु,
लीन्हों यदुराय जू सों संपति धनेस^७ की।

१ क्लेश । २ खरीदकर । ३ पाटी पढ़ना = सीखना । ४ चित्त, एक मन तौल । ५ अदलत वाबल । ६ उत्तम । ७ कुबेर ।

५—कवित्त—देखो त्रिपुरारि की उदारता अपार जहाँ,
पये फल चारि एक फूल दै धतूर को ।

सूचना—इस अलंकार को 'विनिमय' भी कहते हैं ।

(५८) परिसंख्या

दो०—करि निषेध थल एक तें, रखिए औरहिं ठौर ।
बस्तु, धर्म, गुण, जाति जहँ, परिसंख्या तेहि ठौर ॥

विवरण—जहाँ किसी वस्तु, धर्म, गुण वा जाति का अन्य सब स्थानों से (जो उसके उपर्युक्त माने जाते हों) वर्जन करके किसी एक विशेष स्थान पर ठहरावें, वहाँ परिसंख्या अलंकार होता है । 'परिसंख्या' शब्द का अर्थ यहाँ पर 'अपने स्थान से हटाई गई और दूसरे स्थान पर बैठाई हुई वस्तु की गणना' है ।

१—दो०—नृपति राम के राज्य में, हैं न सूल दुखमूल ।
लखियत चित्रन में लिखो, संकर के कर सूल ॥

यहाँ राज्य भर में 'शूल' (कष्ट) का वर्जन करके केवल चित्र में शंकर के हाथ में (त्रिशूल) को स्थापित किया है । यही अलंकारता है ।

२—दो०—दंड जप्तिन कर भेद जहँ, नर्तक-नृत्य-समाज ।
जीतौ मनसिज सुनिय अस, रामचंद्र के राज ॥

यहाँ यह कहा गया कि रामराज्य में दंड (सजा) कहीं नहीं है केवल नाममात्र को दंड (लाठी) संन्यासियों के हाथ में है । भेद (भेदनाति) कहीं नहीं है, केवल नृत्यक-समाज में सुर, ताल, राग इत्यादि का भेद (बिलगाव) देखा जाता है, और कोई किसी को जीतने का उद्योग नहीं करता, केवल काम को जीतने की इच्छा करते हैं । इसी प्रकार और भी समझना ।

३—कवित्त—साम^१ को तो काम मुनिवर के मुखन माहि,
और ठौर में ता तासों रचक न काज है ।
दाम^२ जल भरिबे के काम ही में देखियत,
दंड को निवास एक कर-यतिराज है ॥
'रतनेस' भेद एक सुर के मिलाइबे में,
देखो जहाँ होत गान नृत्य का समाज है ।
साम दाम दंड भेद अनत न देखे कहूँ,
ऐसा सुखदाई रघुराजजू को राज है ॥

४—दी०—केसन ही में कुटिलता^३, सचारिन^४ में संक^५ ।
लखा राम के राज में इक, ससि माहि कलंक ॥

५—रोला—मूलन^६ ही की जहाँ अधागति^७ 'केमव' गाइय ।
होम-हुतासन-धूम^८ नगर एकै मलिनाइय ॥
दुर्गति^९ दुर्गन ही, जो कुटिल गति सरितन ही में ।
श्रीफल^{१०} को अभिलाष प्रकट कबिकुल के जी में ॥
(रामचंद्रिका से)

६—कवित्त—सत्रु को उथापि पीछे थापिये में व्रत-भंग,
दीखत युधिष्ठिर में, गिद्धन में कंकता^{११} ।
कैद^{१२} लोक-कुल की त्यों वेद-मरजाद ही में,
स्वैरगति^{१३} मारुत^{१४} में चानक में रकता ॥
इति ग्रंथ-पूर्णता में संकर लिखेया लिखें,
चारा इतिहास में है होता मेंलि स होता ।

१ सामवेद का गान, शमन । २ डोर, दान । ३ टेढ़ापन । ४ संकरी-
भाव (रसांतरंगन) । ५ संदेह । ६ जल । ७ बुढ़ी दशा, नीचे जाना । ८ होम
की अग्नि का धुआँ । ९ बुढ़ी गति, घुमाव-फिटाव से जाने का मार्ग । १०
कुच, बेल । ११ दुर्बलता । १२ कारावास, मर्यादा । १३ अनाचार, मन-
मानी चाल । १४ वायु ।

चंद्रमामें काह^१ काल-राह^२ में ससंकता त्यों,
द्वितिया में बंकता^३ है पूनो में कलंकता ॥

७—कवित्त—आए जुरि जाँचिवे को जाचक जहाँ लौं रहे,
एहो 'कवि रघुनाथ' आज तीनों थर में ।
एते मान दान तिन्हें भूप दसरथ दीन्हें,
देत न दिखाई कहूँ कोऊ सौज^४ घर में ।
बसन^५ के नाते पास बास कौसिला के एक,
भूपन के नाते नथ नाक छला कर में ।
घोरे हाथी चित्रन के रहे चित्रसारी माहि,
राम के जनम रहे दाम^६ दफतर में ॥

८—दो०—पत्रा ही तिथि पाइए, वा घर के चहुँ पास ।
नित-प्रति पूनो ही रहत, आनन-आप-उजास^७ ॥

९—कवित्त—अति मतवारे जहाँ दुरदै^८ निहारियत,
तुरंगन ही में चचलाई-परकीति^९ है ।
“भूपन” भनत जहाँ पर^{१०} लगैं वानन में,
कोक^{११} पच्छिनहि माहि विद्युरन-राति है ।
गुनिगन चोर जहाँ एक चित्त ही के,
लोक बंधे जहाँ एक सरजा की गुन-प्रीति है ।
कंप कदली^{१२} में बागिबुद बदली^{१३} में,
सिवराज-अदली^{१४} के राज में यों राजनीति है ॥

सूचना—कभी-कभी प्रश्नोत्तर रीति से भी यह अलंकार कहा जाता है।

१—दो०—सेव्य कहा? तट-सुरसरी, कहा ध्येय^{१५}? हरि-पाद ।
करन उचित कह? धर्म नित, चित्त तति सकल बिपाद ॥

१ क्षीणता । २ टेढ़ापन । ३ सामान । ४ वस्त्र । ५ छदाम । ६
उजाला । ७ हाथी । ८ प्रकृति । ९ पंख, शत्रु । १० चक्रवाक । ११ केला ।
१२ बादलों की घटा । १३ न्यायी । १४ ध्येय, पूज्य ।

(५१) विकल्प

दो०—कै तो वह कै यह जहाँ, यह विकल्प दिवराय ।

ताहि विकल्प बखानहीं, सिगरे कबि-समुदाय ॥

विवरण—‘या तो ऐसा ही हागा या ऐसा ही हागा’ इस प्रकार के कथन में ‘विकल्प’ अलंकार माना जाता है । जसे—

१—चोपाई

जन्म कोटि लागि रसए हमारी । क्यों संभु न तु रहों कुमारी ।

२—दा०-दिसि-दिसि कूजहि^१ कोकिला, फूले रुचिर रसाल^२ ।

दूर करेगा विरह दुख, कै गोपाल कै काल ॥

३—सवैया

कोमल श्रीरघुवीर महा नवनीतहु^३ ले मय नूतन माई ।

है सिव का धनु बज्र समान ससी रवि ताहि सके न उठाई ।

तात^४ का बाल अडाल सबै निर्मूलक आनि बनी दुतिचाई ।

जानकी जान की आस तजी कि वरीं इनका कि मरीं बिष खाई ।

४—सवैया

सीय स्यों^५ राज करौ जुग लां पथ त भरतै^६ मिलिहों पलटाऊँ ।

जूझि मरीं कि करौं प्रभु कागज ती अपनो मुख आनि दिखाऊँ ॥

(जटायु-वाक्य रावण-प्रति)

५—सवैया

हों गरुडासन राम को सेवक रे छलिकै कोउ लेत तिया को^७ ।

कैतजु देह किछाँडु सनेह कि तू रन माँडु^८ किछाँडु सिया का^९ ॥

(६०) समुच्चय

समुच्चय = समूह । यह अलंकार दो प्रकार का है ।

१ हठ । २ बोलती हैं । ३ आम । ४ मखन । ५ पिता । ६ सहित ।
७ भरत से । ८ लौटते समय । ९ युद्ध करो ।

(प्रथम)

दो०—बहुत भाव इक बारही, तिनको गुंफन होय ।
कबि कोबिद सिमरे कहैं, प्रथम समुच्चय सोय ॥

१—चौपाई

चकित चितव मुँदरी पहिचानी । हरष विषाद हृदय अकुलानी ।
यहाँ आश्चर्य, हर्ष, विषाद और व्याकुलता सब भाव
एक ही साथ उदय हुए ।

२—दो०—हे हरि तुम बिनु राधिका, सेज परी अकुलानि ।
तरफरारि, अमकति^१, तचनि^२, सुसकति^३, सूखी जानि ।

३—सवैया

मरैज पठाए भिन्ना कछु देस बजीर अजानन^४ चाल गहे ना ।
दौरि कियो खरजा परनालो यों 'भूपन' जो दिन दोष लगे ना ॥
आक सों खरक विजैपुर भा मुख आयगो खान खवास के फेना ।
मै-भरकी^५ करकी^६ भरकी दरकी दिल एदिलसाह की सेना ॥

(द्वितीय)

दो०—एक काज के करन को, हेतु जु होयँ अनेक ।
ताहि समुच्चय दूसरो, बरनैं कबि सबिवेक ॥

विवरण—किसी कार्य के करने के लिए एक हेतु (काफी
और से) वर्तमान है ही, पर साथ ही साथ अन्य हेतु भी
उपस्थित कहे जायें । यथा—

१—दो०—गंगा गीता गायत्री, गनपति गरुड़ गोपाल ।
प्रातकाल जे नर भजैं, ते न परैं भव-जाल ॥

१ चौकती है । २ तकलीफ उठाना । ३ सिसकी भरना । ४ मूर्ख ।
५ भयभीत । ६ विश्व-मिश्र हो गई ।

यहाँ गंगा गीतादि उपर्युक्त कारणों में से कोई एक कारण भवजाल से छोड़ने के लिए काफी है, पर बहुतों का वर्णन किया गया है ।

- २—दो०—गंगा गीता गुरु गऊ, गोकुल औ गिरिराज ।
ये देवतु^१ कलिकाल में, सदगति^२ दिव्य दराज^३ ॥
- ३—दो०—प्रह-प्रतीत पुनि बात-बस^४, तेहि पुनि बोझा मार ।
ताहि पियाइय बारुनी^५, कहौ कौन उपवार^६ ॥
- ४—दो०—एक मंद में मोह-बस, कीस-हृदय अज्ञान ।
पुनि प्रभु मोहि बिस्तारेऊ, दीनबधु भगवान ॥

(६१) समाधि

‘समाधि’ शब्द का अर्थ है ‘शक्ति-संपन्न’ ।

दो०—और हेत के मिलन तें, सुगम होय जहँ काज ।
विशरण—आकस्मिक कारणांतर के याग से जहाँ कार्य अति सुगमता से हो जाय ।

१—चौपाई

पावक जरत देखि हनुमंता । भयो परम लघु रूप तुरंता ॥
निबुकि^१ चढ्यो कपि कनक-अटारी । भई समात निसावर-दारी ॥

दो०—हरि-प्रेरित तेहि अवसर, अले पवन उनचास ।

हनुमानजी लंका को जलाना चाहते थे कि अकस्मात् उन-चासों पयनों की सहायता से वह काम आर भी सुगम हो गया ।

२—दो०—मीत-गमन-अवरोध-हित, सोचत कछू उपाय ।

तब ही आकस्मात् तें, उठी घटा घहराय ॥

३—दो०—रामचंद्र सोचत रहे, रावन-बधन-उपाय ।

सुपनखा ताही समय, करी ठडाली आय ॥

१ दैते हैं । २ सद्वृत्ति । ३ उत्तम । ४ वायु के वंश । ५ शराब । ६ डूना । ७ निकलकर ।

(६२) प्रत्यनीक

दो०—सत्रु मित्र के पक्षों, किए बैर अरु हेत ।

प्रत्यनीक भूषण कहैं, सिगरे सुकवि सचेत ॥

विवरण—जहां शत्रुपक्षवालों से बैर अथवा मित्रपक्षवालों से प्रेम करना कथन किया जाय । यह अलंकार 'अन्योय' अलंकार का संबंधी है । साक्षात् अपने साथ करनेवाले के प्रति वैसा ही करना तो 'अन्योय' का विषय है, और उसके संबंधी के साथ वैसा ही बरतना इस अलंकार का विषय है । 'प्रत्यनीक' शब्द का अर्थ है, 'सेनापति' वा 'संबंधी-प्रति' ।

(शत्रुपक्ष-प्रति)

१—चौपाई

बिष्णु-बदन-सम बिधुहि^१ बिचारी । अबहुँ राहु दै पीड़ा भारी ।

विष्णु ने राहु का सिर काटा था । विष्णु के मुख के समान जानकर राहु चंद्रमा को अब तक ग्रसता है ।

२—दो०—तेज मंद रवि ने किया, बस न चलयो तेहि संग ।

दुहुँन नाम एकै समुझि, जारत दिया पतग^२ ॥

३—सवैया

लाज धरौ सिवजू सों लरौ सब सैयद सेख पठान पठाय कै ।

'भूषण' ह्यां गढ़ कोटन हारे उहाँ तुम क्यों मठ तोरे रिसाय कै ॥

हिंदुन के पति सों न बिसाति^३ सतावत हिंदू गरीबन पाय कै ।

लीजै कलंकन दिलो के बालम^४ आलम^५ आलमगीर^६ कहाय कै ॥

४—सवैया

एती कहै किन जाय कोऊ अब मांसों कड़ूक न चूक परी है ।

बैर निहारे हमारं हिये यह कोकिल कूक के हूक^७ करी है ॥

१ चंद्रमा । २ फर्तीगा, (सूर्य) । ३ बस नहीं चलता । ४ स्वामी ।

५ संसार । ६ औरंगजेब, संसार के रक्षक । ७ पीड़ा ।

५—हरिगीतिका

नहिं चितव जव कपि कोपि तब गहि दसन लातन मारहीं ।

धरि केस नारि निकारि बाहर तेऽपि दीन पुकारहीं ॥

रावण जब यज्ञ से नहीं उठा तब बंदरों ने स्त्रियों को सताना आरंभ किया ।

६—चौपाई

रावन-दूत हमहिं सुनि काना । कपिन बाँधि दीन्हें दुख माना ।

(मित्रपक्ष-प्रति)

१—दो०—छैल छधीले लाल को, नवल नेह लहि नारि ।

टाँति लगाय-लगाय उर, पहिरति धरति उतारि ॥

२—चौपाई

हरि-जन १जानि प्रीति अति बाढ़ी । सजल नैन पुलकावलि २ठाढ़ी ।

३—सवैया

छैलजू सैल ३ तिहारी सुनै तेहि गैल की धूरि सों नैन धुरें टति ४ ।

रावरं अंग का रंग बिचारि तमाल की डार भुजा भरि भेंटति ।

४—चौपाई

चलत माँहि चूड़ामनि दीन्ही । रघुपति-हृदय लाय सोइ लीन्ही ।

(६३) काव्यार्थापत्ति

काव्यार्थापत्ति = काव्य में न कहे हुए अर्थ का आ पड़ना ।

दो—‘यहै भयो तो यह कहा’, यहि बिधि जहाँ बखान ।

कहत काव्य पद सहित तेहि, अर्थापत्ति सुजान ॥

१—चौपाई

जितेउ सुरासर तब श्रम नाहीं । नर-वानर केहि लेखे माहीं ।

अर्थात् जब सुरासुर को जीत लिया तब नर-वानरों को जीतना उसी के अंतर्गत आ पड़ा ।

२—दा०—सिंह पछाग्या बाहु-बल, कहा स्यार की बात ।

३—कविस्त—जीत्या जब चंदहिं अमंद मुख तेरो,
तब 'चितामनि' मुकुर सरोज सनमानै को ।

४—कविस्त—पूरो जिन पूरा पारावार^१ है पहार डारि,
इतनी सुनो हो लाकों लंक लेन कितनी ।

५—सवैया

पंकज-पात की बात कहा जिन कोमलता लई जीति गुलाब की ।

६—कविस्त—'भूषन' भनत गढ़-कोट माल-मुलुक दै,
सिवा सों सलाह राखिए ता बात भली है ।
आहि देत दड^२ सब डरिकै अखंड सोई,
दिलनी दलमली तो तिहारी कहा चली है ॥

(६४) काव्यलिङ्ग

काव्य = काव्य का अर्थ । लिङ्ग = पहिचान करानेवाला चिह्न (कारण) इसलिये 'काव्यलिङ्ग' शब्द का अर्थ है 'काव्य' में कही हुई बात की ठीक पहिचान करानेवाला चिह्न (कारण) ।

सूचना—पाठकों को खूब समझ लेना चाहिए कि हेतु (कारण) दो प्रकार का होता है—(१) उत्पादक । (२) सूचक वा ज्ञापक । उत्पादक हेतु वह है जिम्से कार्य उत्पन्न हो, जैसे अग्नि धूम का उत्पादक हेतु है और सूचक वा ज्ञापक हेतु वह है जो किसी बात की सूचना दे, जैसे धूम अग्नि का ज्ञापक हेतु है । बस इस अलंकार में 'ज्ञापक' हेतु द्वारा ही काम लिया जाता है । उत्पादक हेतु का कार्य-कारण-संबंध 'हेतु' अलंकार में बर्णन किया जायगा । इसलिए इस अलंकार की परिभाषा यों हुई—

दो०—ज्ञापक कारन द्वार जहँ, अर्थ-समर्थन होय ।

काव्यलिंग ताको कहत, कवि-कोविद सब कोय ॥

१—दो०—कनक^१ कनक तें सांगुनी, मादकता आधिकाय ।

वा खाए बौरात है, या पाए बौराय ॥

कवि कहता है कि धतूरा की अपेक्षा सोने में सौगुनी मादकता है। इस कथन के समर्थन में ज्ञापक हेतु देता है कि धतूरा खाने से मनुष्य बौराता है और सोना पाने ही से बौरा जाता है। बौरा जाना मादकता का ज्ञापक हेतु है।

२—दो०—धर्महीन प्रभु-पद-विमुख, काल-बिबस दससोस !

आए गुन लाज रावनहि, सुनहु कोसलाधीस ॥

अंगद कहते हैं कि राजनीति के चार गुण (दान, साम, दंड, भेद) रावण को छोड़कर आपके पास चले आए। कारण क्या ? सो पूर्वार्द्ध में कथित है।

३—दो०—मेरी भव-बाधा हरो, राधा-नागरि सोय ।

जा तन की भाई परे, श्याम हरित^३-दुति होय ॥

४—दो०—तजि तीरथ हरि-राधिका, तन-दुति करु अनुराग ।

जेहि ब्रज-केलि निकुंज-भग, पग-पग हांत प्रयाग ॥

५—दो०—करौ कुबत जग-कुटिलता, तजौ न दीनदयाल ।

दुखी होहुगे सरल हिय, बसत त्रिभंगी^४ लाल ॥

अपनी कुटिलता न छोड़ने की युक्ति कवि कैसी अच्छी कहता है। हे कृष्ण, तुम त्रिभंगी लाल हो इसलिये सरल (सीधे) हृदय में रहने से तुम्हें कष्ट हागा। इसलिये मैं अपने हृदय को कुटिल (टेढ़ा) ही बनाए रखूँगा, चाहे जगत-जन मुझे बुरा (कुबत = कुयात) ही क्यों न कहें।

१ धतूरे का फूल, (सोना) । २ संसार । ३ हरे, प्रसन्न । ४ तीन स्थान (गर्दन, कमर, पैर) से टेढ़े ।

सूचना—कोई-कोई आचार्य इस 'काव्यलिंग' अलंकार को 'हेतु' अलंकार का प्रकारांतर ही मानते हैं । परंतु हमारी सम्मति से इसमें हेतु अलंकार की अपेक्षा कुछ विलक्षण ही अलंकारता है ।

एक महाशय इस अलंकार की यह परिभाषा लिखते हैं—

“काव्यलिंग जहँ युक्ति सों, अर्थ-समर्थन होय ।”

एक दूसरे महाशय यों लिखते हैं—

करै समर्थन युक्ति-बल, काव्यलिंग है सोय ।

कहुँ सुभाव कहुँ हेतु कहि, कहुँ प्रमान दै होय ॥

तात्पर्य तीनों परिभाषाओं का यही है कि किसी कही हुई बात का समर्थन कुछ हेतु-सूचक बात कहकर करे ।

६—दो०—वृथा बिरस^१ बातें करति, लेति न हरि को नाम ।

यह न आवरज है कछु, रसना^२ तेरो नाम ॥

७—दो०—अब न मोहि डर विघ्न का, करत कौनहूँ काज ।

गनगायक गौरी-तनय, भयो सहायक आज ॥

८—चौपाई

श्याम-गौर किमि कहौं बखानी । गिरा^३ अनैन नैन बिनु बानी ।

यहाँ न कह सकने का कारण बहुत ही अच्छा कहा गया है ।

(६५) अर्थांतरन्यास

अर्थांतरन्यास = दूसरे प्रकार का अर्थ रखना ।

दो०—साधारन कहिए बचन, कछु अवलोकि सुभाय ।

ताको पुनि दृढ़ कीजिए, प्रगट बिसेष बनाय ॥

कै बिसेष ही दृढ़ करै, साधारन कहि 'दास' ।

ताको नाम बखानहीं, कहि अर्थांतरन्यास ॥

विवरण—पहले कोई बात कही जाय, फिर यदि वह बात साधारण हो तो विशेष उदाहरण से और यदि विशेष हो तो साधारण सिद्धांत से उसका समर्थन किया जाय। इन दोनों प्रकार के कथनों में अर्थीतरन्यास अलंकार माना जाता है।

(साधारण की दृढ़ता विशेष से)

१—दो०—कारन ते कारज कठिन, हांय दोष नहि मोर ।

कुलिस^१ अस्थि^२तें, उपल^३ते लोह कराल कठोर ॥

इसमें दोहे के पूर्वार्द्ध में एक सामान्य बात कहकर उत्तरार्द्ध में विशेष प्रमाण द्वारा वही बात पुष्ट की गई है।

२—दो०—बड़े न हूजें गुनन बिनु, बिरद-बड़ाई पाय ।

कनक^४ धतूरे^५ सों कहत, गहना गढ़ा न जाय ॥

३—दो०—अति लघुह सतसंग तें, लहत उच्च पदवी सु ।

कौट^६ सु लहि सँग सुमन को, चढ़त ईस के सीसु ॥

४—दो०—जे छांडत कुल आपनो, ते पावत बहुखेद ।

लखहु बंस^७ तजि बाँसुरी, लहै लोह को छेद ॥

५—दो०—लागत निज मन-दोष ते, सुंदरह बिपरीत ।

पित्त रोग-बस लखहि नर, सत सबह पीत ॥

६—दो०—बरजतह जाचक जुरै, दानवंत^८ की ठौर ।

करो^९ करन भारत रहै, तऊ अमैं तहैं भौर ॥

७—चौपाई

राम-भजन बिनु भिटहि न कामा । थल-बिहीन तरु कबहुँ कि जाम ॥

८—सवैया

छोटे, बड़े पद को पहुँचें जब पावत हैं सतसंग-बिलास को ।

पान के साथ है जात लखा छितिनाथ^{१०} के हाथ लौं पात पलास को ॥

१ वज्र । २ हड्डी । ३ पत्थर । ४ सोना, (धतूरे का फूल) । ५ बाँस, कुल । ६ दान देनेवाला, मद से मुक्त । ७ हाथी । ८ राजा ।

(विशेष का समर्थन सामान्य से)

१—चौपाई

अस कहि चला बिभीषन जवहीं । आयुहीन भे निसिचर तबहीं ।
साधु-अवज्ञा^१ तुरत भवानी^२ । कर कल्याण-अखिल कह हानी ॥

यहाँ पहले विशेष बात कही कि ज्यों ही बिभीषण लंका को त्यागकर रामजी की शरण को चला, त्यों ही सब निश्चर आयुहीन हो गए, फिर साधारण सिद्धांत 'साधुओं की अवज्ञा सर्वकल्याण का विनाश करती है' से उसको पुष्टि की गई । इसी प्रकार और भी जानो ।

२—दा०—हरि-प्रसाद गोकुल बच्यो, का नहिं करहिं महान ।

इसमें हरि-प्रताप गोकुल बच्यो = यह विशेष बात है ।

का नहिं करहिं महान = सामान्य बात से समर्थन है ।

३—सवैया

धूरि चढ़ी नभ पौन-प्रसंग ते कीच भई जल-संगत पाई ।
फूल मिलै नृप पै पहुँचै कृमि, काँटन संग अनेक व्यथाई ॥
चदन-संग कुदार सुगंध ह्वे नीब-प्रसंग लहै करुवाई ।
'दास' जू देखो सही सब ठौरन संगति का मुन-दोष सदाई ॥

इसमें प्रथम के तान चरणों में विशेष बातें कह कर चौथे चरण में साधारण सिद्धांत द्वारा उन सबकी पुष्टि की गई है ।

४—दा०—कैसे फूले देखियत, प्रात कमल के गोत^३ ।

'दास' मिश्र-उद्दांत^४ लिखि, सबै प्रफुलित होत ॥

५—चौपाई

परसुराम पितु-आज्ञा राखी । मारी मातु लोक सब साखी ॥
तनय ययातिहि यौवन दयऊ । पितु-आज्ञा अघ अजसन भयऊ ॥

दो०—अनुचित-उचित-बिचार तजि, जे पालहि पितु-वैन ।
ते भाजन^१ सुख-सुजस के, बसहि अमरपति-पन^२ ॥

सूचना—(काव्यलिंग और अर्थान्तरन्यास का भेद)—काव्यलिंग में कथित बात के समर्थन की जरूरत जान पड़ती है और बिना समर्थन किए पाठक को शंका बनी रहती है । यह समर्थन कारणवत् होता है । अर्थान्तरन्यास में समर्थन कारणवत् नहीं वरन् उदाहरणवत् होता है और अमर समर्थन न भी किया जाय तो भी बात पूरी हो जाती है ।

(६६) विकस्वर

विकस्वर = विकसनशील ।

दो०—कहि विशेष सामान्य पुनि, कहिए बहुरि विशेष ।
तोहि बिकस्वर कहत हैं, जिनके बुद्धि असेष ॥

विवरण—पहले कोई विशेष बात कही जाय । उसके समर्थन का साधारण बात कही जाय, पर इतने से भी संतुष्ट न होकर फिर किसी विशेष उदाहरण से उसका समर्थन किया जाय । यथा—

१—दो०—बड़ी विपत पांडवन पै, खाई हारि सुबाम^३ ।

दुख न गनत कछु सतपुरुष, ज्यों हरिचंद्र, नल, राम ॥
यहाँ बड़ा विपति..... सुबाम = एक विशेष वर्णन है ।

दुख न गनत कछु सतपुरुष = पुनः सामान्य से पुष्ट है ।

२—सचैया

बारिधि बाँधि सिलान^४ सों रामजू ले कपि कां दल रावन मारो ।
कारज ये समर्थन के चाहि, इनको न अकथ^५ बिचारो ॥

१ पात्र । २ इंद्र का घर, स्वर्ग । ३ सुंदर स्त्री (द्रौपदी) । ४ पत्थर ।
५ अकथनीय ।

‘गोकुल’ देत कहे सो सुनो सति^१ मानि हिये मति में निरधारो ।
गोपन केहित हेत^२ गोपाल लखो सिसुताइहि^३ में गिरि धारो ॥

यहाँ प्रथम चरण में एक विशेष बात कही गई है । दूसरे चरण में सामान्य से उसकी पुष्टि है और चौथे चरण में विशेष से पुनः उस सामान्य की पुष्टि की गई है ।

सूचना—स्मरण रखना चाहिए कि इस अलंकार में अंतिम पुष्टीकरण या तो उपमान-वाक्य से होता है या अर्थान्तरन्यास से । पहले उदाहरण में उपमान से पुष्टीकरण किया गया है और दूसरे में अर्थान्तरन्यास से । इसी तरह नीचे के उदाहरणों में भी समझ लो ।

३—सवैया

देतो स्वकीय तू पी को सुखै निजु केतो बगारतह मति खेली^४ ।
‘दास’ जू ये गुन हैं जिनमें तिनही की रहै जग कीरति फेली ॥
बात सहीबिधि कीन्हो भलो तेहि यों ही भलाइन सों निरमेली ।
काटि अंगारन में गहि गेरहु देत सुचासना चदनचेली ॥

इसमें प्रथम चरण में विशेष, दूसरे में सामान्य, पुनः चौथे में विशेष है ।

४—चौपाई

रत्न-अनंत-जनक^५ हिमपरबत । महिमा घटहि न जांसीतल अत^६ ।
डूबत एक दाप गुन-गन में । सास-कलंक जैसे किरनन में ।

इसमें प्रथम दो चरणों में एक विशेष बात कही गई है । तीसरे चरण में सामान्य से उसकी पुष्टि है । चौथे चरण में पुनः उपमान वाक्य से विशेष कहकर सामान्य की पुष्टि की गई है ।

५—सवैया

इंद्र की सामां^७ सुदामा को कृष्ण दई मिलतै न गयो पलसेखो^८ ।
मैं कहों जो सा सुना मन-दे इतने को न आप अपूरव लेखो ।

१ सत्य । २ लिये । ३ लड़कपन में ही । ४ खराब । ५ उत्पन्न करने वाला । ६ अति । ७ सामान (संपत्ति) ८ क्षणभर भी ।

तेति बडेन की ऐसई है 'रघुनाथ' कहै उर में अवरेखो^१।
अंक लगाय मिले रघुनायक लंरू विभीषन को दर्ई देखा ॥

(६७) प्रौढोक्ति

दो०—हेतु न जो उत्कर्ष को, कल्पित कीजै तौन ।
प्रौढोक्ति तासों कहत, कवि-कोविद मति-भौन ॥

१—दो०—ईस-सीस के चद्र सो, अमल आठहू जाम ।

सुरसरि-तट के बरफ तें, धवल सुजस तव राम ॥

महादेव के शीश पर का चद्रमा और गंगा तट का बर्फ
कुछ अधिक सफेद नहीं होता, तथापि कल्पना की गई है।
इसी को प्रौढोक्ति कहते हैं।

२—दो०—तेरो जस सुरसरि के पुंडरीक^२ सो सेत ।

३—कवित्त—मानसरबासी हंस-बस न समान होत,
चंदन सों घस्यो घनसारऊ^३ घरीक^४ है ।

नारद की सारद की हाँसी में कहाँ की भास^५,

सरद की सुरसरी^६ का न पुंडरीक है ॥

'भूपन' भनत छक्यो छीरधि^७ में थाह लेत,

फेन लपटानो ऐरावत^८ को करी कहै ।

कयलास ईस ईस-सीस रजनीस वहौ,

अवनीस^९ सिवा के न जस को सरीक^{१०} है ॥

विवरण—हंस मानसरबासी होने से कुछ अधिक सफेद
नहीं हो जाते। इसी प्रकार चंदन के सग से कपूर, नारद और
सारद की होने से हाँसी, सरद ऋतु की गंगा का होने से स्वेत
कमल कुछ अधिक स्वेत न होंगे, परन्तु कल्पना की गई है।
इसी प्रकार और भी समझ लो।

१ समझो। २ उज्ज्वल कमल। ३ कपूर। ४ क्षणभर। ५ प्रकाश (सफेदी)।
६ गंगा। ७ क्षारसागर। ८ हृद का सफेद हाथी। ९ सामनतावाका।

४—सवैया

पान किएह दयानल को जेहि का अधरारस नाहि ढढ़ै^१ री ।
ताके लगी मुख सों यह जाय तो ज्वाल सी तानन^२ क्यों न गढ़ै री ।
गाकुलनाथ के हाथ बसी है विसासिनी नाथिबे ही को बढै री ।
छेदनि या हिय को बैसुरी सखि पाहन^३ फोरि कै बाँस कढ़ै री ।

यहाँ यंशी की उत्कर्षता के जा हेतु कहे गए हैं, वास्तव में वे उसकी उत्कर्षता के हेतु नहीं हैं, ना भी कल्पित किए गए हैं

(६८) संभावना

दो०—‘होय जु यों तो होय यों’, जहँ कहँ बर्नन होय ।

अलंकार संभावना, ताहि कहैं सब कोय ॥

१—दो०—उगै जा कानिक अंत की, छुनदा^१ छ्वाड़ कलंक ।

तो बहूँ तेरे यदन की, समता लहै मयंक ॥

२—चौपाई

जा छवि-सुधा-पयोनिधि^१ होई । परम-रूपमय कच्छप सोई ॥

सोमा-रजु^२ मंदर-सिगारू । मथै पानि^३ पंकज निज मारू^४ ॥

दा०—याह विधि उपजे लच्छि^५ जय, सुंदरता-सुख-मूल ।

तदपि सकोच-समेत कवि, कहैं सोय-समतूल^६ ॥

३—चौपाई

जौ तुम अवत्यू मुनि को नाई । पद-रज सिर मिसुधरत गोसाई^१ ॥

५—दा०—मात व नोन गलीत^१ हूँ, जा धन धरिए जोर ।

खाए खरचे जा बचै, ता जारिए करार ॥

सूचना—‘प्रमाण’ अलंकार के अन्तर्गत एक भेद ‘संभव’ भी है ।

इसमें और इस संभावना अलंकार में यह भेद है कि इसमें तो निश्चय

१ जले । २ स्वर-लहरी । ३ पत्थर । ४ रात्रि । ५ क्षीर-सागर । ६ डोर ।

७ हाथ । ८ कामदेव । ९ लक्ष्मी । १० समान । ११ स्वामी । १२ नीबि जोड़कर ।

कहा जाता है कि 'यदि ऐसा होता तो ऐसा होता' और उस 'संभव' में केवल यह कहा जाता है कि 'ऐसा होना संभवित है' हो या न हो, यह निश्चित नहीं।

(६१) मिथ्याध्यवसिति

मिथ्या बान को निश्चित कर लेना कि यह ऐसा ही है।

दो०—जहँ मिथ्या को सत करै, कहि मिथ्या कछु और।

मिथ्याध्यवसिति होत है, अलंकार तेहि ठौर ॥

१—दो०—जो आँजं नम-कुसुम^१-रस, लखै सा अहि^२ के कान।

२—सवैया

'गोकुलनाथ' सुनो बन में यह आजु बड़ो अचरज^३हिं लेख्यो।

एक ससा^४ गहि दौरि कै सिंहहि फारन पेट पछारन पेख्यो।

मीत कहाँ यह सो सब साँच है ईश्वर की महिमा अवरेख्यो।

इंदुर^५ एक दुग्ध^६ का आज नदी-नट में रगो लीलन देख्यो।

३—दो०—ससा-सींग के धनुष लिय, गगन-कुसुम धरि माल।

खेलन बंध्यासुतन^७-संग, तुवअरि-गन छितिपाल ॥

४—दो०—तेरा कुतस सुनाइये, बांधरन^८ बसुधा-बीर।

गावत गूंगा कछुक पी, दूध-उदधि के तार ॥

५—चौपाई

या भूपति के अजस निहारे। गने परारध^९ ते अति भारे ॥

गावत हैं गूंगा-गन खरे। जिनके बचन समझ नहिं परे ॥

६—सो०—मं चाढ़ सौध^{१०} अमंद, महे मूठ भरि कै नखत।

मीत महुँ गहि चंद, अंक लिए कब लों रह्यो ॥

१ आकार में उगा पुष्प। २ सर्प। ३ खरगोश। ४ जूड़ा। ५ हाथी।

६ बाँझ का पुत्र। ७ बहुरा। ८ वह सख्या जिसके बाद की गणना नहीं है, असंख्य। ९ महल।

७—पद—सस-सींग की करि लेखनी, मसि कुरंग-तृष्णा^१. नीर ।
 आकासपत्रहिं पर लिख्यो, करहीन कोउ कबिबीर ॥
 जनमांध पंगुर मूक बंध्या, को जु सुत लै जाय ।
 जसवंत अपजस बधिर-गन, को है सुनावत गाय ॥

(७०) ललित

दो०—ललित अलंकृत जानिए, कछ्यो चाहिए जौन ।
 ताही के प्रतिबिंब ही, बरनन कीजें तौन ॥

विवरण—जो वृत्तांत कहना है, उसे न कहकर केवल उसका प्रतिबिंबमात्र कहा जाता है । यथा—

१—चौपाई

लिखत सुधाकर गो लिखि राहू । बिधि-गति बाम^२ सदा सब काहू
 यहाँ 'रामजो का राज्याभिषेक था सो ता न हुआ उलटा
 बनवास हुआ' यह प्रस्तुत वृत्तांत है, सो नहीं कहा, उसका
 प्रतिबिंब-मात्र कहा गया ।

२—चौपाई

सोचहिं दूषन दैवहिं^३ देहीं । बिरचत हंस काक किय जेहीं ।

३—चौपाई

यहि पापिनिहिं सूफि का परेऊ । छाय भवनपर पावक धरेऊ ॥

४—दो०—सुनिय सुधा देखिय गरल, सब करतूति कराल ।

जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत^४ मराल^५ ॥

'रामराज्य' का चर्चा केवल सुनने में आया, देखने में न आया, यह कहना था, सो न कहकर यों कहा ।

५—दो०—मेरी सोख सुनति न सखि, उलटे उठति रिसाय ।

सोयो चाहति नींद भरि, सेज अंगार बिछाय ॥

६—दो०—तब न सीख मानी अली, कियो बिचार न कोय ।
चाखा चाहति अमृत-फल, बिष को बीजा बांय ॥

७—सर्वैया

हे 'रघुनाथ' कहा कहिए कहते कछु बात नहीं बनि आवैं ।
देखति हौ इनकी मति को ऋतु पावस बीति गए घर छावैं ॥

(७१) प्रहर्षण (त्रिविधि)

प्रहर्षण = मनचाहा आनंद

(१) प्रथम

दो०—जतन बिना ही होत है, जहँ चित- चाही बात ।

१—दा०—जाको रूप अनूप लखि, सखि न गया धार धार ।
आपुहि ते गया दुहन, आयो वही अहार ॥

२—सवैया

सातहु दीपन के अचनीपति हारि रहे जिय में जब जानै ।
बीस बिसं व्रत-भग भया सु कहो अब केसव को अनु तानै^१ ॥
सोक की आग लगी परिपूरन आय गए घनस्थाम^२ बिहान^३ ।
जानकी के जनकादिक के सब फूलि उठे तरु-पुन्य पुराने ॥

३—चौपाई

नाथ सकल साधन मैं हीना । कीन्हैं कृपा जानि जन दीना ॥

४—दो०—निस्वर-हीन करौं महि, मुत उठाय प्रन कीन ।

सकल मुनिन के आश्रमन, जाय-जाय सुख दान ॥

मुनि लोग ऐसा चाहते हो थे, वही बात बिना किसी
आग्रह के रामजी ने कह दी, और वे स्वयं ही उनके आश्रमों पर
गए, उन्हें कोई विशेष उद्याग नहीं करना पड़ा ।

१ चढ़ाए । २ काला मेघ (राम) । ३ प्रातःकाल ।

५—चौपाई

छुलि गए सकल पटल^१ के तारे^२ । भए निद्रा-रस सब रखवारे ।
अरु बसुदेव देवकी दाऊ । छूटि गए बंधन ते सोऊ ।
६—पद—राम कृपा भय-निसा सिरानी^३ जागे पुनि न डसैहों ।

(विनय-पत्रिका)

राम-कृपा से ऐसी बात हुई, किसी उद्योग से नहीं ।

सूत्रमा—आपुहि तें, राम-कृपा तें अनायास ही, अचानक ही इत्यादि
वा इसी अर्थ के अन्य वचन रूप अलंकार के वाचक जान पड़ते हैं ।

(२) द्वितीय

दो०—जहँ चित-चाही बात तें, अधिक अरथ-सिधि होय

१—दो०—चहत सात पावत सहस^४, गज पावत हय^५ चाहि ।

भाउसिंह दीवान है, जगत सराहत जाहि ॥

२—चौपाई

बरहु खीर हैं हैं सुत चारी । त्रिभुवन-विदित भगत-भयहारी ॥

राजा दशरथ एक पुत्र मांगने गए थे, चार पाए ।

३—दो०—इक फल चाहि पूजत सिवाहि, तुरत मिलें फल चारि ।

४—सवैया

आपुन के कर में बसिबे को बजार में गवरे हाथ बिकाने ।

भाग लखौ मुक्तान को एज्ज^६ हरा^७ है रहैं हियरे लपटाने ॥

(३) तृतीय

दो०—छूँटत जाके जतन को, वस्तु चढ़ै कर आन ।

१—दो०—हरि की सुधि को राधिका चली अली^८ के भौन ।

हंसत बीच हो मिलि गए, बरनि सके सुख कौन ॥

१ किड़ाड़ । २ ताका । ३ बीत गई । ४ हजार । ५ घोड़ा । ६ माला ।

७ सखी ।

२—दो०—निधि-अंजन की औषधी, दूँदत लहो। निधान^१ ।
भूमि में गड़े हुए धन को देखने के लिए एक अंजन बनता है उस 'निधि-अंजन' कहते हैं । उस निधि-अंजन की औषधी को दूँदते हुए भूमि में गड़ा हुआ धन ही मिल गया ।

(७२) विषादन

दो०—जहँ चितचाही बस्तु तें, पावे बस्तु विरुद्ध ।

बुद्धिवंत नर बरनहीं, तहाँ विषादन सुद्ध ॥

१—दो०—उड़िहीं खिलिहै कमल जब, निसि बाने परमान ।

यों सोवत अलि कोस^२-गत, तोरयां करि^३ जलजान^४ ॥

किसी कमलकोश में बंद हुआ भौंरा सोच रहा था कि कल सबेरे इस बदीखाने से निकलूंगा कि इतने में किसी हाथी ने आकर वह कमल ताड़-मराड़ डाला ।

२—चौपाई

एक विधातहिं दूषन देहीं । सुधा दिखाय दीन विष जेहीं ॥

३—चौपाई

लिखत सुधाकर गा लिख राहू । बिधि गति बाम सदा सब काहू ॥

४—दा०—जेना औगुन दूँदिए, गुनै हाथ परि जाय ।

५—दो०—कन^१, देवां सौंण्यो ससुर, बहू थुरहथी^२ जानि ।

रूप रहँ चटे^३ लगि लग्या, माँगन सब जग आनि ॥

सूचना—इन उपर्युक्त चौपाइयों में वाक्यार्थ से 'ललित' अलंकार है परंतु व्यंग्यार्थ से 'विषादन' भी है—राम-राउयाभिषेक चितचाही बात न हुई, वरन् उसके विरुद्ध उन्हें बनवास दिया गया—यह इच्छा से विरुद्ध हुआ । अतः विषादन है ।

१ खजाना । २ कमल का छत्ता । ३ हाथी । ४ कमल । ५ भीख ।
६ छोटे हाथवाली । ७ लाउण ।

(७३) उल्लास

दो०—औरहि के गुन-दोष तें, औरहि को गुन-दोष ।
होत, तहाँ उल्लास कहि, बरनत मति के पोष ॥

विवरण—उल्लास शब्द का अर्थ है—‘प्रबल संबंध’ जहाँ
संसर्ग-संबंध से संगति का गुण-दोष अन्य में वर्णन किया
जाय वहाँ यह अलंकार होता है । इसके चार भेद हैं । यथा—

(१) पहला

दो०—और बस्तु के गुनन तें, और होत गुनवान ।

१—चौपाई

सठ सुधरहि सतसंगति पाई । पारस परसि कुधातु^१ सोहाई ॥

२—चौपाई

सज्जन सकत^२ सिंधु-सम कोई । देखि पूर बिधु बाढ़हि जोई ॥

३—दो०—कह्यो देवसरि^३ प्रगट हूं, ‘दास’ जोरि जुग हाथ ।

भयो सीय तुव न्हान ते, मेरो पावन पाथ^४ ॥

४—कवित्त—कुटिल कुराही^५ कूर कलही कलकी कलिकाल,
की कथन में रहे जे मति खोइ कै ।

तेऊ बिष्नु-अंगन में बैठि सुर-संगन में,
गंग की तरंगन में अंगन को धोइ कै ।

५—दो०—नृप-सभान में आपनी, होन बड़ाई काज ।

साहि-तनय सिधराज के, करत कवित कबिराज ॥

६—चौपाई

मज्जन^६-फल पेखिय ततकाला । काक होहि पिक्^७ बकहु मराला ॥

१ बुरी धातु (लोहा) । २ एक । ३ गंगा । ४ जल । ५ बुरे मार्ग पर
चलनेवाले । ६ स्नान । ७ कोयल ।

(२) दूसरा

दो०—लगे और के दोष तें, दोष जु औरहि आय ।

१—दो०—संगति को गुन साँच है, कहैं जु गुनी रसाल ।

कुटिल कूबरी संग ते, भये त्रिभंगी लाल ॥

२—चौपाई—दुखित होहि पर-बिपत बिसेषी ।

३—दो०—रहिबो उचित न मलथ^१ तरु, यहि कुबंस-बन माहिं ।

घसत परस्पर द्वै अगिन, औरहु तरु जरि जाहि ॥

४—दो०—सिव सरजा के बैर को, यह फल आलमगीर ।

छूटे तेरे गढ़ सबै, कूटे गए वजीर ॥

५—दो०—स्याम-सुरति करि राधिका, तकति तरनिजा^२-तीर ।

अंसुवन करति तरौंस^३ को, छिन खौरोहों^४ नीर ॥

६—दो०—निरखु परस्पर घसन सों, बाँस अनल^५ प्रगटाय ।

जरत आपु सकुटुंब अरु, बनह देत जराय ॥

७—सवैया

भूलि गयो अपनो दुख ता छिन बानर के दुख नैन बहाए ।

(३) तीसरा

दो०—बरने ते गुन और में, दोष और को होत ।

१—चौपाई—‘जरहि सदा पर-सपति देखी’ ।

२—सवैया

चंद-अलोक^१ ते लोक सुखी यह कोक^२ अभागो न सोक तैं छूटै ।

३—दो०—बरसे बारिद के लता, तृन तरु सब हरियात ।

भाग लखो या आक^३ को, जलहू सों जरि जात ॥

४—चौपाई

आक जवास पात बिन भयऊ, जिमि सुराज्य खल-उद्यम गयऊ ॥

१ चंदन । २ यमुना । ३ तल का, नीचे तक का । ४ खौलता हुआ ।

५ आग । ६ आलोक, प्रकाश । ७ चक्रवाक । ८ मदार ।

(४) चौथा

दो०—अवगुन ते जहँ और के, गुन औरहि परकास ।

१—चौपाई—खल परिहास^१ होय हित मोरा ।

२—चौपाई—पर-हित-हानि लाभ जिन केरे ।

३—चौपाई—सुखी होहिं पर-विपति बिसेषी ।

४—कवित्त—डाँवरे^२ की बुद्धि हूँ कै बावरे न कीजै बैर,

रावरे के बैर होत काज सिवराज के ।

सूचना—स्मरण रखना चाहिए कि यह 'उल्लास' अलंकार 'असंगति' अलंकार के प्रथम भेद से कुछ भिन्नता-जुगता है । दोनों में भेद यह है कि उसमें कार्यकारण का संबंध है और इस अलंकार में केवल स्वभाव की अपेक्षा है, कारण-कार्य की नहीं ।

(७४) अवज्ञा

दो०—औरै के गुन दोष तें, औरै गुन नहिं दोष ।

ताहि अवज्ञा कहत हैं, सकल सुकवि मतिपोष ॥

विचरण—यह अलंकार 'उल्लास' का उलटा है । इसके दो भेद हैं ।

(१) प्रथम

दो०—जहाँ एक के गुनन ते, दूजो गुनहि गहै न ।

१—दो०—करि बेदांत विचारहु, सठहि विराग न होय ।

रंच न मृदु मैनाक^३ भो. निसि-दिन जलनिधि सांय ॥

२—सवैया

देखो अभाग कलानिधि^४ को 'रघुनाथ' सदा सिव सीस पै जाग्यो ।

जैसे का तैसा कलंक रहो सिव-संगति को गुन नेकु न लाग्यो ॥

१ हँसी । २ लड़का, बच्चा । ३ एक पर्वत जो समुद्र के भीतर रहता है ।

४ चंद्रमा ।

- ३—दो०—बिपुल बारि बरषत जलद, तरु-तृन सब हरियात ।
 इन पापीन करील में, कबहुँ न उलहत^१ पान ॥
- ४—दो०—बड़वानल-सह सिधु-जल, उपन न होत निहार ।
- ५—दो०—'तुलसी' प्रभु भूपन किए, गुजा बढ़ो न माल ।

(२) द्वितीय

दो०—जहाँ और के दोष ते, दोष न औरै होय ।

- १—दो०—सब तरुवर नव दल लहैं, रितु बसंत के माहि ।
 पत्र न लगै करील महँ, दाँप बसंतहि नाहि ॥
- २—दो०—तिमिर-तोम^२ तुरतै मिटै, प्रगटे जाहि कल्लूक ।
 कहा दाँप दिननाथ^३ दिन, देख जो न उलूक ॥
- ३—दो०—माँतो-सग जु पात^४ के, पहिरै बाला^५ काय ।
 तो माहिमा मुकतान की, घटै न नेकौ साय ॥
- ३—दो०—कहा भयो जो तजत हैं, मिलन मधुप दुख मानि ।
 सुबरन^६-बरन सुवासयुत, चंपक लहं न हानि ॥

५—संवेया

- दोष बसंत को नेक नहीं उलहे न करील की डार जु पाती ।
- ६—दो०—कह बसंत का दाँप जो, पत्र न लहै करील ।
 दूषन मेघहि कौन जो, आतक-मुख नहि नीर ॥
- ७—दो०—बरषि बिस्व हरषित करत, हरत ताप अघ प्यास ।
 'तुलसी' दाँप न जलद को, जल ते जरै जवास ॥
- ८—दो०—'तुलसी' देवल^७ देव का, लागे लाख करार ।
 काक अभागे हगि भर, महिमा भई कि थार ॥

१ नहीं उगते । २ समूह । ३ सूर्य । ४ शंशे की गुरिया । ५ स्त्री ।
 ६ सोना । ७ मंदिर ।

(७५) अनुज्ञा

अनुज्ञा=जो अंगीकार करने याग्य न हो उसे अंगी-
कार करना ।

दो०—इच्छा करिए दोष की, दोषहिं में गुन देखि ।

ताहि अनुज्ञा कहत हैं, सुकबिन-मत अवरेखि ॥

१—चवपैया

मुनि साप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह^१ में माना ।
देख्यौ भरि लोचन हरि भवमोचन^२ यहै लाभ संकर जाना ॥

२—चौपाई

रामहि चितव सुरेस^३ सुजाना । गौनम-साप परम हित माना ॥

३—कवित्त—तप करि-करि कमलापति^४ सौ मांगत यों,
लोग सब करि मनोरथ ऐसे साज के ॥

बैपारी जहाज के न राजा भारी राज के,
भिखारी हमें कीजै महाराज सिवराज के ॥

४—सवैया

चेरिए^५ पै जो गापाल रचैं तां चला री सबै मिलि चेरि कहावैं ।

कूबर ही पै लगैं मन जां सब कम्मर टारि कै हाँडो बँचावैं ।

५—दो०—होउ बिपति जामैं सदा, हिये चढ़त हरि आनि ।

(७६) तिरस्कार

दो०—त्यागिय आदरनीयहू, लखिय जो दोष-विशेष ।

तिरस्कार भूषन कहैं, जिनकी सुमति असेष ॥

१ कृपा । २ सांसारिक दुख दूर करनेवाले । ३ इंद्र । ४ विष्णु ।
५ दासी ।

१—दो०—जरौ सुसंपति सदन-सुख, सुहृद मातु पितु भाय ।
सनमुख होत जो रामपद, करै न सहज सहाय ॥

२—पद—जाके प्रिय न राम बैदेही ।

तेहि त्यागिए कोटि बैरी-सम यद्यपि परम सनेही ।

३—दो०—जिन हांवहु तिय श्रियबिभव^१, गज-तुरंग कलबाग^२ ।

जिनके बस नर करत नहि, हरिचरनन अनुराग ॥

४—चापाई

सो सुख धर्म-कर्म जरि जाऊ । जहँ न राम-पद-पंकज-भाऊ^३ ॥

—दो०—वा सोने को जारिए जाते फाटै कान ।

(७७) लेश

दो०—जहँ बरनत गुन-दोष कै, कहै दोष गुन-रूप ।

भूषन ताको लेस कहि, गावत कुकवि अनूप ॥

(दोष को गुण मानना)

१—दो०—नहि राजा ते दड-भय, नहि कछु चोर-कलेस ।

नहि दिवाले तें डरै, धनि दरिद्र का देस ॥

२—दो०—कोऊ बचत न सामुहे, सरजा सौ रन साजि ।

भली करी पिय समर ते, जिय लै आए भाजि^४ ॥

३—दो०—कागा परत न बध्र में, श्रतिकटु बचन उचारि ।

४—दो०—निर्गुनता जग धन्य है, धिक गुन-गौरव ताहि ।

और बिटण सुख से रहै, चंदन-तरु कटि जाहि ॥

५—चौपाई

बालि परम हितु जासु प्रसादा^५ । मिल्यो राम तुम समन-विषादा ॥

६—चौपाई

जो नहि होत मोह अति मोहीं । मिल्यो तात कवन बिधि^६ ताहीं ।

१ लक्ष्मी का पेश्वर्य । २ सुंदर बगीचा । ३ प्रेम । ४ भाग आए । ५
रूपा । ६ प्रकार ।

(गुण को दोष मानना)

१—दो०—कैद होत सुक सारिका^१, मधुरी बानि^२ उचारि ।

२—चौपाई

मुनि बिनु काज करिय^३ कत रोषू । कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू ॥

३—चौपाई

सुक सारिक^४ जो पढ़ते नहीं । तौ कत परत पिजरन माहीं ।

सब्द-बेध सर जो न चलौते । अंध-साप कत दसरथ पौते^५ ॥

रबि-समि जां न जरत परकासा । तां संतत कत फिरत उदास ॥

सो न होत रघुपति के दाया । तां बन-दुख कत सहत निकाया^६ ।

(७८) मुद्रा

दो०—प्रकृत अर्थ में मिलहिं पद, औरहु नाम-प्रकास ।

मुद्रा तासां कहत हैं, कबिजन सहित हुलास ॥

वि०—प्रस्तुत अर्थ के कथन करनेवाले पदा से जहाँ कोई दूसरा सूचनाय अर्थ भी निकलता है, वहाँ मुद्रा अलंकार माना जाता है ।

१—दो०—सुनि मुरली सुर-धुनि सखि गो^७मति को सुबिबेक ।

जमुनायक का हित भयो, सरसइ^८ हिय धारि टेक ॥

इस दाहे में प्रस्तुत अर्थ के अलावा सुरधुनि (गंगा) गोमति (गामती) जमुना और सरसइ (सरस्वती) नदियों के नाम भी सूचित होते हैं ।

केशवकृत रामचंद्रिका में अयोध्या के वर्णन में यह छंद है—

१ मैना । २ बोली । ३ करते हैं । ४ मैना । ५ पाते । ६ दुःख के समूह । ७ गया । ८ कैलास है ।

२—त्रिभंगी

कविकुल विद्याधर^१ सकल कलाधर^२ राजराज^३वर बेस बने ।
गनपाति^४ सुखदायरूपसुपति^५ लायकसूर^६ सहायक कौनगने ।
सनापति वनजन^७ मंगल^८ गुरुगन^९ धर्मराज^{१०} मन बुद्धि घनी
बहु सुभ मनसाकर^{११} करुनामय^{१२} अरु सुरतरंगिनी^{१३} सांभ सन
इसमें अयाध्या नगरी का वर्णन प्रस्तुत है, पर साथ ही
इसमें ऐसे शब्द आए हैं जिनसे देवपुर (अमरावती) की
भी सूचना मिलती है ।

३—भुजगप्रयात

यचौं मैं प्रभू ते यही हाथ जोरी ।। फरै आपु ते ना कचौं बुद्धि मोरी ।।
भुजगप्रयातोपमा चित्त जाको ।। जुरै ना कदा भूलि कै संग ताको ।।
इस छंद में ईश्वर-प्रति विनयरूपी प्रस्तुत अर्थ के अलावा
यह भी सूचित होता है कि यही छंद 'भुजगप्रयात' नामक
छंद का उदाहरण भी है । 'यचौं' शब्द से सूचित होता है कि
य, चौं अर्थात् चार यगण का यह छंद होता है ।

इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिए । कविवर जग-
आथप्रसाद (भानु) कृत 'छंद-प्रभाकर' ग्रंथ के वर्णित छंदों
में उदाहरणों में सर्वत्र यही अलंकार निवाहा गया है ।

- १ विद्वान् २ कलाविद् । ३ श्रेष्ठ छत्री । ४ समूह के अफसर । ५ पशुशाला
के अधिकारी । ६ वीर । ७ पंडित । ८ मांगलिक पाठ करनेवाले ।
९ पाठशाला के शिक्षक । १० न्यायकर्ता । ११ मनवांछित फल देनेवाले ।
१२ दयावान् । १३ मयू नदी ।

❁ इस छंद में कवि (शुक्र), विद्याधर (देव-विशेष), कलाधर
(चंद्रमा), राजराज (कुबेर), गनपति (गणेश), सुखदायरूप (इंद्र),
पशुपति (महादेव), सूर (सूर्य), सेनापति (स्वामि कार्तिकेय), बुध,
मंगल, गुरु (बृहस्पति), धर्मराज (यम), मनसाकर (कलरात्र या
कामधेनु), करुनामय (विष्णु), सुरतरंगिनी (गंगा) में मुद्रा है ।

सूचना—कभी, कभी नाटक-ग्रंथ में अथवा कथा-ग्रंथ में चतुर कवि आदि में ही कोई ऐसा छंद रख देता है कि जिससे समस्त ग्रंथ में वर्णित कथा की सूचना मिल जाती है। ऐसे छंद में, मुद्रा अलंकार माना जाता है।

अनघराघव नाटक में आदि ही में सूत्रधार कहता है।

४—दो०—नीति रीति सौ चलत तेहि, तिर्यक^१ होत सहाय ।
कुपथ चलै तेहि का तजहि, सांझरहू जग भाय ॥

चोपाई

जो जन नय-पथ-बिचरन लायक । तिर्यकहू तेहि होत सहायक ॥
जो जग में अनीति मग भजहीं । तुरत सहांदरहू तेहि तजहीं ॥
इन कविताओं से नाटक की पूरी कथा की सूचना मिलती है।

बाबू हरिश्चंद्र-कृत 'मुद्राराक्षस' नाटक के आदिमें यह दोहा है।—

५—दो०—चंद्र बिंब पूरन^२ भए, क्रूर केतु हठ दाप ।
बल सौ करिहै आस कह, जेहि बुध^३ रक्षत आप ॥

इस दोहे से 'मुद्राराक्षस' नाटक में वर्णित चंद्रगुप्त, मलय केतु और बुध (चाणक्य) की कार्रवाई की सूचना मिलती है।

इसी प्रकार 'रत्नावली नाटिका' तथा 'प्रेमयोगिनी' में बाबू हरिश्चंद्र ने यह दोहा नांदी में कहलाकर ग्रंथ के वर्णन की सूचना दिलवाई है।

६—दा०—भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर ।

जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर^४ ॥

इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामायण में अरण्य-कांड का यह सारठा कांड भर की कथा की सूचना देता है—

७—१०—उमा रामगुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिं खिरति^१ ।
पावहि मोह बिमूढ़, जे हरि-बिमुख न धर्म-रति^२ ॥
सुंदरकांड के आदि का यह श्लोक कांड भर की कथा
का सूचक है—

८—मालिनी

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं,
दनुजवनकृशानुं क्षानिनामग्रगण्यं ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं,
रघुपतिवरदूतं, वातजातं नमामि^३ ॥

लंकाकांड के आरंभ का यह दोहा लंकाकांड भर की कथा
का सूचक है—

६—दा०—लव निमेष परमान युग, बरष कल्प सर चंड ।
भजसि न मनु तेहि राम कहँ, काल जासु कांदंड^४ ॥

सूचना—फारसी और उर्दू में इस अलंकार को “मिराश्चातुबज़ीर”
कहते हैं। उर्दू में इसी को ज़िला भी कहते हैं। एक उदाहरण यह है—

१०—शेर—नज़र बदली जो देखी उस सनम की ।
न दी नालों^१ ने फुर्सत एक दम की ॥

यहाँ प्रस्तुत अर्थ के सिवा बदली, नदी, नाला से अन्य
सूचनीय अर्थ भी निकलते हैं।

(७६) रत्नावली

दो०—प्रस्तुत अर्थ कहत कहुँ, क्रम ते औरौ नाम ।
वहै रुचिर रत्नावली, अलंकार सुखधाम ॥

१ संसार से वैराग्य । २ प्रेम । ३ अत्यंत बलशाली, सुमेरु-समान
शरीरवाले, राक्षस रूपी वन को जलाने के लिए अग्नि, ज्ञानियों में प्रधान,
सब गुणों की खानि, वानरों के अधिपति, रामचंद्र के श्रेष्ठ दूत, पवन के
पुत्र (हनुमान) को मैं प्रणाम करता हूँ । ४ धनुष । ५ रोना ।

१—दो०—रसिक चतुरमुख लक्ष्मीपति, सकल ज्ञान के धाम ।

अर्थात् हे रसिक, तुम चतुरों में मुख्य हो, लक्ष्मीवान हो और संपूर्ण ज्ञान के धाम हो । यह प्रस्तुत अर्थ हुआ । परंतु साथ ही अन्य नाम भी क्रम से निकलते हैं अर्थात् वनुमुख = प्रह्ला, लक्ष्मीपति = विष्णु, सकल ज्ञान के धाम = शिव ।

२—कवित्त—जीतहिं प रावत^१ ऐरावत सों जंग^२ अग,
 पुंडरीक के गनत पुंडरीक^३ छंद हैं ।
 बावन बावन^४ मृदु कुमुद कुमुद^५ गनै,
 अंजन^६ के जैतचार अंजन स कंद हैं ॥
 पुष्पदन्त^७ के दंत नारैं ज्यों पुहुपसार^८,
 छीन लेत सार्वभौम^९ के सदा मंद हैं ।
 प्रवत्त प्रतीक^{१०} सुप्रतीक के जितैया,
 रैयागव भाऊसिंह^{११} तेर दान के दुरद^{१२} हैं ॥

यहां भाऊसिंह के दिए हुए हाथियों को प्रशंसा ता प्रस्तुत अर्थ है, पर साथ ही आठ दिग्गजों के नाम क्रम से निकलते हैं—अर्थात् ऐरावत, पुंडरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदन्त, सार्वभौम और सुप्रतीक ।

३—सवैया

रवि सिर-फूलमुखै ससि-तूल महीसुत^१ 'बंदनबिंदु'^२ सुभांति ।
 पना^३ 'बुधकेसर-आड़'^४ 'गुरौ नथ मातिय सुक करैं दुख सांति ।
 सनीहैं सिंगार बिधु नृद^५ 'बार सजै भव केतु'^६ 'सबै तन-कांति ।
 निहारिय लाल भरा सुखजाल बनी यह बाल नवप्रह-पांति ।

१ प्रवान । २ युद । ३ कमल । ४ बीना । ५ कुई । ६ काजल । ७ कूर्गों का मार । ८ साह । ९ हाथी । १० मांठ । ११ रोक । १२ पद्मा । १३ केसर का टीका । १४ राहु । १५ कामदेव ।

इसमें क्रम से 'नवग्रह' के नाम आए हैं ।

४—सवैया

प्रादित सोम कहौ कबहुँ कबहुँ कहौ मंगल औ बुध होते ।
औ गुरु सुक्र सनीचर की कहिबो कबहुँ मुख सो नहिं रीते ।
गोहि न जानि परै 'रघुनाथहि' भेंट का है दिन कौन सो चीते ॥
आवत जान में हारि परी तुम्हें बार बनावत बासर बीते ।

इसमें सातों दिनों के नाम क्रम से आए हैं ।

सूचना—इसमें यह आवश्यक है कि कही हुई वस्तुओं का प्राकृतिक क्रम भंग न होने पावे ।

(८०) तद्गुण

दो०—छोड़ि आपनो गुन जहाँ, औरन को गुन लेत ।

अलंकार तद्गुण तहाँ, यरनै कबि करि हेत ॥

विवरण—'गुण' शब्द का अर्थ इस अलंकार में केवल 'रंग' है । उल्लास और अवज्ञा अलंकारों में गुण का अर्थ 'धर्म' अथवा 'दोष' विरोधी भाव है । यह अंतर भले प्रकार समझ लेना चाहिए । 'भूषण' ने स्पष्ट कहा है—

दो०—जहाँ आपनो रंग तजि, गहै और को रंग ।

ताको तद्गुण कहत हैं, भूषण बुद्धि उतंग ॥

१—सवैया

जाहिरै जागत सी जमुना जब बूड़े बहै उमहै १ वह बेनी २ ।
त्यों 'पद्माकर' हीर के हारन गंग तरंगन-सी सुखदेनी ।
पायन के रँग सों रँगि जाति सी भाँति ही भाँति सरस्वती सेनी ।
परै जहाँ ही जहाँ वह बाल तहाँ ३ तहाँ ताल में होति प्रियेनी ।

१ बिचारे हुए । २ प्रत्यक्ष । ३ ऊपर निकलती है । ४ चोटी । ५ भ्रेणी । ६ नायिका ।

- २—दो०—गई बिसद रँग रुचिरई, भई अरुन छवि नौल^१ ।
 लै मुकुता कर में करति, तू मूँगा को मौल ॥
- ३—दो०—सोनजुही सी होति दुनि, मिलत मालनी-माल ।
- ४—दो०—अधर धरत हारि के परत, ओंठ डीठि पट-उपोति ।
 हरित बाँस की बाँसुरी, इंद्रधनुष-रँग हांति ॥

सूचना—किया किसी आचार्य का मत है कि 'रँग' के अलावा 'रम' और 'गंध' भी इसी अलंकार का विषय है । परन्तु हमें जिनने उदाहरण हमके मिले हैं वे सब रँग ही से संबंध रखते हैं और भूषण ने तो परिभाषा ही में 'रँग' शब्द कह दिया है ।

(८१) अतद्गुण

- दो०—रहे आन के संगह, गुन न आन को होय ।
 ताहि अतद्गुन कहत हैं, कबि कोविद सब कोय ॥

विवरण—इस तद्गुण का उलटा समझना चाहिए । इसमें भी केवल रंग का विचार ही मुख्य है ।

- १—दो०—लाल बाल अनुराग सौं, रँगत रोज सब अंग ।
 तऊ न छाँड़त रावरी, रूप साँवरी रँग ॥
- २—दो०—गंगाजलसित^१ अरु अक्षित^२, जमुना जलहु अन्हात ।
 हंस रहत तो सुभ्रता, तैसिय बढ न घटात ॥
- ३—दो०—सिध सरजा की जगत में, राजति कीरति नौल ।
 अरि-तिय-दृग-अंजन हरै, तऊ धौल^३ को धौल ॥
- ४—दो०—कज्जल हव जमुना जलहिं, ससि सम सुरसरि नीर ॥
 न्हात न अट बढ स्वेतता, राजहंस धरि धीर ॥

१ नवल, नई । २ उज्ज्वल । ३ श्याम । ४ उज्ज्वल ।

(८२) पूर्वरूप (द्विधा)

(प्रथम)

दो०—बहुरि मिलै गुन आपनो, जहाँ आन के संग ।

पूरवरूप तहाँ प्रथम, भाषै सुमति उतंग ॥

१—दो०—लखन नीलमनि होत अलि ! कर बिटुम^१ ठहरात ।

मुकुता को मुकुता बहुरि, लख्यो तोहि मुसुकात ॥

२—दो०—मुकुत-माल हरि के हिये, मरकत^२ मनिमय होत ।

पुनि पावन निज रूप लहि, राधे-मुख-उद्योत ॥

३—सर्वैया

‘भूपन’ यों सिवराज की आक भये वियो अरुने रंगवाल !

लोहे कटे लपटे अति लोह^३ भये मुँह मीरन के पुनि लाले ॥

४—वरवै—केस मुकुत मखि, मरकत-मनिमय होत ।

हाथ लेत पुनि मुकुता करत उद्योत ॥

—वरवै रामायण

मूचना—पुनि, बहुरि, फिरि इत्यादि इसके वाचक हैं ।

(दूसरा)

दो०—वस्तु बिनासेह बहुरि, तरह पीछली होत ।

दूजो पूरवरूप तेहि, बरनत पंडित-गोत ॥

विवरण—जिस वस्तु से मिलकर कुछ गुण बढ़ जाना कहा गया है वा अनुमान किया जाय, उसके विनष्ट हो जाने पर भी पूर्ववत् (वैसा ही, जैसा उस वस्तु के साथ रहने समय था) बना रहना वर्णन किया जाय वहाँ दूसरा पूर्वरूप होता है ।

१ मूँगा । २ नीलम । ३ लून ।

१—दो०—अंग-अंग नग जगमगत, दीप-सिखा सी देह ।

दिया बढ़ाएह^१ रहत, बड़ा उजेरो गेह ॥

२—दो०—अथयेह ससि हँसनि की, छाई छटा अनूप ।

३—दो०—दीप बढ़ायेह रहै, रसनामनि^२ परकास ।

४—दो०—अथयेह इन्दुहि तिमिर-तोमहि दियो पङ्खलि^३ ।

चहूँ ओर मुख-चंद की, रही चाँदनी फंलि ॥

५—सवैया

भौन अँधेरहूँ बीच गए मुख-जोति तें वैसिए होत उज्यारी ।

६—सवैया

आठयें^४ के ससिह के अथौत^५ भई मुख रावरे की उजियारी ।

(८३) अनुगुन

(अनुगुण = गुण का और अधिक बढ़ना)

दो०—पहिले को गुन आपनो, बढ़ै आन के संग ।

तासों अनुगुन कहत जे, जानत कबिना-अंग ॥

विवरण—इस अलंकार में पिछले तीन अलंकारों की तरह केवल रंग ही का ग्रहण न समझना चाहिए वरन् सभी प्रकार के गुणों का ग्रहण समझना चाहिए ।

१—दो०—मुक्तमाल हिय हास तें, अधिक संत हें जात ।

२—कवित्त—भानुवंस-भूषन महीप रामचंद्र बीर,

रावरो सुजस फैल्यो आगर^१ उमंग में ।

कवि 'लछिराम' अभिराम दूतो संपह सों,

चौगुने चमकदार हिमगिरि गंग में ॥

१ बुझाने पर । २ करधनी के जवाहिरात । ३ पीछे कर दिया । ४ अष्टमी ।

५ अस्त होने पर । ६ चतुर ।

जाकी भट घेरे तासों अधिक परै है और,
पचगुनो हीरा-हार चमक-प्रसंग में ।
चट मिलि नौ गुनो नखुवन सों सौगुनो द्वे,
सहसगुनो ओ छीरसागर-तरंग में ॥

३—कवि—कज्जल-कलित^१ अंसुवान के उमंग-संग,
दूनो होत रोज रंग जमुना के जल में ।

४—चौपाई

मनि मानिक मुकता-छवि जैसी । अहिगिरिगल सिर सोह न नैसी ॥
नृप-किरीट तरुनो-तनु पाई । लहैं सकल सोभा अधिकाई ॥

सूचना—इस चौपाई में कमालकार भी है । परंतु इसका लक्ष्य केवल वाधा चरण है ।

५—चरवा—चपक-हरवा अंग मिलि, अधिक सोहाय ।

(८४) मौलित

दो०—दुह चीजें इक रंग जहँ, मिले न भेद लखाय ।

मौलित तासों कहत हैं, कबि-कोबिद हरषाय ॥

१—दो०—मरकत मनि अलि सीस पै, नेकहुँ नाहि लखात ।
सुवरन^२ के भूषन सिया, तन सुवरन^३ मिलि जात ॥

२—दो०—अधर पान अंजन नयन, लगा महाउर पाय ।
सिय-तन ये दरसत नही, अंगन रहे समाय ॥

३—चौपाई

येनु^४ हरितम निमय^५ सब कीन्हें । सफल सपन^६ परहि नहिं चीन्हें ॥

४—दो०—पंखुरी लगी गुलाब की, गात न जानी जाय ।

५—दो०—पान-पीक अधरान में, सखी लखी नहिं जाय ।
कजरारी अंखियान में, कजरा^७ री न लखाय ॥

१ युक्त । २ सोना । ३ सुंदर रंग (वर्ण) । ४ बाँस । ५ हरा रत्न ।

६ पत्रयुक्त । ७ काजल ।

(८५) उन्मीलित

दो०—जहँ मीलित में हेतु लहि कछुक भेद बिलगाय ।

उन्मीलित, सुरसुरि मिले ज्यों जमुना लग्निजाय ॥

१—दो०—समझा परत सुगंध तें तन केसर को लेय ।

२—बरवै—चपक-हरवा अंग मिलि, अधिक सांहाय ।

जानि परै सिथ हियरें, जव कुम्हिलाय ॥

३—दो०—चपक-तन घन-वरन बर, रह्यो रंग मिलि रंग ।

जानी जात सुवास ही, केसर लाई अंग ॥

४—दो०—सम प्रकास तम पाख^१ दुहुँ नाम-भेद बिधि कीन्ह ।

ससि-पोषक सोपक समुझि, जग जस अपजस दान्ह ॥

५—दो०—सिथ सरजा तव सुजस में मिले धवल छवि-तूल^२ ।

बोल वास तें जानिये, हंस चमेली कूल ॥

६—दो०—मिलि बंदन बेंदी रही गोरे मुख न लखात ।

ज्यों ज्यों मद^३ लाली चढ़ी त्यों त्यों उपरत जात^४ ॥

सूचना—स्मरण रखना चाहिए कि तदगुण और अतदगुण अलंकारों में केवल 'रंग' का ही विषय वर्णित होता है । मीलित और उन्मीलित में केवल 'रंग' ही नहीं बल्कि रस, गंध के भी विषय वर्णित होते हैं । आगे सामान्य और विशेषक अलंकार लिखे जायेंगे जिनमें 'आकार' वर्णित विषय होता है । इन अलंकारों का भेद सूचक बारीकी से समझना और स्मरण रखना चाहिए ।

(८६) सामान्य

दो०—वस्तु दोय आकार इक, भेद न परै लग्नाय ।

तहँ सामान्य बखानहीं, अलंकार कबिराय ॥

१—चौ०—एक रूप तुम आता दोऊ ।

१ पक्ष । २ समान उद्गार छविमाने । ३ गलाव । ४ प्रकट हो जाती है ।

२—नाहि फरक थु निकमल अरु हरिलोचन अनिमेष ।

यहाँ कान में खोंसे हुए प्रस्फुटित कमल पुष्प के दलों और कृष्ण के अनिमेष नेत्रों में आकार की एकता से भेद नहीं जान पड़ता ।

३—सर्वथा

जानो न जात मसान औ बाल गोपाल गुलाब चलावत चूकें ।

यहाँ भी आकार ही के विचार से एकता है

४—भुजंगप्रयात

भगी देखि कै संकि लंकेश-बाला^१ । दुरी दौरि मंदोदरी चित्रसाला ।
हाँ दौरि गो बालि को पूत फूल्यो । सब चित्रका पुत्रिका देखि भूल्यो ॥
हैं दौरि जा का तजै ताकि ताको । तजै जा दिसाको भजै वाम ताको ।
मले कै निहारी सब चित्रसारी । लहै सुंदरी क्यों दरी को बिहारी^२ ॥

—रामचंद्रिका

लंका में युद्ध होने समय अंगद और हनुमान रावण के गनिवास में घुसकर मंदोदरी को पकड़ना चाहते हैं । मंदोदरी चित्र सारी में जा घुसी और वहाँ बनी हुई तसवीरों में ऐसी मिल गई (आकार की समता से) कि अंगद यह नहीं जान सके कि कौन चित्र है और कौन असल मंदोदरी है ।

५--चोपाई

भरत राम एकै अनुहारी^१ । सहसा लखि न सकें नर नारी ॥
लखन सत्रसूदन इक रूपा । नख-सिख तैं सब अंग अनूपा ॥

(८७) विशेषक

दो०—सामान्यहि में जहँ कछु, कैसहुँ भेद जनाय ।

ताहि बिसेषक कहत हैं, सब कवि कोबिद राय ॥

१ नायिका । २ मंदोदरी । ३ छिपी । ४ कंदरा में घूमनेवाला (बंदर) । ५ समान रूपवाले ।

विवरण—पूर्वोक्त 'सामान्य' अलंकार ही में (आकार का विचार लिये हुए) जहाँ किसी कारणवश दोनों वस्तुओं का भेद ज्ञात हो जाय वहाँ विशेषक अलंकार होगा । जैसे—

१—दो०—मनमोहन मनमथन का, द्वै कहता को जान ।

जो इनहूँ कर कुसुम का, होता बान-कमान ॥

अर्थात् श्रीकृष्ण और कामदेव एक ही रूप और आकार के हैं, भेद यों जाना जाता है कि कृष्ण के हाथ में फूलों के धनुष-बाण नहीं हैं ।

२—कवित्त—'भूपत' भनत एतं मान यमसान भयो,

जान्यो न परत कौन आशो कौन दल ते ।

सम वेप तःके तहाँ सरजा सिवा के बाँके,

बीर जाने हाँके देत^१ मीर जाने चलने ॥

३—दो०—कागन में मृदु बानि^२ तँ, मै पिक लियो पिछानि^३ ।

(८८) विशेषकोन्मीलित

दो०—जहँ विशेषकोन्मिलित मिलि, भेदहिं प्रगटै आय ।

तहँ विशेषकोन्मिलित है, कहत सुकवि-समुदाय ॥

जहाँ उन्मीलित और विशेषक दोनों का मेल पाया जाय वहाँ यह अलंकार कहा जाता है

१—दो०—ससि में मुख में भेद कलु, नेकु न परत लखाय ।

बिन कलंक अरु वास^४ तँ, मिय-मुख जानो जाय ॥

२—चौपाई

वय^५ बपु^६ बरन^७ रूप सोइ आली । सील सनेह सरिस समचाली ॥

वेप न सां सखि तीय न संगी । आगे अनी^८ चली चतुरंगा ॥

१ हुँकार करते हुए । २ बोला । ३ पहचान । ४ सुगन्ध । ५ अवस्था । ६ शरीर । ७ रंग । ८ सेना ।

सूचना—गुमान कवि कृत 'नैषधकाण्ड' में 'पवनरत्नी' का प्रयोग देवों । दमयन्ती के स्वयंवर में राजा 'नल' आए हैं । इंद्र, अग्नि, यम और वरुण देवता भी राजा नल ही का स्मरण (उषों का त्यों) धारण का स्वयंवर में बैठे हैं । इस प्रकार 'नल' के पाँच रूप देखकर दमयन्ती घबराई है कि उन पाँचों में से असली 'नल' कौन है । सरस्वती का स्मरण काके दमयन्ती विचारने लगी है, तब भेद स्फुटित हुआ है । वह काण्ड यों है—

३—घाटक

सुनिके यह अद्भुत बात नई । पंचह नल और चकी^१ चितई ।
नहि पावत है निरधार कियों । धरको हियरा तन ताप लियों ।

सयुक्ता

सुर चारि आनंद सो पगे । नहि पायें भूतल मे लगे ।
जल के लगे पग मेदनी^२ । लखि जानि जानि नितंशिनी^३ ।
सुर के सरीरन में कही । कन रेनु के लखिये नही ।
नल देह पे दुति पायके । जनु भूमि भेंटत जाय^४ कै ।

घाटक

नलके पल लोयन^५ माहि लगे । सुरनैनन में न निमेष लगे ।
सुर सीस न फूल मलीन भये । नल के सिर के कुम्हिलाय गये ।

तारक

इन भेदन सों नल को पहिचानो । चित अंतर सिंधु सुधाहि समानो ।

इस कविता में 'विशेषकोन्मीलित' अलंकार है । केवल 'उन्मीलित' इसलिए नहीं है कि शुरू उन्मीलित में केवल एक वस्तु में कोई विशेषता सूचक बात कही जाती है, इसमें दोनों वस्तुओं (देवता और नल) में विशेषता सूचक चिन्ह कहे गए हैं । और केवल 'विशेषक' इसलिए नहीं है कि 'विशेषक' में केवल 'आकृति' की ही समानता वर्णन की

१ चकवाड़ाई । २ पृथ्वी । ३ रमणी (दमयन्ती) । ४ जाव । ५ नेत्र ।

जाती है, अन्य गुणों की नहीं। इसमें आकृति के अलावा अन्य गुणों अर्थात् रूप, रंग, कोमलता इत्यादि की भी समता (राजा नल और देवताओं की) विवक्षित है ।

(८१) गूढ़ोत्तर

दो०—अभिप्राययुत जवाब जहँ, कहि गूढ़ोत्तर सोय ।
प्रश्न मानि लीजै कहँ, कहँ पूँछे पर होय ॥

विवरण—जहाँ कुछ गूढ़ अभिप्राय सहित उत्तर का वर्णन हो, वहाँ यह अलंकार होता है। यह दो प्रकार से हो सकता है। एक वहाँ जहाँ केवल उत्तर कहा जाता है और उसी उत्तर से कल्पना कर ली जाती है कि ऐसा प्रश्न किया गया होगा। दूसरा प्रश्न सहित कहा जाता है।

(१) कल्पित प्रश्न

१—दो०—याम घरीक निवारिये, कलित^१ ललित अलिपुंज ।

जमुना-तीर नमाल-तरु, मिलति मालती-कुंज ॥

बिना पूछे ही स्वयं अपना परिचय देने में सर्वत्र यही अलंकार होगा। जैसे तुलसीकृत रामायण के सुंदरकांड में बिना हनुमानजी के पूछे ही विभीषण अपना परिचय दे चले हैं। देखो—

२—चौपाई

सुनहु पवनसुत रहनि^२ हमारी । जिमि दसनन महं जीभ बिचारी ॥

.....इत्यादि

इसमें विभीषण का गूढ़ अभिप्राय अपनी दीनता दिखाकर रामदूत की कृपा संपादन करना था।

हनुमानजी जय संजीवनी लेने जाते थे, तब कालनेमि राक्षस कपटमुनि के भेद से बिना पूछे ही कह चला है—

३—चौपाई

हात महारन रावन रामहि । जितहिँ राम न संसय या मंहि ॥
इहाँ भए^१ में देखौ भाई । ज्ञान दृष्टि बल मोहि अधिकई ।

.... आदि

इसमें गूढ़ अभिप्राय अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करके हनुमानजी का उगना था ।

इसी प्रकार अन्य स्थानों में भी समझ लेना चाहिए ।

सूचना—स्वयं दृष्टिका नायिका के वचनों में मन्त्र वहाँ अलंकार होता है ।

(२) प्रश्न-सहित

(राक्षस और हनुमान का प्रश्नोत्तर)—

१—हरिगीतिका

कपि कौन तू ? सुत-अक्षय-वातक, कौन बल ? रघुनाथ के ।
रघुनाथ का ? खर-दूषणांतक, अनुज-लक्ष्मण साथ के ।
लखन को ? तब भगिनि जानति, परसुधर^२-मद जेहि हरयो ।
परसुधर को ? सहस्रभुजरिपु दीप जेइ तब सिर धरयो ।
पठवा जा केइ ? सुग्रीव, का, हरि^३बालि सोदर^४ जानिये ।
कपि बालि को ? तुम रह्यो जाकी काँव में सुधि आनिये ।
किमि सिंधु नाँवो ? गोपद^५ ज्यों, केहि हेन ? सिय-चोर^६ लगै ।
सिय कौन ? कन्या जनक की तुम बाण^७गे जाके मगै^८ ।
कस बाण ? साइ बलि सुवन जेइ तोहि बाँधि नचायऊ ।
को कहत यहि बिधि ? पट्टिमनी^९ जेइ जलाधि माँझ चलायऊ ।

१ से । २ परशुगम । ३ बंदर । ४ सहोदर । ५ गोखुर से बना गूढ़ा ।
६ बाणासुर । ७ यत् । ८ दृष्टि । ९ पट्टिमनी ।

इसमें हनुमानजी का गूढ़ अभिप्राय रावण को लज्जित करना है ।

२—दो०—बाल कहा लाली परी, लोचन-कोचन^१ मांह ।

नाल तिहारे दृगल, की परी दृगल में छांह ॥

(१०) चित्रोत्तर

(यह अलंकार दो प्रकार का है)

(प्रथम)

दो०—जहँ ब्रूक्षत कलु बात के उत्तर सोई बात ।

प्रथम चित्र तेहि कहन हैं सकल सुकवि अवदात ॥

विवरण—जिन शब्दों में प्रश्न किया जाता है वे ही शब्द उत्तर के भी हो जाते हैं ।

१—दो०—को है जारत अगिन बिनु ? को रे नेह-विहीन ?

२—चौ०—तात कहाँ ते पाती आई ?

३—चौ०—का वर्ण जव कृपी सुखाने ?

४—को कहिये जल सों सुखी ? को कहिये पर^२स्याम ?

को कहिये जे रस बिना ? को कहिये सुख बाम^३ ?

(१) प्रथम उदाहरण में,—(प्रश्न)—बिना अग्नि के कौन जलाना है ? (उत्तर)—कोह (कोध) ही बिना अग्नि के जलाना है । (प्रश्न)—नेहहीन व्यक्ति को क्या कहते हैं ? (उत्तर)—नेहविहीन व्यक्ति को 'कोरा' कहते हैं ।

(२) दूसरे उदाहरण में—भरतजी राजा दशरथ से पूछते हैं ।

(प्रश्न)—हे तात यह पाती (पत्नी) कहाँ से आई है ?
इन्हीं शब्दों में राजा दशरथ का उत्तर भी हो जाता है (उत्तर)—
तात (रामचंद्र) के यहाँ से पाती आई है ।

(३) तीसरे उदाहरण में भी ठीक इसी प्रकार समझो ।

(४) चौथे उदाहरण में (प्रश्न)—जल से किसको सुखी कहना चाहिए । (उत्तर)—कोक (चक्रवाक) का हृदय जल से सुखी होता है । (प्रश्न)—जिसके पर काले हो उसे क्या कहते हैं । (उत्तर)—काक (कौवा) का सीना और पर श्याम होते हैं । (प्रश्न)—जा रसहीन हैं उन्हें क्या कहना चाहिए ? (उत्तर)—जा अरसिक हैं उन्हें काक (हृदय) कहना चाहिए । (प्रश्न)—स्त्री किसके लिए सुखरूप है ? (उत्तर)—स्त्री कोक (चक्रवाक) के लिए सुखरूप है ।

(२) दूसरा

दो०—बहुते बातन को जहाँ, उत्तर दीजै एक ।

चित्रोत्तर सो दूसरो, कहैं सुकवि सविवेक ॥

१—सो०—गाउ, पीठ पर लेहु, अंगराग कर, हार कर ।

गृह प्रकाश करि देहु, कृष्ण कहा 'सारंग' नहि ॥

इसमें राधिकाजी के पाँच वाक्य हैं—(१) गाओ, (२) पीठ पर लेलो, (३) अंगराग कर दो, (४) माला बना दो, (५) घर में प्रकाश कर दो । इन पाँचों का उत्तर कृष्ण ने एक बात कहकर दिया कि 'सारंगनही है' । 'सारंग'शब्द अनेकार्थवाची है । यहाँ इसके अर्थ यों हैं—(१) बीणा, (२) घोड़ा, (३) चंदन, (४) फूल, (५) दीपक ।

२—दो०—को हरि-बाहन ? जलधिसुन ? काको हाथ जहाज ?

चतुर सुकवि उत्तर दिया, एक बचन 'द्विजराज' ॥

यहाँ तीन प्रश्न हैं ? सबका उत्तर 'द्विजराज' शब्द है—

(१) गरुड़, (२) चंद्रमा, (३) ब्राह्मण ।

- ३—दो०—को मरु-भुव पालन सु अब? को नित थिर जु रहंत?
 यूरुप-पदवी कौन मुख, जानहु प्रिय 'जसवंत' ॥
 (प्रश्न)—मरुभूमि का इस समय कौन पालन करता है?
 (उत्तर)—जसवंत = (महाराजा जसवंत सिंह) ।
 (प्रश्न)—नित्य कौन स्थिर रहता है?
 (उत्तर)—जसवंत = (यशस्वी पुरुष) ।
 (प्रश्न)—यूरुप में कौन सी पदवी मुख्य मानी जाती है?
 (उत्तर)—'ज' और 'स' वाली पदवी अर्थात् जी०
 सी० (G. C.) ।

४—चौपाई

प्यावहु बारि^१, बिदारहु मृगवर^२। 'सर'^३ दिग नाहि प्रियायहि अवसर

५—दो०—पंथी प्यासो जाय, गदहा रहै उदास क्यों ।

उत्तर दीन बनाय, एक बचन 'लोटा'^४ न था ॥

६—दो०—कोरेन में सनमुख लरन? को तमरिपु भरपूर ।

उदर-ध्याधि अति कठिन का? सुकधि 'दीन' कह 'सूर'^५ ॥

इसमें तीन प्रश्न हैं । तीनों का उत्तर 'सूर' शब्द से हो
 जाता है ।

(११) सूक्ष्म

दो०—सूक्ष्म कृति लखि आन की, करै क्रिया कछु भाय
 ताको नाम बखानहीं, सूक्ष्म सब कबिराय ॥

विचरण—दूसरे का किया हुआ कोई सूक्ष्म कृत्य (इशारा
 वा चेष्टा) देखकर इशारे ही से उसका उत्तर देने वा समाधान

१ जल । २ बाण, तालाब । ३ लोटा (बर्तन), जमीन में लेटना ।
 ४ शूर, सूर्य, शूल की पीड़ा ।

कर देने के वर्णन में यह अलंकार होता है। इस अलंकार के लिये यह जरूरी है कि इशारा वा कोई कृत्य दोनों ओर से होना चाहिए। आगे जो 'पिहित' अलंकार है, उसमें और इसमें यह भेद है कि इसमें एक कोई तात्पर्य सूत्रक क्रिया करेगा, तब दूसरा उसके उत्तर में कोई साभिप्राय चेष्टा करेगा और पिहित में एक के आकार से (बिना किसी क्रिया के) उसका छिपा हुआ वृत्तान्त समझकर दूसरा कोई ऐसी क्रिया करेगा जिससे प्रगट हो जाय कि वह उसका छिपाया हुआ वृत्तान्त जान गया। यथा:—

१—चौपाई

सीताहि सभय देखि रघुराई । कहा अनुज सन सैन बुझाई ॥

यहाँ सूपनखा का विकट रूप देखकर सीता जी ने भय, सूत्रक कोई चेष्टा का, तब रामजी ने सीता का समाधान करने के लिये इशारे से लक्ष्मणजी से सूपनखा के नाक-कान काट लेने का इशारा किया।

२—चौपाई

बिनय प्रेम बस भई भवानी^१ । खसी^२ माल मूरति मुसकानी ।

यहाँ बिनय से भवानीजी सीताजी के मन का अभिप्राय समझ गई और मुसकाकर अपना तात्पर्य भी जता दिया।

३-दो०-गौतम-तिय-गति^३ सुरति करि^४, नहि परसति पद पानि ।

मन बिहंस रघुवंसमनि, प्रीति अलौकिक जानि ॥

४—सो०—सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे-अटपटे ।

बिहंस करुना-ऐन^५, चितै जानकी लपन-तन^६ ।

१ पार्वती । २ खिसकी । ३ दशा । ४ स्मरण करके (पत्थर से छाँ हो जाना) । ५ घर । ६ ओर ।

(१२) पिहित

दो०—जहाँ छिपे पर-वृत्त को, समुझि करै कछु काज ।
जाने प्रगटै जानिचो, सो पीहित कहिराज ॥

विवरण—‘पिहित’ शब्द का अर्थ है ‘आच्छादित’ । जहाँ अपना हाल छिपानेवाले व्यक्ति के प्रति कोई ऐसी क्रिया की जाय जिससे जान पड़े कि उसका वह हाल क्रिया करने वाले का ज्ञान हो गया, वहाँ यह अलंकार होता है जैसे सतीजी ने सीता का रूप धरकर रामजी का धोखा देना चाहा वहाँ तुलसीदासजी कहते हैं:—

१—चौपाई—सती कपट जाना सुरस्वामी ।

जोरि पानि^१ प्रभु कीन्ह प्रनाम् ।

पिता समेत लीन्ह निज नाम ।

२—दो०—गैरमिसिल^२ ठाढ़ो सिवा अन्तरायामी नाम ।

प्रगट करी रिस^३ साह^४ सों, सरजा^५ करि न सलाम ॥

३—दा०—‘आनि मिलो अरि’ यों गह्यो, चखन^६ चकत्ता भाव ।

साहि-तनय सरजा सिवा, दियो मुच्छ पर ताव ॥

४—सवैया

जल को गये लखन हैं लरिका परिखौ पिय छान्द घरीक ह्वै ठाढ़ो ।

पोछि पसउ^७ बयारि^८ करौं अरु पाँय पखारिहीं भूभुरि-डाढ़े ।

‘तुलसी’ रघुबीर प्रिया स्म जानिकै बैठि बिलंब लौं कटक काढ़े ।

जानकी नाह^९ का नेह लखा पुलको तनु बारि बिलाचन बाढ़े ।

वनगमन समय राह में चलने से थक कर सीताजी ने लक्ष्मणजी को पानी लेने भेजा है । तदनंतर अपनी थकावट

१ हाथ । २ अयोग्य स्थान में । ३ क्रोध । ४ बादगाह । ५ सरजाह शिवाजी । ६ नेत्रों में । ७ पसीना । ८ हवा । ९ तपी भूमि से झूलसे हुए । १० पति ।

छिपाते हुए लक्ष्मण के आने तक मन्दागज से परखने का अनु-
रोध करती हैं। रामजी ने उनका तात्पर्य समझ लिया और वे
एक वृक्ष के नीचे बैठकर बड़ा देर तक अपने पैरों से काँटे
निकालते रहे। (चौथा चरण छंद पूर्ति के लिए लिख दिया
है, यहाँ पिहित अलंकार की पूर्ति केवल तीन ही चरणों में
हो गई है) ।

(६३) व्याजोक्ति

व्याज = बहाना, उक्ति = कथन = बहाने की बात ।

दो०—कछु मिस करि कछु और बिधि, कहै दुरैं कै रूप ।

सबै सुकबि व्याजोक्ति तेहि, भूषन कहैं अनूप ॥

विवरण—किसी खुशता हुई बात वा वृत्तान्त का छिपाने
की इच्छा से कोई बहाने की बात कहना । छेकापन्हुति में
निर्देशपूर्वक छिपाना हाता है, इसमें 'वचन' से काम लिया
जाता है ।

तुलसी कृत रामायण में राजा मानुप्रताप और कपट मुनि
के प्रसंग में राजा अपने को छिपाने के लिए कहता है—

१—चौपाई

भूप्रताप भानु अवनिसा^१ । तासु सचिव^२ मैं सुनहु मुनीसा ॥

पुष्पवाटिका में जब सीताजी रामछवि देखकर माहित
हुई और आँख मूंदकर रामजी के ध्यान में मग्न हुई तब एक
चतुर सर्वा ने अन्य सखियों से सीताजी का माहावस्था
छिपाने के लिए यह कहा है—

२—चौपाई

बहुरि गौरि^३ कर ध्यान करेहु । भूप-किसोरि देखि किन लेहु ॥

१ राजा । २ मंत्री । ३ पार्वती ।

३—दो०—सिवा-बैर औरंग-बदन, लगी रहै नित आहि^१ ॥
कवि 'भूषन' बूझे सदा कहै, देत दुख साहि ॥

साहि = (शाही) राज्य ।

४—दो०—कारे बरन^२ डरावने, कत आवत यहि गेह ।
कइ बा^३ लख्यां सखी लखे, लगै थरहरी^४ देह ॥

५—सवैया

साहिन के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटि लये हैं ।
'भूषन' ते बिन दौलाति ह्वे कै फकीर ह्वे^५ देस-विदेस गये हैं ॥
लोग कहैं इमि 'दक्षिण-जेय' सिसौदिया रावरे हाल ठये^६ हैं ।
देत रिसाय कै उत्तर यों—'हमहीं दुनिया ते उदास भये हैं' ॥

(६४) गूढ़ोक्ति

दो०—औरै प्रति उद्देश्य करि, कहै और त्यों बैन ।

ताहि कहत गूढ़ोक्ति कवि, जिनकी मति अति पैन ॥

विवरण—किसी दूसरे को कोई विशेष सूचना देने के अर्थ किसी अन्य-प्रति कोई बात कहना जिससे वह सुन ले और समझ ले । जैसे—

१—चौ०—पुनि आउव यहि बेरियाँ^७ काली^८—(रामायण)

२—कवित्त—सुनिये बिटप ! हम पुहुप^९ तिहारें अहैं,
राखिहां हमें तो सांभा रावरी बढ़ावेंगे ।
तजिहौ हरपि कै तो बिलग न मानें कछु,
जहां जहां जहें तहां दूनो जस पावेंगे ॥
सुरन चढ़ेंगे नर-सिरन चढ़ेंगे पर सुकवि,
'अनीस' हाथ हाथन बिकावेंगे ।

१ आहि । २ रंग । ३ बार । ४ कंपन । ५ ऐसी हालत कर दी है ।

६ इमी समय । ७ कल । ८ पुन ।

देस में रहेंगे, परदेस में रहेंगे.

काह भेस में रहेंगे तऊ राखरे कहावेंगे ॥

३—दो०—वृष^१ छाँड़ो पर-खेत^२ को, आवत यदि रखवार ।

४—दो०—साँझ सखी में जाइहीं, पूजन देव महेस ।

५—दो०—रे हरिना^३ अब भागु द्रुत^४, बारी^५ कर न बिहार ।

या बारी को देखियत, आवत राखनहार ॥

सूचना प्रस्तुतां कु और दूनमें यह भेद है कि हममें कहनेवाले का मुख्य तात्पर्य सुननेवाले से होता है. जिससे बात कही जाती है उससे नहीं। प्रस्तुतां कु में कहनेवाले का मुख्य तात्पर्य उससे होता है जिसके प्रति बात कही जाय, सुननेवाला भी उससे लाभ उठावे तो अच्छा ही है नहीं तो कोई आग्रह नहीं। प्रस्तुतां कु मुख्यतः उद्देश्य वर्णन के लिए है, और यह अलंकार सूचनार्थ है।

(६५) विवृतोक्ति

दो०—छिप्यो अर्थ जो स्लेष में प्रगट करै कवि ताइ ।

विवृतोक्ति तासों कहैं, सकल सुमति कबिराइ ॥

विवरण—श्लेष शब्दों द्वारा कहे हुए गुप्त अर्थ को कवि स्वयं खोल दे उस कथन को विवृतोक्ति कहते हैं—(विवृत शब्द का अर्थ खोला हुआ वा उद्घाटित है) ।

१—दो०—तजौ निकुजहि इत कहत, जब तब स्याम भुजंग^१ ।

यों कहि सखि सिख दै सबानि, रखी चतुर तिय सग ॥

२—दो०—जो गोरस^२ चाहत लियो, तो आवहु सम धाम ।

यों कहि याचक सोहरिहि, किय सूचित निज काम ॥

३—दो०—वृष^३ भागो पर-खेत तें, कहत जताये सैन ।

१ बैल, नायक । २ दूधरे का खेन, नायिका । ३ हरिण, आरुण्य । ४ शीघ्र । ५ बाटेका, नायिका । ६ साँ, उरति । ७ दूध, इन्द्रिय का आनंद । ८ बैल, नायक ।

सूचना—किसी किसी का मत है कि विवृतोक्ति गूढोक्ति में और गूढोक्ति सूक्ष्म में अन्तर्भूत है।

(१६) युक्ति

दो०—ठगै किया करि आन को, मरम छिपावन हेत ।

युक्ति बतावत ताहि को, सिगरे सुमति निकेत ॥

विवरण—पूर्व के तीन अलंकारों में “वचन चातुरी से” कुछ छिपाने की बात कही गई है। इस अलंकार में कोई मर्म की बात वा घटना किसी “किया द्वारा” छिपाने की मुख्यता है इसलिये यह अलंकार उससे भिन्न है।

१—दो०—लिखत रही पिय-चित्र तहँ, आवत लिखि सखि आन^१ ।

चतुर तिया तेहि कर^२ लिखे, फूलन के धनु-बान ॥

सूचना—न कहने योग्य बात को किसी चेष्टा द्वारा कर देने में भी यही अलंकार मानना पड़ता है। जैसे एक सज्जन के पास एक गूँगा नौकर था। उस सज्जन ने उससे कहा कि एक पैसा का भुरदासख (मुदासख) ला दे। वह नौकर पैसा लेकर पँसारी के पास गया और पँसारी के सामने पहले मुर्दा सा होकर लेट रहा, फिर उठकर शख बजाने की सी मुद्रा दिखलाकर पैसा उसके सामने रख दिया। पँसारी था चतुर, उसने उसकी चेष्टा से बात समझ ली और एक पैसे का मुदासख देकर उसे विदा किया।

२—दो०—परो मृतक के रूप पुनि, संखाकृति किय सोर ।

दियां सु मुरदासख तेहि, बनिया बुद्धि अथोर ॥

तुलसीकृत रामायण में वन में जब ग्राम-स्त्रियों ने सीताजी से उनके साथ राम-लक्ष्मण का संबंध पूछा है तब लक्ष्मणजी के लिए सीता ने कह दिया कि—

चौपाई

सहज सुभाव सुभग^१ तन गोरे । नाम लखन लघु देवर मोरे ॥
बहुरिबदन-बिधु^२ अचलढाँकी । पिय तन चितै मोंह करि याँकी ॥
पर रामजी का सब बतलाने हुए सीताजी ने कुछ चेष्टाओं
से ही काम लिया है जिसे गोस्वामीजी ने यों कहा है—

३—चौपाई

खजनमंजु तिरीछे नैननि । निज पति कहेउ तिनहि सिय सैननि ॥
यहाँ भी युक्ति अलंकार माना जायगा । इसलिए ऊपर
लिखी हुई परिभाषा (यद्यपि प्राचीन है पर) हमारी सम्मति में
ठीक नहीं जँचती । हमारे सम्मत्यनुसार यह परिभाषा यों
होनी चाहिए—

दो०—मर्म छिपावन हेतु वा, मर्म जनावन हेत ।
करै किया कछु 'युक्ति' तेहि, भाषत सुकबि सचेत ॥

'सूक्ष्म' और 'पिहित' अलंकारों से इसमें प्रत्यक्ष विभिन्नता
है, जो परिभाषा पढ़ने मात्र से प्रगट हो जाती है ।

गोस्वामी तुलसीदास ने 'बरवा रामायण' में इस युक्ति
अलंकार का एक और भी बहुत अच्छा उदाहरण लिखा है ।

४—बरवै—वेद नाम कहि अंगुनि खंडि अकास ।

पठयो सुपनखाहि लखन के पास ॥

वेद = श्रुति = काम । आकास = नाक, नासा ।

तात्पर्य यह कि रामजी ने युक्ति से लक्ष्मणजी पर अपना
मर्म प्रगट कर दिया कि इसके कान और नाक काट लो ।

यदि कोई कहे कि इसमें 'सूक्ष्म' अलंकार है तो ठीक
नहीं क्योंकि सूक्ष्म में दोनों ओर से केवल इशारे से ही बात
होनी चाहिए । इसमें इशारे से रामजी को आज्ञा है, जिसका

पालन लक्ष्मणजी ने कृत्य द्वारा किया है। इस हेतु यहाँ युक्ति अलंकार ही मानना चाहिए।

'युक्ति' का अर्थ है 'हिकमत', 'चतुराई'। इसलिए हिकमत से अपना कर्म छिपाना वा अपना तात्पर्य प्रगट करना दोनों दशाओं में यह अलंकार हो सकता है। यह ज़रूरी नहीं है कि मर्म छिपाने ही में हिकमत से काम लिया जाय, अन्यथा नहीं। हाँ हम यह बात मानने के लिए तैयार हैं कि मर्म छिपाने में अधिक बारीक हिकमत की ज़रूरत होती है।

(१७) लोकोक्ति

दो०—लोकोक्ति जहँ लोक की, कहनावत ठहराउ ।

१—दा०—राजां करै सां न्याउ है, पासा परै सा दाउ ।

२—सवैया

फिरि रहै न रहै यहौ समयौ^१ बहती नदी पायँ पखार^२ लै री ।

३—सवैया

भो बिधना^३ प्रतिकूल जवै तब ऊँट चढ़े पर कूकर काटत ।

४—चौपाई

वृथा मरहु जनि गाल बजाई^४ । मनमोदकनि^५ कि भूख बुझाई ॥

५—चौपाई

देव कहा हम तुमहि गोसाईं^६ । ईधन-पात किरात-मिताई^७ ॥

६—चौपाई

कर्म-प्रधान बिस्व करि राखा । जो जस करै सो तस फल चाखा^८ ॥

सूचना—अंगरेजी में इसे ईडियम (Idiom) कह सकते हैं। फारसी और उर्दू में इस अलंकार को "इरमालुल मसल" कहते हैं। स्मरण रखना

१ अवसर । २ धो ले । ३ ब्रह्मा । ४ डोंग हाँककर । ५ लड्डू । ६ मित्रता । ७ खाया, पाया ।

चाहिए कि केवल लोकोक्ति मात्र के कथन में अलंकार न होगा । प्रसंग बनाकर अंत में लोकोक्ति पर घटित करने से अलंकारता आवेगी ।

हिंदी-साहित्य में 'ठाकुर' (बुंदेलखंडी) कवि की कविता में लोकोक्तियों की योजना सराहनीय मानी जाती है ।

(१८) छेकोक्ति

दो०—जहँ परार्थ को कल्पना, लोकउक्ति में होय ।

छेकोक्ति तासों कहैं, कबि कोबिद सबकोय ॥

विवरण—जहाँ लोकोक्ति का प्रयोग सामिप्राय हो अर्थात् पहले कोई बात कह के उपमान-वाक्य की भाँति लोकोक्ति कही जाय, वहाँ छेकोक्ति होगी ।

१—दो०—जे सोहात सिवराज को, ते कबित रसमूल ।

जे परमेस्वर पै सहेँ, तेई आछे फूल ॥

२—सवैया

दुरावत हो सहवासिन^१ सों 'रघुनाथ' वृथा बतियान के जोर ।

सुनौ जग में उपखान^२ प्रसिद्ध है चोरन की गति जानत चोर ॥

३—सवैया

औरँग जो चढ़ि दक्खिन आवै तो ह्यां ते सिधायै सोऊ बिन कप्पर^३

दोनां मुझे^४ को भार बहादुर छागो^५ सहै क्यों गयंद को भप्पर^६

सासताखाँ संग वे हठि हारे जे साहेब सातएँ ठाँ के भुवप्पर^७ ।

ये अब सबहु आवैं सिवा पर कालिह के जांगो कलीदे^८ को खप्पर

४—सवैया

झिति^९ नीर कृसानु^{१०} समीर अकास ससी रबिहू तन रूप धरै ।

अरु जागत सावतहू 'मतिराम' सो आपनी जोति प्रकास करै ।

१ साथी । २ कथा । ३ कपड़ा । ४ चढ़ाई । ५ बकरा । ६ भापड़, चोट । ७ स्थान पर, सातवें असमान पर । ८ तरबूज । ९ पृथ्वी । १० अग्नि ।

जग ईस अनादि अनंत अपार वही सब ठौरन में बिहरै ।
सिगरे तन मोहन मोय रहे, तिन ओट पहार न देखि परै ।

५—चौपाई

सत्य सराहि कह्यो बर देना । जानेहु लेइहि मांगि चयेना ॥

(६६) वक्रोक्ति

दो०—जहाँ श्लेष सों चतुर नर, अर्थ लगावै और ।

ताहि कहत वक्रोक्ति हैं, सिगरे कबि सिरमौर ॥

विवरण—वक्रोक्ति दो प्रकार की होती है—(१) शब्द मूला,
(२) अर्थमूला । शब्दमूला वक्रोक्ति की व्याख्या शब्दालंकार
में देखो । यहाँ केवल अर्थमूला वक्रोक्ति का वर्णन है ।

जहाँ श्लेष से अर्थ का उलट फेर हो जाय, वहाँ वक्रोक्ति
अलंकार होगा । जैसे—

१—सवैया

भिक्षुक गोकितको गिरिजे ? सुता माँगन को बलि द्वार गयो री ।
नाच नच्यो कित हां भवभाम^१, कलिंदसुता-तट नीके ठयो री ॥
भाजि गयो वृषपाल^२ सु जानत ? गोधन संग सदा सुझयो री ।
सागर-सैल-सुतान के आज परस्पर यों परिहास भयो री ।

यहाँ भिक्षुक, नाच नच्यो और वृषपाल शब्द श्लिष्ट हैं ।
लक्ष्मीजी इन्हीं शब्दों से शिव का इंगित करती हैं और पार्वती
जी इन्हीं शब्दों का अर्थ फेरकर विष्णु पर आरोपित कर देती
हैं । इससे वक्रोक्ति है । और यह अर्थ-वक्रोक्ति इसलिए है कि
यदि हम 'भिक्षुक' के स्थान पर 'मंगन' 'नाच नच्यो' के स्थान
पर 'नृत्य कियो' और 'वृषपाल' के स्थान पर 'गोपाल वा पशु-

‘गाल’ शब्द रख दें तो भी अर्थ और युक्ति उर्यों की र्यों रहेगी । शब्दालंकारवाली उक्तियों के श्लिष्ट शब्दों का इस प्रकार नहीं बदल सकते । इसीसे वे शब्दालंकार के उदाहरण हैं, और यह अर्थालंकार का उदाहरण है ।

काकु से जो वक्रांक्ति होती है वह शुद्ध शब्दालंकार है, क्योंकि वहाँ विलक्षण प्रकार की कंठध्वनि के कारण अर्थ में हेर-फेर होता है, और कंठध्वनि कान से सुनने का विषय है । कान का विषय होने के कारण वह शब्दालंकार ही है ।

(१००) स्वभावोक्ति

दो०—जाको जसो रूप गुन, बर्नत ताही साज ।

सुभावोक्ति भूषन तहाँ, कहैं सबै कबिराज ॥

विवरण—जाति वा अवस्था के अनुसार जिसका जिस समय जैसा प्राकृतिक कृत्य हो वैसा ही कहना ‘स्वभावोक्ति’ अलंकार है इसके दो प्रकार हैं; (१) सहज, (२) प्रतिज्ञावद्ध ।

(१) सहज

१—दो०—धूरि-धुरेटे^१ धरनि में, धरत लटपटे पाय ।

लाल अटपटे आखरन, भाषत साखि हरषाय ॥

२—चौपाई

धूसर धूरि भरे तनु आये । भूपति बिहँसि गोद बैठाये ॥

३—दो०—भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाय ।

भागि चलत किलकात मुख, दधि ओदन^३ लपटाय ॥

(कृष्णबानिक)—

४—दो०—सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल ।

यहि बानिक^४ मो उर बसौ, सदा बिहारीलाल ॥

१ धूल लपेटे । २ मटमैला । ३ भात । ४ वेश ।

(तुरंग-स्वभाव)—

५—सार

जित रह्य^१ गावै तित पहुँचावै छन आवै छन जावै ।
जमिजमि थमिथमि थिरकि भूमि पर गति नहिं लेहि दरसावै ।
फांदत चंचल आरु चौकड़ी चपलहु के चख भाँपै ।
भरमत-कुँवर को तुरंग रंगीलो बरनि जाय कहु का पै ।

(कुल-स्वभाव)

६—चौपाई

कहाँ सुभाव न कुलहिं प्रसंसी । कालहु उरहिं न रन रघुवंसी ।

७—चौपाई

रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाइ बरु बचन न जाई ।

तात्पर्य यह कि जिस समय जिसका जैसा रूप गुण हो
उस समय वैसा ही कहना ।

सूचना—किसी का कोई स्वाभाविक गुण साधारणतः प्रगट नहीं
होता वैन ही किसी मनोबिकार वा उत्तेजना के समय प्रतिज्ञा रूप से
प्रगट होता है । उसे प्रतिज्ञाबद्ध स्वभाव कहने हैं । ऐसे स्वभाव का वर्णन
भी स्वभावोक्ति ही कहा जाता है । जैसे—

(२) प्रतिज्ञाबद्ध स्वभावोक्ति

१—चौपाई

सिव संकल्प कोन्ह मन माहीं । यहि तन सतिहिं भेंट अब नाहीं ॥

२—दा०—तोरों छत्रकदंड^२ जिमि, तुष प्रताप बल नाथ ।

जौ न करों प्रभु-पद-सपथ, पुनि न धरों धनु हाथ ॥

३—चौपाई

जो सत संकर करें सहाई । तदपि हतौ रन राम-दोहाई ॥

सूचना—ऐसी स्वभावोक्ति सशपथ वा असम्भव कथन द्वारा भी प्रगट की जाती है। यथा—

४—कवित्त—बारि डारि डारौं कुम्भकर्नहि बिदारि डारौं,
मारौं मेघनादै आजु यौ बल अनंत हौं ।
कहै 'पदमाकर' त्रिकूट^१ हू को ढाहि डारौं,
डारत करेई जातुधानन^२ को अंत हौं ॥
अच्छहि निरच्छ^३ कपि रुच्छ ह्वै उचारौं इमि,
तो से तिच्छ तुच्छन^४ कां कछुवै न गंत हौं ।
जारि डारौं लंकहि उजारि डारौं उपवन,
फारि डारौं रावन को तौ मैं हनुमंत हौं ॥

५—कवित्त—लोक तिहुं जारौं साता सागर सुखाय डारौं,
गिरिन ढहाय डारौं भूमि उलटाऊं मैं ।
रच मैं बिदारि डारौं दसो दिगपालन को,
खगन^५ समेत ससि सूरहि गिराऊं मैं ॥
नभ ते पताल लैके कितहुं कहूँ जा नेक,
'रसिक बिहारो' प्रानधारी सुधिपाऊं मैं ।
जानकी न लाऊं तौ पै छत्रो न कहाऊं,
राम नाम पलटाऊं धनु-बान न उठाऊं मैं ॥

६—चौपाई

कह हनुमंत जोरि जुग हाथा । लखन साच जनि कीजै नाथा ॥
कहौ चद्रमहि पट-इव गारी^६ । अबही देहुं अमी मुख डारौ ॥
कहौ विद्यु-वैदाह^७ गहि आनी । मोघु^८ जागि सब के दुखभानी^९ ।
कहौ फारि नगर बिहि निकारीं । रिपु तेहि द्वार हाहु बैठारौं ।

१ लंका के तीन शिखर (लंका, सुबेला, त्रिकुम्भिला) । २ राक्षस ।
३ रक्षाहीन । ४ अत्यंत साधारण । ५ पक्षी । ६ निचोड़कर । ७ अश्विनी-
कुमार । ८ मृत्यु । ९ नष्ट करूँ ।

कहौ ब्रह्म हरि हर कहै आनी । अमर अमर बुलवाऊँ बानी ॥
 कहौ पताल जाय हति नागा । आनों अमी-कुंड यहि जागा ॥
 कहौ देहुँ निज देहै त्यागी । अबही उठौ लखन घट^२ जागी ॥
 दो०—जो कछु तुव मन में रुचै, सो मोहि आयसु होय ।
 नाथ-सपथ छिन में करौ, प्रभु प्रताप बल साय ॥

—(विश्राम-सागर)

(१०१) भाविक

दो०—जहाँ भूत भावी अरथ, बरनत कबि परतच्छ ।
 अलंकार भाविक कहत, ताको सब मति स्वच्छ ॥

(१) भूतार्थ प्रत्यक्ष वर्णन

१—दो०—जाकी छवि का देखि कै, होत मनहि बिसराम ।

चित्रकूट में जानिये, अबहुँ राजत राम ॥

२—कवित्त—अजौ भूतनाथ^१ मुंडमाल लेत हरपत,

भूतन अहार लेत अजहुँ उछाह है ।

‘भूषन’ भनत अजौ काटे करवालन के,

कारे कुजरन^२ परी कठिन कराह^३ है ॥

सिंह सिवराज सलहेरि के समीप पेसा,

कीन्हों कतलाम^४ दिल्ली-दल को सिपाह^५ है ।

नदी रनमंडल रुहेलन रुधिर अजौ,

अजौ रबिमंडल रुहेलन की राह है ॥

३—सवैया

आवत हौं जमुना तट को नहि जानि परै बिल्लुरे गिरधारी ।

जानति हौं सखि आवन चाहत कुंजन तें कढ़ि कुंजबिहारी ।

१ जगह । २ शरीर में । ३ महादेव । ४ हाथी । ५ पीड़ा की आह ।

६ संहार । ७ सेना ।

४—दो०—जहाँ जहाँ ठाढ़ो लखो, स्याम सुभग सिरमौर ।

उनहूँ बिन छिन गहि रहत, दूगन अजौँ वह ठौर ॥

५—दो०—दलन^१ दबाई ही जु तुम, हनत दसानन-गोत ।

लखहु राम वह आज लौं, धक धक धरती होत ॥

सूचना—इसे अँगरेजी में ऐतिहासिक वर्तमान (Historic present) कहते हैं । अजौँ, अजहुँ, अब भी इसके वाचक जान पड़ते हैं ।

(२) भावी अर्थ प्रत्यक्ष वर्णन

१—दो०—जनि चलाईये चलन की, चरचा स्याम सुजान ।

मैं देखति हों वाहि यह, बात सुनत बिन प्रान ॥

२—दो०—गहन बिपिन गिरि गैल के, जे गढ़ दृढ़ भरपूर ।

राम रावरा दल चलत, देखत हों चकचूर ॥

३—दो०—कही जाय क्यों अलि भली, छवि प्रति-अंग अनूप ।

भावी भूषन भारद्वाज, लसत अबहि तव रूप ॥

(१०२) उदात्त

दो०—संपत्तिकी अत्युक्ति को, कोविद कहत 'उदात्त' ।

जहँ उपलक्षण बड़न को, ताहू की यह बात ॥

(१) संपत्ति की अत्युक्ति

१—चौपाई

जेहि तिरहुति^२ तेहि समै निहारी । तेहि लघु लगे भुवन-दस-चारी ॥

जो संपदा नीच गृह सोहा । सो बिलोकि सुरनायक मोहा ॥

२—दो०—जगत-जनक^३ बरनै कहा, जनक-नगर को ठाट ।

सहल^४ महल हीरन बने, हाट बाट करहाट^५ ॥

१ सेना । २ जनक का राज्य । ३ संसार का पिता, ब्रह्मा । ४ साधारण
५ कमलदंड ।

३—दो०—सुवरनपुर^१ मनिमय महल, रही महा छबि फैलि ।
चौकी चिंतामनिन की, बैठी कंचन-बेलि ॥

४—चोपाई

नंद द्वार जे मांगन आये । बहुरा फिर याचक न कहाये ॥
लक्ष्मी सी जहँ मालिन बालै । बंदनमाला बाँधत डालै ॥
द्वारबुडारन फिरत अप्रतिवि । कौगन^२ मथिया^३ नोतन^४ नवनिधि ॥

(२) महाजनों की उपलक्षणता

संसर्ग जन्य बड़ाई अर्थात् बड़ा क संबंध सं बड़ाई की प्राप्ति ।
१—दो०—भूषित संभु स्वयंभु^१-सिर, जिनके पद की धूर ।
हठ करि पाँव भँवावती^२, तिन सों तिय मगरूर^३ ॥
२—दो०—यह अरण्य^४ वह है, जहाँ मानि पिता के बैन ।
वसन राम एकहि कियो, हनन^५ निसाचर सैन ॥
३—दो०—खरदूषन त्रिसिरा-सिरन, तजि दूषन जेहि ठौर ।
रघुकुल-भूषन जे करघा, हर-भूषन^६ निज जोर ॥
४—दो०—या पूता में मति टिको, दीन्ही सिवा सजाय ।

(१०३) अत्युक्ति

दो०—योग्य व्यक्ति की योग्यता, अति करि बरनी जाय ।
भूषन सो अत्युक्ति है, समुझै जे मतिराय ॥
सुंदरता अरु सूरता, अरु उदारता भाव ।
या भूषन में कहत ही, उर उपजै अति चाव ॥

१ सोने का नगर । २ फाटक के दाहिने-बाएँ का स्थान । ३ स्वस्तिक ।
४ चित्रित करती हैं । ५ ब्रह्मा । ६ पैर को भाँवा (एक प्रकार की ईंट से)
रगड़वाना । ७ मानिनी । ८ वन । ९ मारना । १० महादेव का गहना
(सुंदराल) ।

१—(सुदृग्ता)

- १—दो०—भूयन-सार सँभारिहै क्यों, वह तन सुकुमार ।
सूधे पाँयन धर^१ परत, सोभा-ही के भार ॥
- २—दो०—सुमनमयी^२ महि में करै, जब राधिका विहार ।
तब सग्वियाँ संग ही फिरँ, हाथ लिये कचभार^३ ॥

२—(शूरता)

- १—चौ०—जासु त्रास^४ डर कहँ डर होई ।
- २—कवित्त—जा दिन चढ़त दल साजि श्रवधूनसिंह,
ता दिन दिगंत लौं दुवन^५ दाटियतु है ।
प्रलैं कैसैं धाराधर^६ धमकैं नगारा धूरि-
धारा ते समुद्रन की धारा पाटियतु है ॥
'भूपन' भनन भुवगाल काल^७ हहरत,
कहरत^८ दिग्गज मगज^९ फाटियतु है ।
कीच^{१०} सँ कचरि जात सेव के अशेष फन,
कमठ की पीठि पै पिठी सी बाँटियतु है ॥

३—हरिगीतिका

- कह 'दाम तुलसी' जवहि प्रभु सर-चाप कर फेरन लगे ।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ^{११} अहि महि सिंधु भूधर^{१२} डगमगे ॥
- दो०—इने उच्च सैलन^{१३} चढ़े, तुव डर अरि सकलत्र^{१४} ॥
तोरत कंपित करन सौं, मुकता समुभि नछत्र ॥

३—(उदात्ता)

- १—दो०—वारिद लौं बसु^{१५} बरास कं, कबिकुल किये कुबेर ।
निकट जो होता मेरु ती, देत न होतो देर ॥

१ पृथ्वी । २ पुण्ययुक्त । ३ बालों का बोझ । ४ आतंक, भय । ५ शत्रु ।
६ बादल । ७ शूरे । ८ कराड़ते हैं । ९ मस्तक । १० कीचड़ । ११ कच्छ ।
१२ पर्वत । १३ पर्वत । १४ डग-डुग मारित । १५ धन ।

३—दो०—जाचक तेरे दान ते, भये कल्पतरु भूप ।

३—सवैया

मैं हौं अनाथ अनाथन मैं नजि नेरोइ नाम न दूजो सहायक ।
मंगन तेरे के मंगन ते कल्पद्रुम आजु है माँगिव लायक ॥

४—कवित्त—संपति सुमेर की कुबेर की जो पावै,

ताहि तुरत लुटावत विलंब उर धारै ना ।

'कहै पदमाकर' सुहेम^१ हय^२ हाथिन के,

हलके^३ हजारन के बितर^४ बिचारै ना ॥

गजगंजबकस^५ महीप रघुनाथराव,

याहि गज धांखे कहूँ काहू देइ डारै ना ।

याही डर गिरिजा गजानन^६ कौ गाइ रही,

गिरि तें गरे तें निज गोद नें उतारै ना ॥

५—दो०—गनत न कछु पारस पदुम^७, चिंतामनि का ताहि ।

निदरत मेरु कुबेर का, तुव जाचक जग माहि ॥

सूचना—केवल सुंदरता, शूरा और उदारता ही नहीं वरन् और वस्तुओं में भी अत्युक्ति हो सकता है। यथा—

३—(प्रेमात्युक्ति)

१—दो०—कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेस लजात ।

कहिहै सब तेरा हियो, मेरे द्विय की बात ॥

५—(विरहात्युक्ति)

२—दो०—गोपिन के अंसुवन भरी सदा असोस^८ अपार ।

डगर डगर नै^९ हो रही, बगर-बगर^{१०} के बार^{११} ॥

इसी प्रकार और भी समझ ला । अत्युक्ति सब वस्तुओं की हो सकती है, परंतु सुंदरता, शूरा और उदारता की

१ सोना । २ घोड़ा । ३ समूह । ४ खडित करना । ५ हाथया के कुंड का दानी । ६ गणेश । ७ देखभाल कर रही है । ८ पदम (एक निधि) । ९ अशोष्य । १० नदी । ११ घर-घर । १२ दरवाजा ।

अत्युक्ति अत्यंत आनंददायक होना है, इसीसे परिभाषा में केवल इन्हीं के नाम गिनाये गये हैं ।

सूचना—इस अलंकार को अंगरेजी में 'एग्जैजरेशन' (Exaggeration) और फारसी तथा उर्दू में 'मुबालिगा' कहते हैं ।

(१०४) निरुक्ति

दो०—नामन को निज बुद्धिबल कहिये अर्थ बनाय ।

ताको कहत निरुक्ति हैं भूषन जे कबिराय ॥

विवरण—जहाँ किसी नाम का कोई कल्पित अर्थ किया जाता है उस निरुक्ति कहते हैं । जैसे:—

१—दो०—कविगन को दारिद्र-द्विरद^१, याही दल्यो अमान^२ ।

याते श्रीसिवराज को, सरजा कहत जहान ।

२—दो०—हरया रूप इन मदन को, यातें भो सिव^३ नाम ।

लिया बिरद सरजा^४ सबल, अरि-गज दलि संग्राम ॥

३—दो०—छांनी छवि मृग मीन की, कहों कहाँ की रीति ।

नामहि में नहि नीति, का करै नयन^५ ये नीति ॥

४—दो०—बिरही नर-नारीन को यह रितु चाय चबाय ।

दास^६ कहै याको सरद^६ याही अर्थ सुभाय ।

५—दो०—रगत न हित कहूँ काहु सों, वन-वन करत विहार ।

यह समुझि बिधि ने कथा, माहन नाम तुम्हार ।

६—दो०—तनु बिचित्र कायर बचन, अहि-अहार मन घोर ।

'तुभसी' हरि भये पछुवर^७, ताते कह सब मोर^८ ॥

१ दारिद्र्य रूपी हाथी । २ अपरिमाण । ३ शिवाजी की उपाधि सरजाह, सिंह (१० शरजः) । ४ शिवाजी, महादेव । ५ नेत्र, जिनमें नीति नहीं (य + न) । ६ कष्टदायक, (सर = बाण + द) । ७ दीनतायुक्त । ८ पक्ष धारण करनेवाले, पक्ष लेनेवाले । ९ मयूर, मोरा ।

(१०५) प्रतिषेध

दो०—जहाँ जु वस्तु प्रसिद्ध को, प्रगटहिं करै निषेध ।

कबि कोबिद तासों कहत, अलंकार प्रतिषेध ॥

१—दो०—जोत्या जाहि विरोध करि, सो विराध में नाहि ।

मैं हौं रावन राम तुम, का समुभयौ मन माहि ॥

२—सवैया

बेगि चलो 'रसखान' बलाय लयों क्यों अभिमान तें भौंह नरोरत ।

प्यारे पुरंदर^१ हाय न प्यारी अवै पल आधिक में ब्रज बोरत ॥

३—दो०—छुटी न गाँठि जु राम सों, तियन बह्या तेहि ठाहि ।

सिय-कंकन को छारिवो, धनुष तोरिवो नाहि ॥

४—चौपाई

निपटहि^२ द्विज करि जानेसि मोहीं । मैं जस बिप्रसुनावहुँ तोहीं ॥

५—चौपाई

जीतेहु जे भट संगर^३ माहीं । सुनु तापस मैं तिन सम नाहीं ॥

६—दो०—अंगद कह दसवदन सों, यह न चारिवो नारि ।

नर बानर सों राम सँग, प्रान हरन है रारि^४ ॥

सूचना—शुद्धापन्हुति, पर्यस्तापन्हुति और प्रतिषेध में भेद यह है कि

(१) शुद्धापन्हुति में सत्य वस्तु को छिपाकर उसके स्थान में उसी के समान किसी दूसरी वस्तु की कल्पना की जाती है । (२) पर्यस्तापन्हुति में एक वस्तु का गुण किसी दूसरी वस्तु में आरोपित किया जाता है । (३) प्रतिषेध में प्रसिद्ध वस्तु का निषेध होकर मनमानी कल्पना की जाती है ।

(१०६) विधि

दो०—जहाँ सिद्ध ऊ अर्थ को, करिये बहुरि विधान ।

अलंकार विधि ताहि सों, कहत सबै मतिमान ॥

१—चौपाई

बिस्वभरन पोषन करु जोई । ताकर नाम भरत अस होई ।

२—चौपाई

जाके सुमिरन ते रिपु-नासा । नाम सत्रुहन वेद प्रकासा ॥

३—चौ०—संवक सो जो करै संवकाई ।

४—सवैया

दीनदयाल हरो हमरो दुख तो ताहि दीनदयाल सराहौं ।

५—दा०—काकिल है काकिल तवै, रिनु में करिहै डेर ।

६—दा०—मुरली मुरली हाति है, मोहन के मुख लागि ।

इन उदाहरणों में प्रत्येक नाम स्वयं सिद्ध है परंतु कवि ने पुनः उसका विधान किया है ।

सूचना—'निरुक्ति' में मनमाना अर्थ कल्पित किया जाता है। 'विधि' में सिद्धार्थ ही पुनः कहा जाता है ।

(१०७) प्रमाण

प्रज्ञत कहूँ? अनुमान० कहूँ, कहूँ उपमान३दिखाय ।

कहूँ बड़न की बात४ लै, आत्मतुष्टि५ कहूँ पाय ॥

अनुपलब्धि६ संभव७ कहूँ, कहूँ लहि अर्थापत्ति८ ।

कबि प्रमान भूषन कहैं बात जो बरनै सत्ति ॥

विवरण—'सत्य कथन' को 'प्रमाण' कहते हैं । इसका आठ भेद हैं । यथा:—

(१) प्रत्यक्षप्रमाण

दो०—इन्द्रिय अरु मन ये जहाँ बिषय आपनो पाय ।

ज्ञान करै, प्रत्यक्ष तेहि कहैं सकल कविराय ॥

१—छप्पय—सर सर हस न होत बाजि गजराज न थर थर ।

तरु तरु सुफल न होत नारि पतिव्रता न घर घर ॥

तन तन सुमति न होति मलैगिरि^१ होत न बन बन ।
 फन फन मनि नहि होत मुक्तजल^२ होत न घन घन^३ ॥
 रन रन सूर न होत हैं जन जन होत न भक्त हरि ।
 'कवि नरहरि' निरख कवित्त कहि सब नर हांत न एकसरि ॥

—चौपाई

तात जनकतनया यह सोई । धनुषयज्ञ जेहि कारन होई ॥
 पुजन गौरि सखी लै आई । करत प्रकास फिरति फुलवाई^४ ॥
 २—कवित्त—कुल को कुलीन होय उपकार-लीन होय,
 पंडित प्रवीन होय दांप सब खाई है ।
 उदित उदार होय, पूर परिवार होय,
 चाबुक सवार होय वैद बुध जोई है ॥
 बल को निधान हाय बोल को प्रमान होय,
 सब गुन थान होय सील सत सोई है ।
 सूर होय बीर होय सुंदर सरीर होय,
 लाच्छर्मा न होय ताहि पूछत न कोई है ।

सूचना—इन उदाहरणों में कही हुई बातें सब कोई जानता है कि प्रत्यक्ष मत्त मानी जाती हैं ।

(२) अनुमान प्रमाण

दो०—चिन्हहि लगि अनुमान बल वस्तुहिं लीजै जानि ।

तहँ अनुमान प्रमान सब भूषन कहैं बख नि ॥

१—दो०—नाचि अमानक ही उठे, चित पावस^१ घन मार ।
 जाननि हौं नदित करी, यहि दास नदाकिसोर ॥

२—दो०—यह पावस तम साँझ नहि, हौं दुचिती मति भूल ।
 कोक असोक बिलोकिये, रह्यो कोकनद^२ फूलि ॥

१ चंदन । २ मुक्ता उत्पन्न करनेवाला (स्वातिजल) । ३ बादल ।
 ४ एकसे । ५ पुष्प वाटिका । ६ वर्षा । ७ लाल कमल ।

३—दो०—धुवाँ देखि सब कोउ करन, आगी को अनुमान ।

४—दो०—जिन लोखरी^१ मारी नहीं, कहा मारिहैं सर ?

(३) उपमान प्रमाण

दो०—उपमा के सादृश्य ते, बिन देखो उपमेय ।

जानि परै, उपमान सो, अलंकार है जेय ॥

१—दो०—सहस घटन में लखि परै, उयों एकै रजनास^२ ।

त्यौं घट घट में 'दास' हैं, प्रतिबिंबित जगदीस ॥

२—दो०—सो रोहिनि जानहु सखे जां है सकट^३ समान ।

(४) बड़ों की घान वा शब्द प्रमाण

दो०—जहाँ साम्राज्य अरु बड़न को, बचन प्रमाण बखान ।

सोई शब्द प्रमाण है, भाषत सुकवि सुजान ॥

१—कृष्णय—मरै सुम सरदार मरै वह कट्टर टट्ट^४ ।

मरै हठीली नारि मरै वह पुरुष निखट्ट^५ ।

ब्राह्मन सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै ।

पूत वही मरि जाय जो कुल में दाग^६ लगावै ॥

बेनियाउ^७ राजा मरै नौद धडाधड़^८ साइये ।

'बैताल' कहै बिक्रम सुना इनके मरै न रोइये ॥

२—पद

देखु बिचार सार का साँचो कहा निगम निजु^९ गायो ।

भजहि न अजहुँ समुझि 'तुलसी' तेहि जेहि महेस मन लायो ॥

३—सो०—तुम जु हरी पर-बाल^{१०}, ताते हम यहि हाल में ।

नाथ बिदित सब काल, जो ह्यति सा हन्यते ॥

४—चौपाई

बेद पुरान संत अस गावा । जा जस करै सो तस फल पावा ॥

१ छोमड़ो । २ चंद्रमा । ३ गाड़ी । ४ घोड़ा । ५ कलक । ६ अग्यायो ।

७ निश्चित । ८ निश्चय । ९ दूसरे की स्त्री ।

(५) आत्मतुष्टि प्रमाण

दो०—अपने अंग स्वभाव को, दृढ़ विश्वास जहाँहि ।

आत्मतुष्टि प्रमाण कबि, कोषिद कहैं तहाँहि ॥

१—दा०—मोहि भरोसो रीझिऔ, उभकि^१ भाँकि इक बार ।
रूप रिभावनहार वह, ये नैना रिक्खार^२ ॥

२—चौपाई

मोहि अतिसय प्रतीत जिय केगी । जेहि सपनेहु पर नारिन हेरी ॥

(६) अनुपलब्धि प्रमाण

दो०—जानि परै नहिं बस्तु कछु, अनुपलब्धि है सोय ।

विवरण—जहाँ काई कारण नहीं मिलता वहाँ किसी काल्पित कारण को मान लेते हैं, उसे ही अनुपलब्धि प्रमाण कहते हैं ।

सूचना—नीचे कहे हुए छंद की घटनाओं का जब कोई मुख्य कारण समझ में न आया तब कबि ने कह दिया कि "अदृष्ट बली है" ऐसे ही प्रमाण को अनुपलब्धि प्रमाण कहते हैं ।

१—सवैया

बालि बिंध्यो बलिराज बंध्या, कर सूली^१ के सुल कपाल-थली है ।
काम जरया जग, काल^२ परया बैदि संप धरया विष हाल^३ हली^४ है
सिंधु मथ्या कल काली नथ्या कहि 'कैसव' इंद्र कुचाल चली है ।
रामहु की हरी रावन बाम चहुँ जुग एक अदृष्ट बली है ॥

(७) संभव प्रमाण

दो०—जह संभवहै बस्तु को, संभव जानो ताहि ।

विवरण—जहाँ किसी बात का होना सम्वित हो सकता हो, उसे संभव प्रमाण कहते हैं । इसमें यह जरूरी नहीं है कि

१ उचककर । २ मोहनेवाले । ३ महादेव । ४ यम (रावण के कैदखाने में) ।
५ शराब । ६ बलराम ।

वह बात होवे भी अवश्य, केवल उसकी संभावना मात्र से मतलब है। (संभावना अलंकार, देवी पृष्ठ २१२)

१—दो०—सुनी न देवी तुव सरिस, हे वृषभानुकुमारि ।

जानत हौं कहूँ हायगी, बिपुला^१ धरनि बिचारि ॥

२—दो०—उपजैगे हौहैं अजौं, हिंदूपति से दानि ।

कहिय काल निरअवधि^२ लखि, बड़ी बसुमती जानि ॥

३—कवित्त—‘ठाकुर’ कहत कछु काठिन न जाना याहि,

हिम्मत किये ते कहा कहा न सुधरि जाय ॥

चारि जने चारिहू दिसा ते चारों कान गहि,

मेरु को हलाय कै उखारैं ता उखरि जाय ॥

(८) अर्थापत्ति प्रमाण

दो०—जहाँ अर्थ में अर्थ को, और जोग ते थाप ।

अर्थापत्ति प्रमाण तहँ, कहैं सुकवि सह दाप ॥

विवरण—जहाँ किसी अर्थ का किसी और ही योग से स्थापित किया जाय ।

१—दो०—इतो पराक्रम करि गयो, जाको दूत निसक ।

कत कहा दुस्तर^३ कहा, ताहि तारिबो लंक ॥

२—चौपाई

पिय तेहि ते जीतब संप्रामा । जाके दून केर अस कामा ॥

(१०८) हेतु (द्विविध)

सूचना—इस ‘हेतु’ अलंकार में ‘काव्यद्विग’ के विरुद्ध केवल उल्लासक हेतु का ही वर्णन होता है ।

(प्रथम)

दो०—कारज कारन संग ही जहँ बरनौं इक ठौर ।

प्रथम हेतु तासों कहत जिनकी मति सिरमौर ॥

१—सवैया

भाग जगै 'लछिराम' दुहन में छाये तरंग सुप्रीति भली के ।
रामसुरूप निहारत ही उर-मांद बढ़े मिथिलेस-लली^१ के ॥

२—चौपाई

उयो अरुन^२ अवलोकहु ताता । पंकज कोक लोक सुखदाता ॥

३—चौपाई

जासु विलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मन छोभा^३ ॥

४—दो०—अरुनोदय सकुचे कुमुद, उडुगन ज्योति मलीन ।

५—चौपाई

उयो भानु बिन श्रम तम नासा । दुरे नखत जग तेज प्रकासा ॥

६—दो०—आपुहि सुनि खद्यांत सम^४, रामहि भानु-समान ।

पुरुष वचन सुनि काहि आस^५ बोला अति खिसियान ॥

(दूसरा)

दो०—कारन कारज ये जबै लसत एकता पाय ।

हेतु अलंकृत दूसरो ताहि कहैं कविराय ॥

विवरण—जहां कारण ही को कार्यरूप वर्णन करते हैं, वह

दूसरा 'हेतु' है ।

१—दो०—मेरी रिद्धि समृद्धि है, तुव दाया रघुनाथ ।

२—दो०—परम पदारथ चारहु, श्रीराधा-गाविंद ।

३—दो०—कोऊ कोरि क सग्रहों कोऊ लाख हजार ।

मों सपति यदुपति सदा, विपति-बिदारनहार ॥

४—दो०—मोहि परमपद मुकि सब, तो पदरज घनस्याम ।

तीन लोक को जीतिबो, माहि बसिबा ब्रजग्राम ॥

१ जनक की पुत्री, सीता । २ सूर्य । ३ क्षुब्ध हुआ, चंचल हो गया ।

४ जुगल । ५ तकरार ।

तीसरा पटल (उभयालंकार)

दो०—भूषण इक तें अधिक जहँ, सो उभयालंकार ।
संस्पृष्टि रु संकर तहाँ, उभय भेद निरधार ॥
तिल तंदुल के न्याय सों, है संस्पृष्टि बखान ।
नीर-छीर के न्याय सों, संकर कहत सुजान ॥

विवरण—जहाँ एक से अधिक अलंकार आ जाते हैं, ऐसे मिश्रण को उभयालंकार कहते हैं। इस मिश्रण के दो भेद हैं—
(१) संस्पृष्टि, (२) संकर ।

(१) संस्पृष्टि

दो०—जुदे जुदे भामैं सकल, अपने अपने ठाम ।
तिल तंदुल की रीति करि, सो संस्पृष्टि सुनाम ॥

विवरण—जैसे तिल और चावल मिला देने से भी अपने अपने रंग से प्रत्यक्ष ही अलग अलग देख पड़ते हैं, उसी प्रकार मिले हुए अलंकार यदि मिले हुए होने पर भी अपनी सिद्धि के लिये एक दूसरे की अपेक्षा न रखते हों तो वह मिश्रण संस्पृष्टि कहलावेगा। इसके तीन भेद हो सकते हैं:—(१) शब्द + शब्द, (२) शब्द + अर्थ, (३) अर्थ + अर्थ ।

(१) शब्दालंकार + अर्थालंकार

शब्दालंकार के वर्णन में 'तुरमुती तहखाने' वाला कवित्त देखिये। उसमें छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास सब पृथक २ दिखाई पड़ते हैं ।

(२) शब्दालंकार + अर्थालंकार

१—दो०—लसत मंजु मुनि-मंडली, मध्य सीय रघुनंद ।

ज्ञान-सभा जनु तनु धरे, भक्ति सच्चिदानंद ॥

इसमें पूर्वार्द्ध में 'म' अक्षर का अनुप्रास है। 'जनु' शब्द से उत्प्रेक्षा प्रगट है। मुनि-मंडली, सीय रघुनंदन कहके पुनः क्रम से ज्ञान-सभा, भक्ति और सच्चिदानंद क्रम से कहकर क्रमालंकार स्पष्ट किया गया है।

२—दो०—दंड यतिन कर भेद जहँ, नरतक नृत्यसमाज ।

जीतहु मनहि सुनिय अस, रामचंद्र के राज ॥

यहाँ नतक और नृत्य में 'न' का और रामचंद्र और राज में 'र' का अनुप्रास है और कुल दोहा से परिसंख्या अलंकार सिद्ध है।

(३) अर्थालंकार + अर्थालंकार

३—दो०—ससि सो उज्ज्वल मुख लसे, खजन हैं मनु नैन ।

अधर नासिका बिब सुक, मधुर सुधा से वैन ॥

यहां प्रथम चरण में पूर्णोपमा, दूसरे में उत्प्रेक्षा, तीसरे में क्रम और चौथे में पुनः पूर्णोपमा, प्रत्यक्ष और अलग अलग स्पष्ट देखे जाते हैं।

४—सो०—नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन बारिज नयन ।

करा सो कम उर धाम, सदा क्षीर-सागर-सयन ॥

यहां प्रथम दो चरणों में लुप्तोपमा, और चौथे चरण में पर्यायाक्ति अलंकार है।

(२) संकर

दो०—पय पानी की रोति तें, होय परस्पर लीन

ताकहँ संकर नाम दै, भाषत सुकवि प्रबीन ॥

विवरण—दूध पानी की तरह से मिले हुए (पृथक् न होने योग्य) अलंकार हों उस मिश्रण को 'संकर' कहते हैं। इसके चार भेद होते हैं (१) अंगांगी भाव, (२) समप्राधान्य, (३) सदेह और (४) एक वाचकानुपवेश वा 'एकपद संकर'

(१) अंगांगी भाव

दो०—बीज वृक्ष के न्याय करि, इक इक को अंग होय
सो अंगांगी भाव है, कवि गुलाब मति जोय ॥

विवरण जहां बीज वृक्ष के न्याय स मिले हुए अलंकार हों उसे 'अंगांगी भाव संकर' कहते हैं अर्थात् जहां एक के बिना दूसरा सिद्ध ही न हो सके, जैसे बिना बीज के वृक्ष और बिना वृक्ष के बीज नहीं हो सकता। यथा:—

१—दो०—हलत पवन ते तरुन-तर, दीखत छाँह अचूक।

ससि-हरि ने तम-गज^१हना, मानो ताके टूक ॥

पवन से हिलते हुए वृक्षों के नीचे जा छाया देव पड़ती है वह मानो शशिसिंह के मारे हुए तमगज के टुकड़े हैं।

यहां 'मानो' शब्द से उत्प्रेक्षालंकार मुख्य है, सो अंगी है और शशिसिंह तथा तमगज 'अभेद रूपक' उसके अंग हैं।

२—दो०—तुव अरि तियगन बन भजत, लूटी सब बटमार।

अभर-बिब-दुति गुंज गुनि, हरे न मकुता-हार ॥

तेरे शत्रुओं की स्त्रियों को बन में भागते समय लुटेरे भीलों ने लूट लिया, परंतु आठों की दुति से लाल हुए मांतियों को गुंज समझ कर मांतियों के हार न लूटे।

यहाँ आठों के संग से मांती गुजा से हो गये यह तद्गुण अलंकार है, मांतियों के हार का गुंजा का हार समझकर लुटेरों

ने नहीं लूटा, इसमें भ्रान्ति अलंकार है। यहाँ तद्गुण के जोर से भ्रान्ति की सिद्धि है, और भ्रान्ति के जोर से तद्गुण की सबलता प्रगट हुई। अतः अगांगी भाव संकर है।

३—पिहित अलंकार के वर्णन में 'राम जानको' वाला सवैया देखो। वहाँ तीन चरणों तक 'पिहित' अंग भाव है, तब चौथे चरण में 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अंगी भाव है। (पृष्ठ २४४, सं० ४)

४—चौपाई

साधुचरित सुभ सरिस कपासु। निरस विसद गुणमयफल' जासु,
जो सहि दुख पर छिद्र' दुरावा। बंदनीय जेहि जग जस पावा ॥

इसमें श्लेषालंकार उपमा का अंग है। साधुचरित और कपास सरिस है यह उपमा है। उसके फल निरस, विशद और गुणमय हैं। इन तीन विशेष गुणों के श्लेष अर्थ साधुचरित और कपासफल दोनों पर लगते हैं तब उपमा सिद्ध होती है। छिद्र शब्द भी श्लेष है।

(२) समप्राधान्य

दो०—दिन दिनपति के न्याय करि सँग प्रगटै सँग भासु।

नाम सु समप्राधान्य है कबि गुलाब कह तासु ॥

विवरण—दिन और सूर्य की तरह साथ ही प्रगटें और साथ ही लख पड़ें वह समप्राधान्य संकर है। यथा—

१—दो०—रघुपति करति कामिनी, क्यों कह 'तुलसीदासु'।

सरद प्रकास आकास छबि, चारु चिबुक तिल जासु ॥

इसमें क, स और च के अनुप्रास, प्रतीप और रूपक दोहा पढ़ते ही भासित हो जाते हैं—

२—पद—सेये सीता राम नहि भजे न संकर गौरी ।

जनम गँवायो वादि^१ ही परत पराई पौरी^२ ॥

इसमें स, र और प के अनुप्रास और दृष्टांत एक साथ ही भासते हैं ।

(३) संदेह

एक मिटाये दूजो भासे । दूजो त्यागे प्रथम प्रकासे ॥

बोध न होय कौन को लीजै । तहँ संकर संदेह भनीजै ॥

विवरण—जहाँ पर दा वा अधिक अलंकार लख पड़ें, पर निश्चय न हो सके कि किसका ग्रहण कर वा किसका त्याग करें । एक के लिए न तो कोई साधक प्रमाण हो, और न दूसरे के लिए निषेध वा वाचक वाक्य हो । ऐसे मिश्रण का 'संदेह-संकर' कहते हैं ।

१—चौपाई

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के । लोचन नलिन^३ भरे जल सिय के

इसमें 'लोचन नलिन' में उपमा मान वा रूपक मानें ऐसा संदेह होता है । मनोहर पिय के मृदुबचनों से दुःख माना-भले उद्याग से बुरा फल होना विषम अलंकार है, अथवा लोचन नलिन भरे जल सिय के, इस कार्य के मिस सादृश्या की के दुःख रूपी कारण का कथन हाने से अप्रस्तुत प्रशंसा है । तब किसी के खड्ग की कोई सामग्री इसमें है और न मडन ही को । अतः निश्चय नहीं कह सकते कि कौन अलंकार मानना चाहिए ।

२—दो०—जैम निर्मल कांति अरु, रतन भरो गंभीर ।

नग विधि या जलधि को, क्यों न किया मधुनीर^४ ॥

यहाँ समुद्ररूप प्रस्तुत में अप्रस्तुत की प्रतीति होने से क्या यह समासोक्ति है, वा समुद्ररूप अप्रस्तुत द्वारा उसके समान गुणवाले प्रस्तुत किसी धनी पुत्र की प्रशंसा प्रतीत होने से क्या यह 'अप्रस्तुत प्रशंसा' है, ऐसा संदेह होने से यह 'संदेह संकर' है।

३—दो०—नयनानंददायी लसत, यह ससि बिम्ब प्रकास ।

अजहुँ न तम विनस्यो कहा ? जेहि रोंकी सब आस ॥

इसमें रूपकानिश्चोक्ति, रूपक, दोषक, तुल्ययोगिता और समासोक्ति इत्यादि कई एक अलंकारों का संदेह हो सकता है।

(४) एकवाचकानुप्रवेश

दो०—न्याय नृसिंहाकार करि एकहि पद के माहि ।

युग भूषन, इकवाचकानुप्रवेश कहि ताहि ॥

विवरण—नृसिंहाकार न्याय से (एकही देह में मनुष्य और सिंह की आकृतिवत्) जहाँ एक ही पद में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों ही वहाँ एक वाचकानुप्रवेश (वा संक्षेप से 'एकपद संकर') कहा जाता है। जैसे—

१—दो०—हे हरि दोन दयाल हौ, मैं माँगों सिर नाय ।

तुव पद-पंकज आसरे, मन-मधुकर लगि जाय ॥

इसमें 'पद-पंकज' में तथा 'मन-मधुकर' में शब्दालंकार अनुप्रास और अर्थालंकार रूपक का संकर है।

२—सवैया

केतकि^१ धूरि धरे सिर ऊपर गुंजत मंजु सुकुंजन में ।

दान^२ भरै मधुनीर, समीर जंजीर सु आवत है छन में ॥

मत्त छुटे नव पंकज थान ते दर्प अखंड करे मन में ।
तोहिर कै सौरभ-साँकर' का यह भृंग-मतग फिरै बन में ॥

यहाँ 'भृंग मतग' इस एक ही पद में रूपक और वृत्त्य-
नुप्रास का सकर है ।

३—चौपाई

सोइ जल अनल^१ अनिल^२सघाता^३ । होय जलद जगजीवन दाता
यहाँ जलद, जग, जीवनदाता में अनुप्रास भी है और
जीवन शब्द अर्थशेष होने से अर्थालंकार भी है क्योंकि
जीवन का अर्थ है 'पानी' और 'प्राण' ।

सूचना—थोड़ा सा नमूने के तौर पर लिख दिया गया । सब अलं-
कारों के सब प्रकार के 'संस्कारों' के उदाहरण एकत्र दिखलाना असंभव ही है ।

(३) रसवत् अलंकार

यद्यपि कितने ही कवि सात प्रकार के 'रसवत्' अलंकार
भी मानते हैं, पर हम उन्हें अलंकार नहीं मानते । इसीसे
उन्हें हमने नहीं लिखा ।

१ सुगंधरूपी सिकड़ी । २ आग । ३ वायु । ४ समिश्रण ।



(चौथा पटल)

दोषकोष

पाठकों को जानना चाहिए कि ससार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें गुण ही गुण हों और दोष न हों । इसी सिद्धांत के अनुसार इन अलंकारों में भी कुछ दोष हुआ करते हैं । उन्हें भी समझ लेना चाहिए ।

(१) शब्दालंकारों के दोष

शब्दालंकारों में सर्वप्रधान 'अनुप्रास' और "यमक" हैं, इसलिए इनके ही दोष खूब समझ लेना चाहिए ।

(क) अनुप्रास के दोष

अनुप्रास अलंकार के मुख्य तीन दोष हैं—(१) प्रसिद्धाभाव, (२) वैफल्य और (३) वृत्ति-विरोध ।

(१) प्रसिद्धाभाव

दो०—अप्रमान बातें कहै, अनुप्रास के हेत ।

दोष प्रसिद्धाभाव तेहि, भावै सुकवि सवेन ॥

१—कवित्त—रविजा कहे ते रन जात जास जाति जाति,
यमुना कहे ते यमुना के हात हेर^१ बिन ।
भानु हाति कीरति प्रभानु के परमपुंज,
भानुनया के कहे ते ही फेर फेर बिन ॥
'गवाल कवि' मंजु मारतंड-नंदिनी के कहे,
महिमा महा में होत दीनन के डेर बिन ।

हरि जात दारिद दिनेसतनया के कहे,
कहत कलिन्दी के कन्हैया होत देर विन ॥

इसमें श्री यमुना जो की महिमा का वर्णन है। यमुना की महिमा से यद्यपि सब कुछ हो सकता है, ता भी 'रविजा' कहने से 'रण जीते', 'यमुना' कहने से 'यम' के नाके बंद हो जायँ, 'भानुतनया' कहने से 'भानु हा जाय' 'मारतडनन्दिनी' कहने से 'महिमा बढ़ै' 'दिनेशतनया' कहने से 'दारिद दूर हा जाय' और 'कालिन्दी' कहने से 'कन्हैया हा जाय' इन बातों का कोई प्रमाण नहीं है। कवि ने केवल अनुप्रास के हेतु ही ऐसा कहा है। अतः यह प्रसिद्धाभाव दोष है।

(२) वैफल्य

चमत्कार का होय अभाव । तेहि वैफल्य कहैं कविराव ॥

१—सवेया

का 'सरदार' कहों ताहि सों सरदार सब सरदार सचा हैं ।
सासन सासन सासन में हम सासन सासन सासन चाहें ।
काननदी ननदी ननदी ननदी ननदी जु न दीन दचा हैं ।
का बलमा बलमा बलमा बलमा बलमा बलमा बलमा हैं ।

यहां बाच्यार्थ में कोई चमत्कार नहीं, केवल शब्दाडम्बर मात्र है। अतः अनुप्रास व्यर्थ वा विफल है। ऐसे विफल अनुप्रास 'ग्वाल' और 'पजनेश' कवि की कविता में बहुधा पाये जाते हैं।

(३) वृत्ति-विरोध

उपनागरिकादि वृत्तियों के नियम विरुद्ध वर्णविन्यास को वृत्तिविरोध दोष कहते हैं।

१—दो०—पंचवटी गुनगन जटी, ठटनि ठटी नटरास ।
अघट घटी दुख सुख पटी, कुटी करो तहँ बास ॥

२--सवैया

एक घटी न घटी सिय के दुख राम रहे मुनि के निकटी^१ ।
 घट के सुत^२ सो हित नारि जटी मनु धूरजटी^३ नहीं काम छटी^४ ।
 दुपटी फटि जात जहां तम की प्रगटी घट में गुरु ज्ञान गटी ।
 कहिये कहूँ मुक्ति हटी बरटी^५ जहँ पर्नकुटी रघुनाथ ठटी ।
 ३—दो०—तौ लगि या मन-सदन महुँ हरि आवैं केहि बाट ।

निपट बिकट जौ लौं जुटे खुलैं न कपट-कपाट ॥

४—सवैया

सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहैं जहँ एक घटी^६ ।
 निघटी रुचि मीचु^७ घटीहु घटी जग जीव जतीन की लूटी तटी^८ ।
 अघ-आघ की बेरी^९ कटी विकटी निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी^{१०} ।
 चहुँ आरन नाचति मुक्ति नटी गुन धूरजटीबन पंचवटी ॥

यह शांत-रस संबंधी कविता 'कामला' वृत्ति में होनी चाहिये थी, सो 'परुषा' वृत्ति में की गई है। 'राम' कवि कृत हनुमानाष्टक में ऐसी कविता बहुत है।

सूचना—'पजनेश' की कविता में यह दोष प्रायः पाया जाता है। इस कवि ने अङ्गार वर्णन में परुषा वृत्ति टवगीं अक्षरों का बहुतायत से प्रयोग किया है।

(ख) यमक का दोष

यमकालंकार के नियमानुसार यमक किसी छंद के एक चरण वा दो चरणों में वा चारा चरणों में होना चाहिए। इसके विरुद्ध यदि तीन चरणों में यमक हो तो 'अप्रयुक्त' दोष कहलाता है।

१—दो०—ता पर चारों उरबसी^१, सुनु राधिके सुजान ।
 तू मोहन के उरबसी^२, हूँ उर बसी^३ समान ॥

१ पास । २ घड़े से उत्पन्न (अगस्त्य) । ३ महादेव । ४ छटा, शोभा ।
 ५ बेचारी । ६ घड़ी । ७ मृत्यु । ८ ध्यान । ९ बेड़ी । १० गठरी । ११ अप्सरा । १२ हृदय में बस गई है । १३ पदिक, धुकधुकी ।

यहाँ 'उरबसो' शब्द का यमक केवल तीन चरणों में है ।
अतः अप्रयुक्त दोष है ।

२—दो०—बानीरूप अनूप वर, वरन वाम^१ ने वाम^२ ।

कहैं वाम विधि^३ विधि करी^४, वामदेव^५ धनु वाम^६ ॥

यहाँ वाम शब्द का यमक भी तान ही चरणों में है । अतः
अप्रयुक्त दोष है ।

(२) अर्थालंकारों के दोष

(क) उपमा के दोष

अर्थालंकारों में मुख्य 'उपमा' अलंकार है । अतः इसके
दोषों को भली भाँति समझ लेना चाहिए । उपमालंकार में
मुख्यतः ६ दोष माने गए हैं । यथा—

(१) न्यूनता

जहाँ उपमेय से उपमान की न्यूनता दर्शित हो, उसे
न्यूनता दोष कहते हैं । इसके तीन भेद हैं—(क) जातिगत
(ख) प्रमाणगत, (ग) धर्मगत ।

(क) जातिगत न्यूनता का उदाहरण

१—दो०—चतुर सखिन के मृदु बचन, वासर^१ जाय बिताय ।

पै निसि में चंडाल लौं, मारत यह ससि आय ।

यहाँ चंद्रमा का उपमान चांडाल कहा गया है । यह जाति-
गत न्यूनता दोष है ।

(ख) प्रमाणगत न्यूनता का उदाहरण

१—दो०—साहत आग्न-फुलिंग लौं, यह रांबरथ नभ थान ।

१ श्रेष्ठ वर्णवाली स्त्रियाँ । २ बाण । ३ टेढ़ी रीति । ४ ब्रह्मा । ५
महादेव । ६ देड़ा धनुष । ७ दिन ।

यहाँ सूर्य के रथ को अग्नि की चिनगारी की उपमा दी गई है। यह बड़ी वस्तु की छोटी वस्तु से उपमा है। इसीको प्रमाणगत न्यूनता कहते हैं।

(ग) धर्मगत न्यूनता का उदाहरण

१—दो०—कृस्न-अजिन^१ पट लसन मुनि, सुचि मौंजी युत^२ गात ।

नाल मेघ के निकट जिमि, नभ दिनमनि बिलसात ॥

यहाँ मुनि उपमेय के काली मृगछाला रूप धर्म के लिए तो सूर्य उपमान के नीलमेघ की निकटता रूप धर्म कहा गया है, परंतु मौंजी के समान दूसरा धर्म बिजली और भी कहना चाहिए था, सो नहीं कहा गया। यही धर्मगत न्यूनता दोष है।

(२) अधिकता

जहाँ उपमेय से उपमान की अधिकता प्रदर्शित हो, वहाँ 'अधिकता' नामक दोष हाता है। न्यूनता की तरह अधिकता भी तीन भाँति की है—

(क) जातिगत अधिकता

१—दो०—कमलासन^३ आसोन यह, चक्रवाक बिलसाहि ।

यहाँ चक्रवाक की उपमा ब्रह्मा से दी गई है। यह अधिकता दाप है। नीच पक्षी को उपमा अति उच्च देवता से ठहराना केवल हास्यास्पद है।

(ख) प्रमाणगत अधिकता

जहाँ किसी छोटे उपमेय की उपमा अत्यंत बड़े और भड़े उपमान से दी जाय। जैसे—नख की उपमा खाँड़े से वा दाँत की उपमा वज्रशिला से।

(ग) धर्मगत अधिकता

१—दो०—लसत पातपट चाप^१-कर, मनहर बपु घनस्याम ।
तडित इन्द्रधनु ससि सहित, ज्यों निसि में घनस्याम ॥

यहाँ उपमेय श्रीकृष्ण के पीताम्बर तथा धनुष के स्थान पर उपमान नीलघन बिजली तथा इन्द्रधनुष सहित कहा गया सो ठीक है, किंतु उपमान चंद्र सहित कहा गया है इसके जोड़ की वस्तु (शंख) उधर कृष्ण के पास कथन नहीं की गई, अतः उपमान में अधिकता है ।

(३) लिंग-भेद और (४) बचन-भेद

१—दो०—कहे जायँ कहू कौन बिधि, या नृप के गुन कूल^२ ।
मधुरे बच हैं दाख^३ लौं, चरित चाँदनी-तूल^४ ॥

यहाँ उपमेय 'बच' एक बचन पुल्लिङ्ग और क्रिया बहुवचन है । 'दाख' उपमान स्त्रीलिङ्ग और एकवचन है । 'चरित' पुलिङ्ग है । यह अनुचित है । अतः दोषरूप है ।

२—सवैया

देत^५ समान लगै अति दारुन चैत की चाँदनी रामै सिया बिन ।

३—दो०—मनमोहन तन घनसघन, रमनि राधिका मार ।

श्रीराधामुख-चंद को, गोकुलचंद चकोर ॥

यहाँ 'राधिका' स्त्रीलिङ्ग के लिए 'मार' पुलिङ्ग की उपमा अनुचित है ।

(५) कालभेद

उपमेय के साथ और काल की क्रिया लाना, उपमान के साथ और काल की । यथा—

१—दो०—रन में इमि सोभित भये, राम बान चहुँ ओर ।

जिमि निदाध मध्याह्न में, नभ रवि-कर खर घोर ॥

इसमें 'रामवान इमि सोमित भये' (भूतकालिक क्रिया) और 'जिमि रवि-कर मध्यान में होते हैं' (वर्त्तमानकालिक क्रिया का अध्याहार) अनुचित होने से दोषरूप है ।

(६) पुरुषभेद

जहाँ उपमेय को और पुरुष में और उपमान को और पुरुष में कहें । यथा—

१—दो०—राजत हौं प्यारी ! रुचिर पट कुसुम^१ तेनु धारि ।

लाल सुवाल प्रवालतरु-प्रभव^२ लता अनुहारि ॥

यहाँ 'प्यारी' उपमेय 'मध्यमपुरुष' में और 'लता' उपमान 'अन्य पुरुष' में है । यह अनुचित होने से दोषरूप है ।

(७) विधिभेद

जहाँ उपमेय और उपमान की विधि न मिले । जैसे—

१—दो०—नृप तव कीरति सम सदा, दिनकर करै प्रकास ।

सूर्य स्वयं ही सदा प्रकाशमान है । कीर्ति सम प्रकाशित हो, ऐसा कथन नितांत असंगत है ।

(८) अप्रसिद्धि

ऐसी उपमा देना जैसी लोक में प्रसिद्धि न हो । जैसे—

१—दो०—काव्य-चंद्र रचना करत, अर्थ किरन युत चारु ।

काव्य को चंद्र और अर्थ को किरण कहना अप्रसिद्धि दोष है । इसे 'असादृश्य' भी कहते हैं ।

(९) असम्भव

१—दो०—धनु-मंडल सौ परत ह, दीपत सर खर-धार ।

ज्यों रवि के परिवेष तें, परत ज्वलित जलधार ॥

यहाँ धनुष से छूटे हुए दीप्तिमान बाणों को सूर्यमंडल से गिरती हुई ज्वलित जल-धाराओं की उपमा दी जाने से असंभव दोष है, क्योंकि ऐसा संभव ही नहीं है ।

१ वासंती । २ मूँगे के वृक्ष से उत्पन्न ।

(२) उत्प्रेक्षा के दोष

(क) 'उत्प्रेक्षा' में मनु, जनु, माना, जाना, ध्रुव, खलु, इव, शब्दों से ही संभावना स्फुरित हो सकती है, 'यथा' ज्यों, शब्दों से नहीं। अतः उत्प्रेक्षा में 'ज्यों' वा 'यथा' वाचक लाना दोष है। इसे 'अवाचकता' दोष कहते हैं।

(ख) उत्प्रेक्षा के समर्थन को अर्थातरन्यास का कथन करना दूसरा दोष है जिसे 'अनुचितार्थता' दोष कहते हैं। जैसे—
१—दो०—रक्षत हिमगिरि तमहिं मनु, गुफा लीन रवि भीत।

सरनागत छांटेहु पर, करत बड़े जन प्रीत ॥

यहाँ अचेनन 'तम' को सूर्य से भय होना ही संभव नहीं फिर हिमगिरि कृत रक्षा कैसी? तिसपर तुरा यह कि अर्थातरन्यास से उसी असंभव बात की पुष्टि करना मानो बिना आधार के चित्र खींचना है।

(३) समासोक्ति का दोष

'समासोक्ति' अलंकार में समान विशेषणों द्वारा ही उपमान विशेष्य का प्रकाशन होता है, उसके लिए उपमान वाचक पद कहना एक दोष है, जिसे 'पुनरुक्तता' वा अपुष्टार्थता, कहते हैं। जैसे
१—दो०—परस करत रबिकरन^१ दिसि, लखि उर ताप जु ग्रान^२

कामिनि अरु चिर दिवस-श्री, ग्रहन कियो बहु मान।

यहाँ सूर्य और दिशा के वर्णन मात्र से नायकत्व और नायिकत्व (पुल्लिंगता और स्त्रीलिंगता) प्रगट ही हो जाती है, फिर अप्रस्तुत का नायिकत्व प्रगट करने के लिए 'कामिनी' शब्द का कथन नितान्त निष्प्रयोजनीय है ॥

(४) अन्योक्ति का दोष

इस अलंकार में भोसमान विशेषण से प्रस्तुत प्रगट हो जाता है। उसके लिए कोई वाचक शब्द लाना पुनरुक्ति दोष है!

बंदौं श्रीभरत-भूमि सर्व-सेव्य माता ।
 चंदन-सम तापहरनि, सस्यपूर्ण स्याम-वरनि,
 बिपुल-सुजल-सुफल-धरनि, धवल-सुजस-ख्याता,
 हिम-गिरि के तुंग-शृंग^१, क्रीट-मुकुट-उत्तमंग^२,
 युगल-बाहु कच्छ-बंग, अभय-वर-प्रदाता ।
 सिंधु-ब्रह्मपुत्र-भेस, लहरैं युग-ओर-केस,
 बदरी-वन मन सुवेश, विमल-बुद्धि खाता ।
 मध्यदेश मध्यदेश^३, बिंध्या कटि-पट-सुवेश,
 उदर वर-वरार-देश, मदन लखि सिहाता ।
 पूर्बी-पश्चिमी-घाट, युगल-जंघ जानु-ठाट,
 सिंहलद्व निज ललाट, चरन पै नचाता ॥
 गंगा-जमुना-सुठार, पुष्टिप्रदा दुग्ध-धार,
 ब्रुवत पियत एक बार, जम-भय भगि जाता ।
 चंद-ज्योति मुख-विकास, कुंद-कुमुद-सुमन हास,
 खग-रव बानी-बिलास, सुखद-वरद-माता ॥
 अतुल-अमल-रम्य-रूप, सफल सजल-बाग-कूप,
 भव्य-दिव्य-छबि अनूप, नमो-नमो माता ॥
 बन्दौं श्री भरत-भूमि सर्व-सेव्य माता ।

